||श्रीगणेशायनमः||
|| श्रीराधादामोदराभ्यांनमः||

कार्तिकमासमाहात्म्यारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

कार्त्तिक मास व्रत प्रशंसा, कार्त्तिक धर्म वर्णन, कार्त्तिक व्रत प्रशंसा

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥१॥

नारायण, नरोत्तम नर को तथा देवी सरस्वती को प्रणाम करके 'जय' (पुराण) को कहता हूं।।१।।

ऋषय ऊचुः

सूत! नः कथितम्पुण्यं माहात्म्यमाश्विनस्य च।
भूयोऽन्यच्छ्रोतुमिच्छामः कार्त्तिकस्य च वैभवम्॥२॥
कलौ कलुषचित्तानां नराणांपापकर्मणाम्। संसाराब्धौनिमग्नानामनायासेनकागतिः॥३॥
को धर्मः सर्वधर्माणामधिकोमोक्षसाधकः। इहाऽपि मुक्तिदो नृणामेतत्त्वंकथय प्रभो!॥४॥

ऋषिगण कहते हैं—हे सूत! पुण्यमय आश्विन मास का माहात्म्य आप सबसे कह दिया। पुनः हम कार्त्तिक मास की विभूति सुनना चाहते हैं। हे प्रभो! संसार सागर में निमग्न कलिकाल के कलुषित चित्तवाले पापी व्यक्तियों की क्या गति होगी? धर्मों में मोक्ष धर्म क्या है? किस उपाय से इहकाल में अनायास मानवों की मुक्ति होती है? यह सब कहिये?।।२-४।।

सूत उवाच

भवद्भिर्यदहं पृष्टस्तदेतत्पृष्टवान्मुनिः। नारदो ब्रह्मणः पुत्रो ब्रह्माणं तु जगद्गुरुम्॥५॥
तथैवसत्यभामाच श्रीकृष्णंजगदीश्वरम्। अपृच्छत्कार्तिकस्यैव वैभवं श्रवणोत्सुका॥६॥
बालखिल्यैश्च ऋषिभिर्यदुक्तमृषिसंसदि। श्रीसूर्यारुणसंवादरूपेणाऽतिमनोहरम्॥७॥
कैलासे शङ्करेणैवकार्तिकस्यच वैभवम्। वर्णितं षण्मुस्याऽग्रे नानाख्यानसमन्वितम्॥८॥
पृथम्प्रतिनारदेनकथितंचमाहात्म्यकम्। कार्तिकस्य च विप्रेन्द्रा श्रुत्वाब्रह्ममुखात्पुरा॥९॥
एकदा नारदोयोगी सत्यलोकमुपागतः। पप्रच्छ विनयेनैव सर्वलोकपितामहम्॥१०॥

सूत जी कहते हैं—आप सबने मुझसे जो पूछा है पूर्वकाल में ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारद ने अपने पिता जगद्गुरु ब्रह्मा से उसी विषय में पूछा था। कृष्णपत्नी सत्यभामा ने भी जगदीश्वर श्रीकृष्ण से कार्त्तिक मास का

माहात्म्य सुनने हेतु उत्सुक होकर इस सम्बन्ध में जिज्ञासा किया था। ऋषि सभा में बालखिल्य ऋषिगण ने इस विषय में सूर्यदेव तथा अरुणसंवादरूप मनोहर उपाख्यान को कहा था। कैलास शिखरासीन शंकर ने भी षड़ानन स्कन्द से नाना आख्यान समन्वित कार्त्तिक माहात्म्य कहा था। हे विप्रेन्द्रगण! इसके अतिरिक्त देवर्षि नारद ने भी पितामह के मुख से कार्त्तिक मासीय माहात्म्य को सुनकर पृथु को उपदेश प्रदान किया था। एक बार देवर्षि नारद सत्यलोक आये तथा विनयपूर्वक सर्वलोकपितामह ब्रह्मा से पूछा।।५-१०।।

श्रीनारद उवाच

पापेन्धनस्य घोरस्य शुष्कार्द्रस्यच भूरिशः। को वह्निर्दहते ब्रह्मंस्तद्भवान्वक्तुमर्हति।।११।।
नाऽज्ञातं त्रिषु लोकेषु ब्रह्माण्डांतर्गतस्ययत्। विद्यतेतवदेवेशत्रिविधस्यसुनिश्चितम्।।१२।।
मासनाम्प्रवरो मासो देवानामुत्तमोत्तमः। तीर्थानि तद्विशेषेण कथयस्व पितामह!।।१३।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! घोर पापरूप शुष्क तथा आर्द्र इन्धन को कौन अग्नि जला सकता है? कृपया यह विषय आप कहिये। ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत् तीनों लोक में आप से अज्ञात कुछ भी नहीं है। अतः आप यह बताने में समर्थ हैं। हे देवेश! भूत-भविष्य-वर्त्तमान का सब कुछ आपमें विद्यमान है। हे पितामह! देवगण में से सर्वोत्तम कौन है? मासों में उत्तम मास कौन-सा है तथा विशेषतः सभी तीर्थों में से उत्तम तीर्थ कौन है? कृपया कहिये।।११-१३।।

ब्रह्मोवाच

मासानां कार्तिकः श्रेष्ठो देवानाम्मधुसूदनः। तीर्थंनारायणाख्यं हि त्रितयंदुर्लभंकलौ।।१४।।

ब्रह्मा कहते हैं—सभी मासों में से कार्त्तिक श्रेष्ठ है, देवगण में से मधुसूदन श्रेष्ठ हैं। तीर्थसमूह में से नारायण तीर्थ उत्तम है। कलिकाल में तीन वस्तु दुर्लभ है।।१४।।

नारद उवाच

भगवंस्तव दासोऽस्मि भक्तोऽस्मि हरिवल्लभः।
वैष्णवान्ब्रूहि मे धर्मान्सर्वज्ञोऽसि पितामह!।।१५।।
आदौकार्तिकमाहात्म्यंवक्तुमर्हसिमेप्रभो!। दीपदानस्यमाहात्म्यंव्रतिनांनियमांस्तथा।।१६।।
गोपीचन्दनमाहात्म्यं तुलस्याश्च तथा विभो!।
धात्र्याश्चैव च माहात्म्यं विधिं स्नानादिकस्य च।
व्रतारम्भः कदा कार्य उद्यापनविधिं तथा।।१७।।
यत्किञ्चिद्वैष्णवंधर्मं तत्सर्ववक्तुमर्हसि। येनाऽहं त्वत्प्रसादेन पदं यास्याम्यनामयम्।।१८।।

देवर्षि नारद कहते हैं—मैं आपका भृत्य तथा भक्त हूं। हे हरिवल्लभ! आप सर्वज्ञ हैं। हे पितामह! वैष्णव कौन हैं यह कहिये। हे पितामह! पहले मुझे कार्त्तिक मास का माहात्म्य श्रवण करने की इच्छा है। उसे कहिये। हे विभो! कार्त्तिक मास में दीपदान का माहात्म्य, व्रतीगण का नियम, गोपीचन्दन, तुलसी तथा आमलकी महिमा, स्नानादि का विधान, व्रतारंभ तथा उद्यापन फल, जो कुछ भी वैष्णव धर्म है, सभी कहिये। हे प्रभो! मैं आपकी कृपा से अनामय पद लाभ कर सकूं यह कृपा करें।।१५-१८।।

सूत उवाच

इति पुत्रवचः श्रुत्वा ब्रह्मा हर्षसमन्वितः। राधादामोदरं स्मृत्वा प्रोवाचतनुजम्प्रति॥१९॥

सूतजी कहते हैं—कमलयोनि ब्रह्मा ने अपने पुत्र का यह कथन सुनकर प्रसन्न अन्तःकरण से राधा-दामोदर का नाम स्मरण किया तथा कहने लगे।।१९।।

ब्रह्मोवाच

साधुपृष्टं त्वया पुत्र! लोकोद्धरणहेतवे।
कथयामि न सन्देहः कार्त्तिकस्य च वैभवम्॥२०॥
एकतःसर्वतीर्थानिसर्वेयज्ञाःसदक्षिणाः। कार्त्तिकस्यतुमासस्यकलानार्हन्तिषोडशीम्॥२१॥
एकतःपुष्करेवासः कुरुक्षेत्रे हिमालये। एकतः कार्त्तिकः पुत्र सर्वपुण्याधिको मतः॥२२॥
स्वर्णानि मेरुतुल्यानि सर्वदानानिचैकतः। एकतःकार्त्तिको वत्स! सर्वदाकेशवप्रियः॥२३॥
यत्किञ्चित्क्रियते पुण्यं विष्णुमुद्दिश्य कार्त्तिके।
तस्य क्षयं न पश्यामि मयोक्तं तव नारद!॥२४॥
सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यंप्राप्यदुर्लभम्। तथाऽऽत्मानंसमादद्यान्नभ्रश्येतयथापुनः॥२५॥
दुष्प्राप्यं प्राप्य मानुष्यंकार्त्तिकोक्तंचरेन्नयः। धर्मं धर्मभृतांश्रेष्ठ! समातापितृघातकः॥२६॥
कार्त्तिकः खलुवै मासः सर्वमासेषु चोत्तमः।
पुण्यानाम्परमं पुण्यं पावनानाञ्चपावनम्॥२७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे पुत्र! मनुष्यों के उद्धारार्थ तुमने उत्तम प्रश्न किया है। मैं तुमसे कार्त्तिक माहात्म्य का वर्णन करूंगा, इसमें सन्देह नहीं है। जैसे एक ओर समस्त तीर्थ तथा समस्त दक्षिणात्मक यज्ञ हैं, अन्य ओर उसी प्रकार से कार्त्तिक माहात्म्य है। परन्तु पूर्वोक्त तीर्थ तथा यज्ञादि उसके $\frac{१}{१६}$ वें भाग के भी बराबर नहीं हैं। हे पुत्र! पुण्यक्षेत्र पुष्कर, कुरुक्षेत्र तथा हिमालय में निवास का जो पुण्य है, उसकी अपेक्षा कार्त्तिक मास श्रेष्ठ है। हे वत्स! सुमेरु के तुल्य सर्वविध दान से भी केशवप्रिय कार्त्तिक मास श्रेष्ठ है। हे नारद! इस कार्त्तिक मास में विष्णु के उद्देश्य से जो सब पुण्यानुष्ठान होता है, उसका कभी क्षय नहीं होता, यह निश्चित कहता हूं। हे धार्मिकप्रवर! दुष्प्राप्य मानव देह प्राप्त करके जो मानव कार्त्तिकोक्त धर्माचरण नहीं करता, वह पितृ-मातृघाती है। कार्त्तिक मास समस्त मासों में से श्रेष्ठ है। यह पुण्यकर्त्ताओं के लिये परम पुण्यप्रद तथा पावन से भी पावन है।।२०-२७।।

अस्मिन्मासेत्रयस्त्रिंशद्देवाःसन्निहिता मुने। अत्रस्नानानिदानानिभोजनानिव्रतानिच॥२८॥
तिलधेनुं हिरण्यञ्च रजतं भूमिवाससी। गोप्रदानानि कुर्वन्ति सर्वभावेन नारद!॥२९॥
तानि दानानि दत्तानि गृह्णन्ति विधिवत्सुराः।
यत्किञ्च दत्तं विप्रेन्द्र! तपश्चैव तथा कृतम्॥३०॥
तदक्षय्यफलं प्रोक्तं विष्णुना प्रभविष्णुना। पापानांमोक्षणञ्चैवकार्त्तिकेमासिशस्यते॥३१॥

तस्माद्यत्नेन विप्रेन्द्र! कार्त्तिके मासि दीयते।
यत्किञ्चित्कार्त्तिके दत्तं विष्णुमुद्दिश्य मानवैः॥३२॥
तदक्षयं हि लभते अन्नदानं विशेषतः। यथा नदीनाम्विप्रेन्द्र शैलानाञ्चैव नारद!॥३३॥
उदधीनाञ्च विप्रर्षे! क्षयोनैवोपपद्यते। दानं कार्त्तिकमासेतु यत्किंचिद्दीयते मुने!॥३४॥
न तस्याऽस्तिक्षयोविप्र! पापंयातिसहस्रधा। सम्प्राप्तंकार्त्तिकंदृष्ट्वापरान्नंयस्तुवर्जयेत्॥३५॥
दिने दिनेऽतिकृच्छ्रस्य फलम्प्राप्नोत्ययत्नतः।
न कीर्त्तिकसमो मासो न कृतेन समं युगम्॥३६॥

हे मुनिवर! इस कार्त्तिक मास में ३३ देवता एकत्र सन्निहित रहते हैं। हे नारद! मनुष्य मन-वाणी तथा शरीर से इस मास में स्नान, दान, भोजनव्रत तथा तिलधेनु, हिरण्य, चांदी, भूमि, वस्त्र तथा गोदान करे। हे नारद! इस दान को विधिवत् देवता ग्रहण करते हैं। हे विप्रेन्द्र! कार्त्तिक मास में दान प्रदान करना कर्त्तव्य है। मनुष्य विष्णु के उद्देश्य से कार्त्तिकमास में जो दान करते हैं, वह तथा विशेषतः अन्नदान तो अक्षय हो जाता है। हे विप्रेन्द्र! जैसे नदी, पर्वत, समुद्र का क्षय नहीं होता, यह दान भी क्षयीभूत ही नहीं होता। हे विप्र! इस दान से तो हजारों-हजार पापों का क्षय हो जाता है। कार्त्तिक मास में जो व्यक्ति परान्न का त्याग करता है, उसे बिना प्रयास नित्य प्रति अति कृच्छ्रव्रताचरण का फललाभ होता है। कार्त्तिक मास ऐसा कोई मास नहीं है। कृतयुग ऐसा कोई युग नहीं है।।२८-३६।।

न वेदसदृशं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम्। न चाऽन्नसदृशं दानं न सुखंभार्ययासमम्॥३७॥
न्यायेनोपार्जितं द्रव्यं दुर्लभं दानकारिणाम्। दुर्लभं मर्त्यधर्माणां तीर्थे च प्रतिपादनम्॥३८॥
कार्त्तिके मुनिशार्दूल! शालग्रामशिलार्चनम्। स्मरणं वासुदेवस्य कर्तव्यं पापभीरुणा॥३९॥
एतादृशं कार्त्तिकञ्च अकृतेनैव यो नयेत्। पूर्वं कृतस्य पुण्यस्य क्षयमाप्नोत्यसंशयम्॥४०॥

वेद के समान कोई शास्त्र नहीं है, गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं है, अन्न ऐसा कोई दान नहीं है, पत्नी सुख के समान कोई सुख नहीं है। इसी प्रकार कार्त्तिक ऐसा कोई मास नहीं है। मनुष्यों में न्यायोपार्जित धन का दाता तथा तीर्थ में दान करने वाला अतीव दुर्लभ है। हे मुनिशार्दूल! पाप से डरने वाला मानव कार्त्तिक मास में शालग्राम शिलार्चन तथा वासुदेव का स्मरण करें। इस प्रकार पुण्यप्रद कार्त्तिक मास को जो मनुष्य बिना धर्माचरण किये व्यतीत करता है, उसके तो पूर्वकृत पुण्य का क्षय हो जाता है, इसमें संदेह ही नहीं है।।३७-४०।।

नारद उवाच

अशक्तेन कथं कार्यं कार्त्तिकव्रतमुत्तमम्। येन तत्फलमाप्नोति तन्मे वद पितामह!॥४१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे पितामह! कोई अशक्त व्यक्ति किस प्रकार से कार्त्तिक व्रताचरण करके किस प्रकार का फल लाभ करता है, मुझसे कहिये।।४१।।

ब्रह्मोवाच

अशक्तस्तु यदा मर्त्यस्तदैवं व्रतमाचरेत्। अन्यस्मैद्रविणं दत्त्वाकारयेत्कार्त्तिकव्रतम्॥४२॥

तस्मात्पुण्यंप्रगृह्णीत दानसङ्कल्पपूर्वकम्। द्रव्यदानेऽप्यशक्तश्चेद्यदा देवर्षिसत्तम!॥४३॥
तदा तेन प्रकर्तव्यं पानं तीर्थजलस्य च। तत्राऽप्यशक्तो यो मर्त्यस्तेन नित्यं हरेर्मुदा॥४४॥
स्मरणं च प्रकर्तव्यं नाम्ना नियमपूर्वकम्। अखण्डितं तदा तेन कार्त्तिकव्रतजं फलम्॥४५॥

ब्रह्मा कहते हैं—अशक्त व्यक्ति के लिये यह व्रताचरण है—व्रताचरण में अशक्त व्यक्ति संकल्पपूर्वक धन दान से ही कार्त्तिक व्रताचरण करे। हे देवर्षिप्रवर! जो धन दान में भी अशक्त है, वह नित्य तीर्थजलपान करे। इसमें भी जो अशक्त है, वह हर्षपूर्वक नित्य नियमतः हरिनाम स्मरण करे। इस प्रकार वह अखण्डित कार्त्तिक व्रतफल प्राप्त करता है।।४२-४५।।

विष्णोः शिवस्य वा कुर्यादालये हरिजागरम्। शिवविष्णवोर्गृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि॥४६॥
दुर्गाटव्यां स्थितो वाऽथ यदि वाऽऽपद्गतो भवेत्।
कुर्यादश्वत्थमूले तु तुलसीनां वनेष्वपि॥४७॥
विष्णुनामप्रबन्धानां गायनंविष्णुसन्निधौ। गोसहस्रप्रदानस्य फलमाप्नोतिमानवः॥४८॥
वाद्यकृत्पुरुषश्चाऽपि वाजपेयफलं लभेत्। सर्वतीर्थावगाहोत्थं नर्तकः फलमाप्नुयात्॥४९॥
सर्वमेतल्लभेत्पुण्यमेतेषां द्रव्यदः पुमान्। श्रवणाद्दर्शनाद्वाऽपि षडंशं फलमाप्नुयात्॥५०॥
आपद्गतो यदाऽप्यम्भो न लभेत्कुत्रचिन्नरः।
व्याधितो वाऽथवा कुर्याद्विष्णोर्नाम्नाऽपि मार्जनम्॥५१॥
उद्यापनविधिं कर्तुमशक्तो यो व्रतस्थितः। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्व्रतसम्पूर्तिहेतवे॥५२॥
अशक्तो दीपदानाय परदीपं प्रबोधयेत्। तस्य वा रक्षणं कुर्याद्वातादिभ्यः प्रयत्नतः॥५३॥
श्रीविष्णोः पूजनाऽभावे तुलसीधात्रिपूजनम्।
सर्वाऽभावे व्रती कुर्याद् ब्राह्मणानां गवामपि।
तस्याऽप्यभावे मनसि विष्णोर्नामाऽनुकीर्तनम्॥५४॥

विष्णु मंदिर किंवा शिवालय में रात्रि जागरण करें। शिव-विष्णु देवालय न मिले तब किसी देवालय में, दुर्गम अरण्य में, यदि दुर्गम अरण्य भी विपत्तिपूर्ण हो तब पीपल के पेड़ के नीचे, किंवा तुलसी अथवा विष्णु के पास विष्णुनाम कीर्त्तन करें। ऐसा करने वाला १००० गोदान फल प्राप्त करता है। विष्णु के निकट जो वाद्यध्वनि करता है, उसे बाजपेय यज्ञफललाभ होता है। जो वहां नृत्य करता है, उसे सर्वतीर्थस्नानफल लाभ होता है। जो मानव इन सब कार्य हेतु धन प्रदान करता है, उसे पूर्वोक्त सभी पुण्यों की प्राप्ति होती है। श्रवण तथा दर्शन से भी $\frac{१}{१६}$ फल की प्राप्ति होती है। व्रतारंभ करने पर मनुष्य यदि आपत्तिग्रस्त हो जाये, अथवा कहीं जल न मिले, व्याधि हो किंवा विघ्नादि हों, तब विष्णु का नाम उच्चारण करके क्षमा प्रार्थना करना चाहिये। जो व्रताचरण करने वाला व्यक्ति व्रत का उद्यापन करने में असमर्थ हो जाये, वह व्रत पूरणार्थ ब्राह्मण भोजन कराये। यदि दीपदान न कर सके, तब अन्य के दीपों को जलाये अथवा अन्य के जलाये दीपों को वायु आदि से बुझने से बचाये। जो विष्णु पूजन में असमर्थ हो, वह आमलकी किंवा तुलसी पूजन करें। उसके भी अभाव में वह व्रती मनुष्य ब्राह्मण तथा गौ की पूजा करे। उसके भी अभाव में मन ही मन विष्णु का नाम कीर्त्तन करना चाहिये।।४६-५४।।

नारद उवाच

ब्रह्मन्! ब्रूहि विशेषेण धर्मान् कार्त्तिकसम्भवान्॥५५॥

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे कार्त्तिकव्रतप्रशंसावर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! कृपया कार्त्तिक मास से सम्भूत सभी धर्मों का विशेषतः वर्णन करिये॥५५॥

॥प्रथम अध्याय समाप्त॥

द्वितीयोऽध्यायः

कार्त्तिक व्रतधर्म वर्णन

ब्रह्मोवाच

अथ कार्त्तिकमासस्य धर्मान्वक्ष्यामि नारद!। सम्प्राप्तं कार्त्तिकंदृष्ट्वापरान्नंयस्तुवर्जयेत्॥१॥
स तु मोक्षमवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा। सर्वेषामेव धर्माणांगुरुपूजा परा मता।
गुरुशुश्रूषया सर्वं प्राप्नोति ऋषिसत्तम!॥२॥
गुरौ तुष्टे च तुष्टाः स्युर्देवाः सर्वे सवासवाः। गुरौरुष्टेचरुष्टाःस्युर्देवाःसर्वेसवासवाः॥३॥
कार्त्तिके मासि सम्प्राप्ते कृत्वा कर्माणि भूरिशः॥४॥
अकृत्वा गुरुशुश्रूषां नरकानेव विन्दति। यत्किञ्चिद्वा समादिष्टो गुरुणा तत्समाचरेत्॥५॥
आज्ञप्तो गुरुणा विप्र! न तद्वाक्यं तु लङ्घयेत्। यदि दुःखादिकं प्राप्तंगुरुं तुशरणंव्रजेत्॥६॥
मातृत्वे च पितृत्वे च गुरुमेव स्मरेद्बुधः। गुरौन प्राप्यतेयत्तन्नान्यत्राऽपिहिलभ्यते॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! अब कार्त्तिक मास का धर्म कहता हूं। कार्त्तिक मास आने पर जो व्यक्ति दूसरे के अन्न का त्याग करता है, उसे मोक्षलाभ होता है। इसमें कोई तर्क न करे। सभी धर्मों में गुरुपूजा श्रेष्ठ है। हे ऋषिप्रवर! एकमात्र गुरु सुश्रूषा से ही समस्त धर्मों की प्राप्ति हो जाती है। गुरु के प्रसन्न होने पर इन्द्र के साथ ही समस्त देवगण प्रसन्न हो जाते हैं। गुरु के रुष्ट होने पर सभी देवता कुपित हो जाते हैं। कार्त्तिक मास में भूरि-भूरि कर्म करके भी जो गुरु सेवा नहीं करता वह मनुष्य नरकगामी हो जाता है। जो कुछ आदेश गुरु करते हैं वही कर्त्तव्य है। हे विप्र! गुरु के द्वारा दिये गये आदेश का भी लंघन नहीं करना चाहिये। यदि कभी दुःख आदि

उपस्थित हो जाये, तब विद्वान् व्यक्ति गुरु की शरण ग्रहण करें। उनको सदा पिता-माता की तरह मानें। जो गुरु से प्राप्त नहीं होता, वह कहीं नहीं मिलता।।१-७।।

गुरुप्रसादात्सर्वं तु प्राप्नोत्येव न संशयः। मेधावी कपिलश्चैव सुमतिश्च महातपाः।
गौतमस्य गुरोः सम्यक्सेवयाऽमरतां गताः॥८॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्त्तिके विष्णुतत्परः। गुरुसेवां प्रकुर्वीत ततोमोक्षमवाप्नुयात्॥९॥
नरेभ्यो वैष्णवं धर्मं यो ददाति द्विजोत्तमः। ससागरमहीदाने तत्पुण्यं लभते हिसः॥१०॥
तिलधेनुं हिरण्यं च रजतं भूमिवाससी। गोप्रदानानि दास्यन्ति सर्वभावेन सुव्रत!॥११॥

एकमात्र गुरुकृपा से ही सब कुछ मिल जाता है। इसमें संशय नहीं है। मेधावी कपिल तथा महातपा सुमति ने गुरु गौतम की सम्यक् सेवा करके अमरत्व लाभ किया था। हे नारद! कार्त्तिक मास में सर्वप्रयत्न से विष्णु तत्पर होकर गुरु सेवा करें। उससे मोक्षलाभ होता है। जो द्विजोत्तम मानव गण को वैष्णवधर्म प्रदान करते हैं, वे ससागरा पृथिवीदान का फल प्राप्त करते हैं। हे सुव्रत! मानव काया-मन तथा वाक्य से तिल धेनु, स्वर्ण, चांदी, भूमि, वस्त्र तथा गौदान करे।।८-११।।

सर्वेषामेव दानानां कन्यादानं विशिष्यते। सहस्त्रमेव धेनूनां शतं चाऽनडुहां समम्॥१२॥
दशानडुत्समं यानं दशयानसमो हयः। हयदानसहस्त्रेभ्यो गजदानं विशिष्यते॥१३॥
गजदानसहस्त्राणां स्वर्णदानंच तत्समम्। स्वर्णदानसहस्त्राणांविद्यादानंच तत्समम्॥१४॥
विद्यादानात्कोटिगुणं भूमिदानं विशिष्यते। भूमिदानसहस्त्रेण गोप्रदानं विशिष्यते॥१५॥
गोप्रदानसहस्त्रेभ्यो ह्यन्नदानं विशिष्यते। अन्नाधारमिदंप्रोक्तं तस्माद्देयं तु कार्त्तिके॥१६॥
परान्नवर्जनादेव लभेच्चान्द्रायणं फलम्। दिने दिनेऽतिकृच्छ्रस्य फलम्प्राप्नोति मानवः॥१७॥

सभी दानों में से कन्यादान प्रशस्त है। सहस्र धेनु दान के समान १०० वृषों का दान माना गया है। दस वृषदान के समान है एक रथदान। दस रथदान के बराबर है एक अश्वदान। सहस्र अश्वदान के समान है एक (गज) हस्तिदान। सहस्र गजदान के तुल्य हैं स्वर्णदान। सहस्र स्वर्णदान के समान है विद्यादान तथा विद्यादान से भी भूमिदान करोड़ों गुना प्रशस्त है। सहस्रों भूमिदान से गोदान प्रशस्त है सहस्र गोदान की अपेक्षा तो अन्नदान प्रशंसनीय है। अतएव कार्त्तिक मास में सर्वदा प्रशंसनीय अन्नदान करें। कार्त्तिक मास में पराया अन्न वर्जन करने से चान्द्रायण व्रतफल होता है। इस मास में परान्नत्यागी व्यक्ति एक-एक दिन अतिकृच्छ्रव्रत फल की प्राप्ति करता है।।१२-१७।।

कार्त्तिकेवर्जयेन्मासंसन्धानञ्चविशेषतः। राक्षसींयोनिमाप्नोतिसकृन्मांसस्यभक्षणात्॥१८॥
प्रवृत्तानां तु भक्ष्याणांकार्त्तिके नियमेकृते। अवश्यं विष्णुरूपत्वं प्राप्यतेमोक्षदंपदम्॥१९॥
ब्राह्मणेभ्यो महीं दत्त्वा ग्रहणे सूर्यचन्द्रयोः। यत्फलंलभतेवत्स! तत्फलंभूमिशायिनः॥२०॥
भोजनं द्विजदम्पत्योःपूजनं चविलेपनैः। कम्बलानिचरत्नानिवासांसि विविधानिच॥२१॥
तूलिकाश्च प्रदातव्याः प्रच्छादनपटैः सह। उपानहावातपत्रं कार्त्तिके देहि सुव्रत!॥२२॥

कार्त्तिक मास में विशेषतः मद्यादि तथा मांस का त्याग करें। जो इस मास में एक बार भी मांसभक्षण करता है, उसे राक्षस योनि मिलती है। निषिद्ध वस्तुओं की तो बात ही क्या, कार्त्तिक मास में तो जो वस्तु निषिद्ध नहीं है, उसके भक्षणार्थ भी नियमित होने पर मोक्षप्रद विष्णु का सारूप्य अवश्य प्राप्त होता है। सूर्य-चन्द्रग्रहण में ब्राह्मण को भूमिदान देने का जो फल है, कार्त्तिक में भूमिशयन का भी वही फल मिलता है। कार्त्तिक में द्विजपत्नी की चन्दनादि लेपन द्वारा पूजा करें तथा कम्बल, रत्न, नानावस्त्र तथा चादर आदि के साथ शय्या प्रदान करें। हे सुव्रत! जूता तथा छत्र भी द्विजपत्नी को प्रदान करें।।१८-२२।।

कार्त्तिकेक्षितिशायीचहन्यात्पापंयुगार्जितम्। जागरं कार्त्तिकेमासियःकरोत्यरुणोदये।।२३।।
दामोदराग्रे देवर्षे! गोसहस्त्रफलं लभेत्। नदीस्नानं कथा विष्णोर्वैष्णवानाञ्चदर्शनम्।।२४।।
नभवेत्कार्त्तिके यस्यहरेत्पुण्यं दशाब्दिकम्। पुष्करंयःस्मरेत्प्राज्ञःकर्मणा मनसागिरा।।२५।।
कार्त्तिके मुनिशार्दूल! लक्षकोटिगुणं भवेत्। प्रयागोमाघमासे तु पुष्करंकार्त्तिके तथा।।२६।।
अवन्ती माधवेमासिहन्यात्पापंयुगार्जितम्। धन्यास्तेमानवालोकेकलिकालेविशेषतः।।२७।।
ये कुर्वन्ति नरा नित्यं प्रीत्यर्थं हरिपूजनम्। तारितास्तैश्च पितरो नरकाच्च न संशयः।।२८।।

कार्त्तिक मास में भूमि पर शयन करने वाले का युग-युग में अर्जित पाप नष्ट हो जाता है। कार्त्तिक मास में दामोदर के सामने जो नर अरुणोदय तक जागरण करता है, उसे सहस्र गोदान फल की प्राप्ति होती है। कार्त्तिक में जो नदी स्नान, विष्णु कथा श्रवण तथा वैष्णवों का दर्शन नहीं करते, उनका दस वर्ष का पुण्य नष्ट हो जाता है। कार्त्तिक मास में शरीर-मन-वाणी द्वारा जो मनुष्य पुष्कर का स्मरण करता है, उसे लक्षकोटिगुणित फललाभ होता है। हे मुनिशार्दूल! माघ में प्रयाग, कार्त्तिक में पुष्कर, मधुमास में अवन्ती में युगार्जित पापों का नाश हो जाता है। मानव विशेषतः कलिकाल में हरि की प्रसन्नता प्राप्ति हेतु कार्त्तिक में भगवान् का पूजन करता है, वह धन्य है। वह निःसंशय पितरों का नरक से उद्धार कर देता है।।२३-२८।।

क्षीरादिस्नपनंविष्णोःक्रियतेपितृकारणात्। कल्पकोटिं दिवंप्राप्यवसन्तित्रिदिवैःसह।।२९।।
कार्त्तिकेनाऽर्चितोयैस्तुकृष्णस्तुकमलेक्षणः। जन्मकोटिषु विप्रेन्द्र! नतेषांकमलागृहे।।३०।।
अहो मुष्टा विनष्टास्ते पतिताःकलिकन्दरे। यैर्नाऽर्चितोहरिर्भक्त्याकमलैरसितैः सितैः।।३१।।
पद्मेनैकेन देवेशं योऽर्चयेत्कमलापतिम्। वर्षायुतसहस्त्रस्य पापस्य कुरुते क्षयम्।
पुष्कराऽर्चनयोगेन श्वेतो मुक्तिमवाप ह।।३२।।

जो पितरों के उद्देश्य से हरि को क्षीर आदि से स्नान कराता है, वह देवगण के साथ कोटिकल्पकाल तक स्वर्ग में निवास करता है। जो व्यक्ति कार्त्तिक मास में कमलनयन कृष्ण की पूजा नहीं करता, करोड़ों जन्म तक कमला उसके गृह में नहीं आतीं। हे विप्रेन्द्र! जो लोग श्वेत तथा कृष्ण कमल से भगवत् पूजन नहीं करते, वे मूढ़ हैं। अवश्य ही वे कलिकाल में शीघ्रपतित होते हैं। जो मात्र एक कमल से भी देवेश कमलापति की पूजा करते हैं, उनका १०००० वर्ष का भी पाप क्षयीभूत हो जाता है। श्वेतराज ने मात्र एक पद्म से पूजा करके मुक्ति लाभ किया था।।२९-३२।।

अपराधसहस्त्राणि तथा सप्तशतानि च। पद्मेनैकेन देवेशः क्षमते प्रणतोऽर्चितः।।३३।।

तुलसीपत्रलक्षेण कार्त्तिके योऽर्चयेद्धरिम्। पत्रेपत्रे मुनिश्रेष्ठ! मौक्तिकं लभते फलम्॥३४॥
मुखेशिरसि देहेतु कृष्णोत्तीर्णांतुयोवहेत्। तुलसींकृष्णनिर्माल्यैर्योगात्रंपरिमार्जयेत्।
सर्वरोगैस्तथा पापैर्मुक्तो भवति मानवः॥३५॥
शङ्खोदकं हरेर्भक्तिर्निर्माल्यं पादयोर्जलम्। चन्दनं धूपशेषं च ब्रह्महत्यापहारकम्॥३६॥
कार्त्तिकेमासि विप्रेन्द्रप्रातःस्नानपरायणः। विप्रेभ्यश्चाऽन्नदानं तुकुर्याच्छक्त्यनुसारतः॥३७॥
सर्वेषामेव दानानामन्नदानं विशिष्यते। अन्नेन जायते लोकनैह्यन्नेवाऽभिवर्द्धते॥३८॥

एक हजार सात सौ अपराध करने वाला भी यदि एक ही कमल से देवेश विष्णु की अर्चना तथा प्रणाम करता है तब श्रीहरि उसे क्षमा कर देते हैं। हे मुनिवर! कार्त्तिक में एक लाख तुलसी से जो मनुष्य हरि पूजन करता है, उसे प्रत्येक तुलसीपत्र से मुक्तिफल लाभ होता है। जो मनुष्य विष्णु के लिये तुलसी चयन करता है तथा विष्णु को प्रदान करता है तथा उनका निर्माल्य मस्तक, मुख तथा देह पर धारण करता है तथा इस तुलसी से शरीर परिमार्जित करता है, उसके सभी रोग तथा पाप दूर हो जाते हैं। हरि के प्रति भक्ति, शंख जल, हरि निर्माल्य, पादोदक, चन्दन तथा धूपशेष—ये सब ब्रह्महत्या तक का नाश कर देते हैं। हे विप्रेन्द्र! कार्त्तिक मास में उठकर प्रातःस्नान करने वाला व्यक्ति शक्ति के अनुरूप ब्राह्मणों को अन्नदान करे। सभी दान में अन्नदान प्रशस्त है। अन्न से ही लोक उत्पन्न होते हैं तथा अन्न से ही लोक परिवर्द्धित होते हैं।।३३-३८।।

अन्नं हि सर्वभूतानां प्राणभूतं परं विदुः। अन्नदः सर्वदो लोके सर्वयज्ञादिकृद्भवेत्॥३९॥
तीर्थस्नानेनकिंतस्य देवयात्रादिनाऽपि किम्। सर्वं सम्पद्यते ब्रह्मन्नदानान्न संशयः॥४०॥
सत्यकेतुर्द्विजः पूर्वं चाऽन्नदानेन केवलम्। सर्वपुण्यफलम्प्राप्य मोक्षम्प्राप सुदुर्लभम्॥४१॥
कार्त्तिकव्रतनिष्ठस्तु कुर्याद्गोदानमुत्तमम्। व्रतं सम्पूर्णतां याति गोदानेन न संशयः॥४२॥

अन्न ही सर्वभूतसमूह का प्राणभूत है। अन्नदाता तो सर्वप्रदाता तथा याज्ञिकों में अग्रणी है। उसे तीर्थस्नान तथा देवयात्रा से क्या काम! हे ब्रह्मन्! एकमात्र अन्नदान से सब सम्पन्न होता है, इसमें सन्देह नहीं है। सत्यकेतु नामक द्विज ने पूर्वकाल में केवल अन्नदान से ही समस्त पुण्याफल लाभ किया था। साथ ही उनको सुदुर्लभ मोक्ष की भी प्राप्ति हो सकी थी। कार्त्तिक व्रताचरण करने वाला व्रती उत्तम गोदान करे। गोदान से व्रत पूर्ण हो जाता है। इसमें संशय नहीं है।।३९-४२।।

गोदानात्परमंदानं संसारार्णव तारकम्। नास्तिनारदलोकेऽस्मिन्सुशर्माब्राह्मणोयथा॥४३॥
कार्त्तिके मासिविप्रेन्द्र! दत्त्वा दानान्यनेकशः। हरिस्मृतिविहीनश्चेन्न पुनन्तिकदाचन॥४४॥
नामस्मरणमाहात्म्यं मयावक्तुं न शक्यते। पुष्करेण यथा पूर्वं नारकीयाश्च मोचिताः॥४५॥
गोविन्द! गोविन्द! हरे! मुरारे! गोविन्द! गोविन्द! मुकुन्द! कृष्ण!।
गोविन्द! गोविन्द! रथाङ्गपाणे! गोविन्द! दामोदर! माधवेति॥४६॥
श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम्।
कार्त्तिकेयः पठेन्मर्त्यः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः॥४७॥

यैर्न श्रुतं भागवतं पुराणं नाऽऽराधितो वै पुरुषः पुराणः।
हुतं मुखे नैव धरामराणां तेषां वृथा जन्म गतं नराणाम्॥४८॥
कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र! यस्तु गीतां पठेन्नरः। तस्यपुण्यफलं वक्तुं ममशक्तिर्नविद्यते॥४९॥
गीतायास्तु समं शास्त्रं न भूतं न भविष्यति। सर्वपापहरानित्यंगीतैकामोक्षदायिनी॥५०॥
एकेनाऽध्यायपाठेन सर्वपापकृतोऽपि च। मुच्यन्ते नरकाद्धोराज्जडोवै ब्राह्मणो यथा॥५१॥
शालिग्राम शिलादानं यः कुर्यात्कार्त्तिके मुने!।
तस्य पुण्यस्य विश्रान्तिर्विष्णुना न निरूपिता॥५२॥
शालिग्रामं समभ्यर्च्य श्रोत्रियाय महामुने!। दानं यः कुरुतेविप्र! तस्यपुण्यफलंश्रृणु॥५३॥
सप्तसागरपर्यन्तं भूदानाद्यत्फलं भवेत्। शालिग्रामशिलादानात्तत्फलं समवाप्नुयात्॥५४॥
शालिग्रामशिलादानात्कार्त्तिके ब्राह्मणी यथा। विधवा सधवाजाताविवाहेपञ्चमेऽहनि॥५५॥
तस्मात्तु कार्त्तिकेमासि स्नानदानपुरःसरम्। शालिग्रामशिलादानंकर्तव्यंनाऽत्रसंशयः॥५६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्येब्रह्मनारद-
सम्वादे कार्त्तिकव्रतधर्मनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः।

हे नारद! गोदान से बढ़कर संसार सागर पार कराने वाला इस लोक में अन्य कोई दान है ही नहीं। सुशर्मा नामक एक विप्र गोदान करके संसार सागर को पार कर गये थे। हे विप्रेन्द्र! मानव कार्त्तिक मास में अनेक दान करके भी हरिस्मरण किये बिना कदापि पवित्र नहीं होता। हरिनाम स्मरण के माहात्म्य वर्णन का सामर्थ्य मुझमें नहीं है। पुष्करक्षेत्र में तो नारकीय भी हरिस्मरण द्वारा मुक्त हो जाते हैं। कार्त्तिक में गोविन्द, गोविन्द, हरि, मुरारी, रथाङ्गपाणि, गोविन्द-गोविन्द, मुकुन्द कृष्ण, गोविन्द, दामोदर, माधव इस श्लोक को अथवा इसके आधे किंवा चौथाई श्लोक का जो मानव भक्ति श्रद्धान्वित होकर नित्य पाठ करता है, इसी से उसका भागवत पारायण भी सम्पन्न हो गया! जो लोग भागवत पुराण श्रवण, पुराणपुरुष की आराधना तथा सुरगण के मुख में हवन नहीं करते, उनका मानव जन्म व्यर्थ है। हे विप्रेन्द्र! जो कार्त्तिक में गीता पाठ करते हैं, उनका पुण्यफल मैं नहीं कह सकता। गीता के समान शास्त्र न तो है न होगा। अतः एकमात्र गीता ही सर्वपापहारिणी तथा मोक्षदा है। महापापी भी गीता के एक अध्याय का पाठ करके जड़ नामक ब्राह्मण की तरह नरक से छुटकारा पाते हैं। हे मुनिवर! जो नर कार्त्तिकमास में शालग्राम शिलादान करता है, उसकी पुण्य सीमा नहीं कही जा सकती। हे महामुनि! शालग्राम की सम्यक् पूजा करके जो श्रोत्रिय को वह दान करता है, उसका पूजा फल सुनें। वह सप्तसागर तक की भूमि को दान करने का फललाभ करता है। कार्त्तिक मास में शालग्राम शिलादान द्वारा एक ब्राह्मण पत्नी विवाह के पंचम दिन ही विधवा हो जाने पर भी पुनः सधवा हो गयी। अतः कार्त्तिक मास में स्नान-दान करके शालग्राम शिलादान करें।।४३-५६।।

।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।

तृतीयोऽध्यायः

कार्त्तिक वैभववर्णन, अश्वत्थपूजन

ब्रह्मोवाच

भूयः शृणुष्व विप्रेन्द्र! कार्त्तिकस्य चवैभवम्। दशमीदिनमारभ्यदशम्यांतुसमापयेत्।।१।।
पौर्णमासीं समारभ्य पौर्णमास्यां समापयेत्।
आश्विनस्य हरिदिनीं समारभ्य तु भक्तिमान्।।२।।
दामोदरं नमस्कृत्य कुर्यात्सङ्कल्पमादितः। दामोदर! नमस्तेऽस्तु सर्वपापविनाशन!।।३।।
कार्त्तिकस्य व्रतं कर्तुमनुज्ञां दातुमर्हसि। निर्विघ्नं कुरुदेवेश आमासं पुरुषोत्तम!।४।।
इतिसम्प्रार्थ्य विधिनाकार्त्तिकव्रतमाचरेत्। अनूरुं वदता प्रोक्तं भास्करेण श्रुतं मया।
कलौ च स्वर्गगमनकारणं श्रूयतां हि तत्।।५।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्रेन्द्र! पुनः कार्त्तिक माहात्म्य सुनो। जो व्रत दशमी से आरंभ करते हैं, उसे दशमी के ही दिन समाप्त करें। इसी प्रकार पूर्णिमा से प्रारंभ व्रत का समापन पूर्णिमा को ही करें। भक्तिमान मानव आश्विन मासीय संक्रान्ति के दिन यह प्रार्थना करें "हे दामोदर! सर्वपापनाशक! आपको प्रणाम! मुझे कार्त्तिक मास के व्रत को करने की आज्ञा दीजिये। हे देवेश! पुरुषोत्तम! मेरे व्रत को निर्विघ्न सम्पन्न करिये।" यह पाठ करके तथा प्रणाम करने के पश्चात् संकल्प करें। एवंविध कार्त्तिक व्रतारंभ करें। हे नारद! कलिकाल में यह व्रत स्वर्गप्राप्ति का कारण है। जब सूर्य ने अरुण को यह व्रत करने का आदेश दिया था तब मैंने इसे सुना था। अब तुम इसे सुनो।।१-५।।

सूर्य उवाच

द्वादशानां तु मासानां मार्गशीर्षोऽतिपुण्यदः।।६।।
तस्मात्पुण्यफलः प्रोक्तो वैशाखो नर्मदातटे। ततोलक्षगुणः प्रोक्तः प्रयागेमाघमासकः।।७।।
तस्मान्महाफलःप्रोक्तः कार्त्तिको जलमात्रके। एकतः सर्वदानानिव्रतानिनियमास्तथा।।८।।
एकतः कार्तिकस्नानं ब्रह्मणातुलया धृतम्। सन्ततिश्चैव सम्पत्तिः कलौयेषांप्रजायते।।९।।
अवश्यं तैः कृतं विद्धिकार्त्तिकस्नानमादरात्। स्नानं चदीपदानं च तुलसीवनपालनम्।।१०।।
भूमिशय्या ब्रह्मचर्यं तथाद्विदलवर्जनम्। विष्णुसङ्कीर्तन सत्यं पुराणश्रवणं तथा।।११।।
कार्त्तिकेमासिकुर्वन्तिजीवन्मुक्तास्तएवहि। नकार्त्तिकसमंधर्म्यमर्थ्यंकार्त्तिकात्परम्।।१२।।
न कार्त्तिकसमं काम्यं मोक्षदानं न कार्त्तिकात्। युधिष्ठिरेण धर्मार्थमर्थार्थं चध्रुवेणच।।१३।।
श्रीकृष्णेन तु कामार्थं मोक्षार्थं नारदेन च। कृतमेतद्व्रतंतस्माच्छ्रेष्ठंकृष्णप्रियं च हि।।१४।।

सूर्य कहते हैं—बारह मासों में से मार्गशीर्ष अत्युत्तम है। यह पुण्यप्रद है। इससे पुण्यप्रद है वैशाख।

विशेष करके वैशाख नर्मदा तट पर अधिक पुण्यप्रद होता है। उससे लाखों गुणित फलद है माघ में प्रयाग स्नानादि। उससे किसी भी जल में कार्त्तिक स्नान अधिक पुण्यफलप्रद है। ब्रह्मा ने एक ओर कार्त्तिक स्नान तथा दूसरी ओर समस्त दान, समस्त व्रत तथा नियमों को रखकर तौला था। कलिकाल में जिनके पास सम्पत्ति तथा संगति देखी जाती है, उन्होंने कार्त्तिक मास में सादर स्नान किया था, यह प्रतीत होता है। जो कार्त्तिक में स्नान दीपदान, तुलसीकानन रक्षा-पालन, भूमिशयन, ब्रह्मचर्य, दाल का वर्जन, विष्णु संकीर्त्तन, सत्यभाषण तथा पुराण श्रवण करते हैं, वे निश्चित रूप से जीवन्मुक्त ही हैं। कार्त्तिक के समान धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष साधक अन्य मास नहीं है। युधिष्ठिर ने धर्म तथा ध्रुव अर्थसिद्धि हेतु, श्रीकृष्ण की कामना पूर्त्ति के लिये तथा नारद ने मोक्ष की अभिलाषा से कार्त्तिक व्रत सम्पन्न किया था। तभी कार्त्तिक विष्णुप्रिय है तथा श्रेष्ठ मास है।।६-१४।।

अरुण उवाच

ब्रूहि भास्कर! सर्वात्मन्कदाऽऽरभ्यव्रतंकृतम्। सफलंजायतेसम्यक्काचपूज्याऽत्रदेवता॥१५॥

अरुण कहते हैं—हे भास्कर! उन लोगों ने किस समय इस व्रत का आरंभ किया था? उनका व्रत कैसे सफल हो सका? कौन देवता इस व्रत द्वारा पूजित हुये? हे ब्रह्मन्! यह सब कहिये।।१५।।

भास्कर उवाच

अहं विष्णुश्च शर्वश्चदेवीविघ्नेश्वरस्तथा। एकोऽहं पञ्चधाजातोनाट्येसूत्रधरो यथा॥१६॥
अस्माकं सर्व एवैतेभेदा विद्धिखगेश्वर!। तस्मात्सौरैश्चगाणेशैःशाक्तैःशैवैश्चवैष्णवैः॥१७॥
कर्तव्यं कार्त्तिकस्नानं सर्वपापापनुत्तये। सूर्यस्य प्रीतये कार्यं तुलासंस्थे दिवाकरे॥१८॥
इषपूर्णां समारभ्ययावत्कार्त्तिकपूर्णिमा। तावत्स्नानं विधातव्यं शिवसन्तुष्टये नरैः॥१९॥
देवीपक्षं समारभ्य महारात्रिचतुर्दशी। तावत्स्नानं विधातव्यं देवी सम्प्रीयतामिति॥२०॥
गणपक्षं समारभ्य कृष्णा याकार्त्तिके भवेत्। चतुर्थी तावदेव स्यात्स्नानंगणपतुष्टये॥२१॥
एकादशींसमारभ्यआश्विनस्याऽसितेतराम्। एकादश्यांकार्त्तिकस्यशुक्लायांपरिपूर्यते।
कृतं येन तु तस्य स्यात्परितुष्टो जनार्दनः॥२२॥

भास्कर देव कहते हैं—हे खगेश्वर! मैं, विष्णु, ईशान, देवी तथा गणेश सूत्रधार के नाट्य की तरह एक होकर भी पंचधा विभक्त हो गये हैं। इस सब को मेरा ही पारस्परिक भेद जानो। अतः निखिल पापों के नाश के लिये सौर, गाणपत्य, शाक्त, शैव, वैष्णव सम्प्रदाय के लोग कार्त्तिक स्नान का आचरण करेंगे। सूर्य की प्रसन्नता पाने के लिये आश्विन पूर्णिमा से लगाकर कार्त्तिक पूर्णिमा पर्यन्त कार्त्तिक स्नान करें। इस तरह से शिव सन्तोषार्थ भी मनुष्य पूर्वोक्त रूप से कार्त्तिक स्नान सम्पन्न करे। इसके अतिरिक्त देवीपक्ष से प्रारंभ करके महारात्रि की चतुर्दशी तक देवी की प्रसन्नता के लिये तथा गणपक्ष से प्रारंभ करके कार्त्तिक कृष्ण चतुर्दशी पर्यन्त गणेश की प्रसन्नता हेतु कार्त्तिक स्नान करना चाहिये। आश्विन मास की शुक्ला एकादशी से लगाकर कार्त्तिक शुक्ला एकादशी पर्यन्त विष्णु की प्रसन्नता हेतु जो मानव कार्त्तिक स्नान करता है विष्णुदेव उस पर प्रसन्न हो जाते हैं।।१६-२२।।

न कार्त्तिक समो मासो न काशीसदृशी पुरी। न प्रयागसमं तीर्थं न देवः केशवात्परः॥२३॥
प्रसङ्गाद्वाबलात्करैर्ज्ञात्वाज्ञात्वाकृतंभवेत्। स्नानंकार्त्तिकमासस्यनपश्येद्यमयातनाम्॥२४॥
स्नानार्थं चेन्न सामर्थ्यं दत्वाऽन्यस्मै धनादिकम्।
स्नातस्य तस्य हस्तस्य ग्रहणात्पुण्यभाग्भवेत्॥२५॥
अथवाकार्त्तिकस्नानं ये कुर्वन्तिद्विजातयः। तेषांप्रावरणंदत्त्वास्नानजंफलमाप्नुयात्॥२६॥
राधादामोदरः पूज्यः कार्त्तिके तु विशेषतः॥२७॥

कार्त्तिक के समान मास नहीं है, काशी के समान पुरी नहीं है, प्रयाग के समान तीर्थ नहीं है, केशव के समान देवता नहीं है। प्रसंगपूर्वक अथवा बलात्, किंवा जानबूझ कर अथवा अनजाने में हो, चाहे जैसे भी हो, कार्त्तिक स्नान करने वाला यमयातना भोग नहीं करता। यदि स्नान का सामर्थ्य न हो, तब अन्य व्यक्ति को धन देकर उसके हाथ से उसका पुण्य ग्रहण करें अथवा जो द्विज कार्त्तिक स्नान करते हैं, उनको शीतवस्त्र (जाड़े का गर्म वस्त्र) प्रदान करें। विशेषतः कार्त्तिक मास में राधा तथा दामोदर का पूजन करने से स्नानफल प्राप्त होता है।।२३-२७।।

स्वर्णस्य वाऽथ रौप्यस्याऽप्यभावे शुल्बजामपि।
मृज्जां वा चित्रजातां वाऽथ वा पिष्टविचित्रिताम्॥२८॥
दामोदरस्यराधायास्तुलस्यधोऽर्चयन्ति ये। मूर्तिं ते तु नराज्ञेयाजीवन्मुक्तानसंशयः॥२९॥
अपि पापसहस्त्राढ्यःकार्त्तिकस्नानतोनरः।
मुक्तोऽवश्यंसभवतिनाऽत्रकार्याविचारणा॥३०॥
तुलस्यभावे कर्तव्यापूजा धात्रीतले खग!। मुख्यपूजाविधानं तु कर्तव्यं सूर्यमण्डले॥३१॥
अप्रत्यक्षाः सर्वदेवाः प्रत्यक्षो भगवानयम्।
सर्वे देवाःकालवशाःकालकालोदिवाकरः॥३२॥
एतदाराधनेऽशक्तः प्रतिमां पूजयेन्नरः। प्रतिमातोऽधिकं पुण्यं ब्राह्मणस्य तु पूजने॥३३॥

अथवा स्वर्ण, चांदी अथवा ताम्र किंवा मृत्तिका से राधा-दामोदर की चित्र-विचित्रित प्रतिमा बनाकर तुलसी वृक्ष के नीचे उनकी स्थापना करें तथा वहीं पूजा करें। वह पूजक जीवन्मुक्त कहलाता है, इसमें सन्देह नहीं है। भले ही व्यक्ति हजारों पापों से युक्त हो, कार्त्तिक स्नान के फल से वह अवश्य मुक्त होगा। इस विषय में विचार वितर्कादि कुछ भी नहीं करना चाहिये। हे खग! यदि तुलसी प्राप्त न हो, तब आमलकी से भी राधा-दामोदर मूर्त्ति की पूजा की जा सकती है। मुख्य पूजा सूर्यमण्डल में करनी चाहिये। सभी देवता अप्रत्यक्ष हैं, किन्तु भगवान् भास्कर सबको प्रत्यक्ष रहते हैं। सभी देवगण काल के वशीभूत हैं, तथापि प्रभु दिवाकर तो काल के भी काल हैं! जो मनुष्य इनकी आराधना में असमर्थ है, वह प्रतिमा निर्माण द्वारा पूजा करे। ब्राह्मण पूजन करने से प्रतिमा पूजन की अपेक्षा अधिक पुण्य प्राप्त होता है।।२८-३३।।

दरिद्रो दानपात्रं स्याद्विद्यावांस्तुविशेषतः। विप्राभावेपूजनीयागावःकृष्णामनोहराः॥३४॥

विष्णोमूर्तिर्जङ्गमतः स्थावरा तु प्रशस्यते। शूद्रस्थापितमूर्तीनांनमस्कारंकरोतियः।
पितृभिर्निरयं याति दशपूर्वैर्दशापरैः॥३५॥
शूद्रार्चितस्य संस्पर्शाद्दहेदासप्तमं कुलम्॥३६॥

दरिद्र ही दान का पात्र है, तथापि यदि दरिद्र विद्वान् भी है, तब वह दान के लिये उत्तम पात्र है। विप्र का अभाव न हो, तब मनोहर कृष्ण गौ की पूजा करनी चाहिये। जंगम मूर्त्ति की अपेक्षा विष्णु की दारुमयी मूर्त्ति प्रशस्त है। जो व्यक्ति शूद्र द्वारा स्थापित मूर्त्ति को प्रणाम करता है, वह दस पीढ़ी पूर्व वाले पूर्वजों तथा आगामी दस पीढ़ी के वंशजों के साथ नरकगामी होता है। शूद्र द्वारा अर्चित मूर्त्ति के संस्पर्श से वह सात कुल पर्यन्त दग्ध हो जाता है।।३४-३६।।

तस्माद्विचार्य्य विप्रैर्या स्थापिता तां समर्चयेत्।
ततोऽपि या देवताभिः कृता सा भुक्तिमुक्तिदा॥३७॥
मूर्त्यभावे पूजनीयोऽश्वत्थो वाऽथ वटोऽथ वा।
अश्वत्थरूपी विष्णुः स्याद्वटरूपी शिवो यतः॥३८॥
कार्त्तिके तुलसीशाकं ताम्बूलं वा नराधमः।
अज्ञानाज्ज्ञानतो वाऽपि भुञ्जानो निरयं व्रजेत्॥३९॥

शालग्रामशिलाचक्रे नित्यं सन्निहितो हरिः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शालग्रामं प्रपूजयेत्॥४०॥
रुद्रशापवशाद्गावो विष्ठाभक्षणतत्पराः। तथाऽपि ताः पूजनीया लोकद्वयफलप्रदाः॥४१॥

ब्रह्मांऽशकसमुद्भूते पालाशे यस्तु भोजनम्।
कुर्यात्कार्तिकमासेऽसौ विष्णुलोकं प्रयास्यति॥४२॥

इसलिये पूजक को चाहिये कि वह ब्राह्मण द्वारा प्रतिष्ठित मूर्त्ति को जानकर उसकी पूजा करें। देवगण द्वारा स्थापित तथा भुक्ति-मुक्तिप्रद मूर्त्ति पूर्वापेक्षा अधिक उत्तम है। मूर्त्ति का अभाव होने पर पीपल किंवा वट वृक्ष की पूजा करें, क्योंकि विष्णु अश्वत्थरूप से तथा शिव वटवृक्ष रूप से विराजमान हैं। जानबूझ कर अथवा अनजाने में जो नराधम कार्त्तिक में तुलसी शाक अथवा ताम्बूल भक्षण करता है, उसे नरकगामी होना पड़ेगा। शालग्राम शिलाचक्र में हरि सदा अधिष्ठित रहते हैं। अतः सर्वप्रयत्न से शालग्राम की पूजा करनी चाहिये। रुद्रशाप से गौयें विष्ठाभोजी हो गयीं, तथापि इहलोक एवं परलोक साधनार्थ गौयें ही पूज्य हैं। कार्त्तिकमास में जो मानव ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न पलाशपत्र पर भोजन करता है, उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है।।३७-४२।।

अश्वत्थरूपी भगवान्वटरूपी सदाशिवः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकार्त्तिकेऽश्वत्थमर्चयेत्॥४३॥
या नारी कार्त्तिके मासिलक्षंकुर्यात्प्रदक्षिणाः। राधादामोदरं पूज्य मन्दवारे च तत्तले॥४४॥
दम्पती भोजयेद्राधादामोदरस्वरूपिणौ। भोजयित्वा सपत्नीकान्पश्चाद्भुञ्जीतवाग्यता॥४५॥
वन्ध्याऽपि लभतेपुत्रमितरासांतुकाकथा। सदासन्निहितोविष्णुर्द्विपत्सुब्राह्मणेयथा॥४६॥

बोधिद्रुमे पादपेषु शालग्रामे शिलासु च। तस्मादश्वत्थमूलेवै कर्तव्यं विष्णुपूजनम्॥४७॥
अश्वत्थपूजास्पर्शेन कर्त्तव्या शनिवासरे। अन्यवारेऽश्वत्थसङ्गाद्दरिद्रो जायते नरः॥४८॥
स्नानं जागरणं दीपं तुलसीवनपालनम्। कार्त्तिके मासि कुवन्तिते नराविष्णुमूर्तयः॥४९॥
सम्मार्जनंविष्णुगृहेस्वस्तिकादिनिवेदनम्। विष्णोःपूजांचयेकुयुर्जीवन्मुक्तास्तुतेनराः॥५०॥
स्नानकालं प्रवक्ष्यामि तीर्थादिषु च यत्फलम्।
स्नानधर्माश्च ये केचित्तान्सर्वान्मे निबोधत॥५१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे कार्त्तिकवैभववर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

भगवान् विष्णु पीपल रूप तथा भगवान् शिव वटवृक्ष रूप हैं। इसलिये कार्त्तिक मास में सर्वप्रयत्न पूर्वक पीपल वृक्ष की पूजा करनी चाहिये। जो नारी कार्त्तिक मास के शनिवार को यत्नतः राधा दामोदर का पूजन करके उनकी एक लाख प्रदक्षिणा तथा राधा-दामोदर की भावना ब्राह्मण दम्पति में करके उनको भोजन कराती है तथा तदनन्तर स्वयं भोजन करती है, वह वन्ध्या, भले ही हो तथापि पुत्रवती हो जाती है। द्विपदद्विज, बोधिवृक्ष, शालग्राम शिला में विष्णु सदैव विराजमान रहते हैं। अतः पीपल वृक्ष के नीचे विष्णुपूजन करना चाहिये। एकमात्र शनिवार को ही पीपल का स्पर्श एवं पूजन करें। अन्य वारों के दिन उसका स्पर्श करने वाला दरिद्र हो जाता है। जो कार्त्तिक मास में स्नान, जागरण, दीपदान, तुलसी कानन रक्षण-पालन कार्य करते हैं, वे साक्षात् विष्णु ही हैं। जो विष्णु के देवालय का मार्जन, स्वस्तिकादि अर्पण तथा विष्णुपूजा करते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं। अब तीर्थों में स्नान काल, स्नान फल तथा स्नानधर्मादि को जानो॥४३-५१॥

॥तृतीय अध्याय समाप्त॥

चतुर्थोऽध्यायः

कार्त्तिक स्नानविधि, कार्त्तिकमास का श्रेष्ठत्व, कावेरी महत्व वर्णन

ब्रह्मोवाच

नाडीद्वयावशिष्टायांरात्र्यांगच्छेज्जलाशयम्। तुलसीमृत्तिकायुक्तः सवस्त्रकलशोमुने॥१॥
आगत्य तोयनिकटे तीरे संस्थाप्यपात्रकम्। पादप्रक्षालनंकृत्वादेशकालादिचोच्चरेत्॥२॥

स्मरेद्गङ्गाकादिनद्योविष्णुशर्वादि देवताः। नाभिमात्रेजलेस्थित्वा मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥३॥
कार्त्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन!। प्रीत्यर्थं तव देवेश! दामोदर! मया सह॥४॥
नित्ये नैमित्तिके कृत्वाकार्त्तिकेपापनाशन। स्नानं चार्घं प्रदास्यामि निर्विघ्नंकुरुकेशव॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब रात्रिकाल नाड़ीद्वय बाकी रहे, तब तुलसी की मिट्टी, वस्त्र तथा कलस लेकर जलाशय नदी आदि तक जाये। तदनन्तर जल के पास आकर तट पर पात्र रखकर देश-काल का उल्लेख करें। तत्पश्चात् गंगादि नदी तथा विष्णु-शिव आदि देवगण का स्मरण करके नाभिमात्र जल में खड़े होकर मन्त्रोच्चार करे—"हे जनार्दन! आपकी प्रसन्नता के लिये मैं प्रातःस्नान करूंगा। हे देवेश दामोदर! नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं के अनुष्ठान को सम्पन्न करके सपत्नीक जनार्दन के उद्देश्य से स्नान तथा अर्घ्यदान करूंगा। हे पापनाशन! आप उसे विघ्नरहित करिये—"।।१-५।।

तीर्थादिदेवताभ्यश्चक्रमादर्घ्यादिदापयेत्। गृहाणाऽर्घ्यंमया दत्तं राधया सहितोहरे!॥६॥
नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने। नमस्तेऽस्तुहृषीकेश! गृहाणार्घ्यंनमोऽस्तुते॥७॥
व्रतिनः कार्त्तिके मासि स्नातस्यविधिवन्मम। गृहाणाऽर्घ्यं मयादत्तंदनुजेन्द्रनिषूदन!॥८॥
किरणा धूतपापा चतुण्यतोया सरस्वती। गङ्गा च यमुना चैव पञ्चनद्यः पुनन्तुमाम्॥९॥
अन्यासाञ्च नदीनाञ्च दद्यादर्घ्यं यथाविधि। जाह्नवीस्मरणं कुर्यात्सर्वतीर्थेषु मानवः॥१०॥
नाऽन्यत्तीर्थं तुजाह्नव्यांस्मरणीयंकदाचन। एतान्मन्त्रासमुच्चार्य मलस्नानंसमाचरेत्॥११॥

तत्पश्चात् तीर्थ देवताओं के उद्देश्य से क्रमशः अर्घ्यादि प्रदान करें। तत्पश्चात् कहें—"हे प्रभु कमलनाभ आपको प्रणाम, हे जलशायी आपको प्रणाम! हे हृषीकेश! मेरे द्वारा प्रदत्त अर्घ्य ग्रहण करिये। आपको नमस्कार करता हूं।" इस मन्त्र से राधा-दामोदर को अर्घ्य देना चाहिये। इसके अनन्तर "विगतपापा, किरणा, पुण्यतोया सरस्वती, गंगा तथा यमुना रूप पंच नदियां मुझे पवित्र करें" यह कहकर पंच नदियों को यथाविधि अर्घ्य प्रदान करें। मनुष्य सभी तीर्थजल में गंगा की भावना कर सकता है, परन्तु गंगाजल में किसी अन्य तीर्थ की भावना कभी नहीं करनी चाहिये। यह मन्त्र सम्यक्तः उच्चारण करके स्नान करे जिससे शरीर का मैल हट जाये।।६-११।।

मृत्स्नानं चपितृस्नानंगुरुस्नानंततः परम्। ततस्तुपावमानीभिरभिषिञ्चेत्स्वमस्तकम्॥१२॥
अघमर्षणकं कृत्वा स्नानाङ्गं तर्पणं तथा। ततः पुरुषसूक्तेन जलं शिरसि सिञ्चयेत्॥१३॥
ततस्तु बहिरागत्य तीर्थं शिरसि निक्षिपेत्। तीर्थं पीत्वा त्रिवारन्तु तुलसीं गृह्य पाणिना॥१४॥
ततो जलाद्विनिष्क्रम्य चाञ्चलं पीडयेद्बहिः। यन्मयादूषितं तोयं शारीरमलसञ्चयैः॥१५॥
तद्दोषपरिहार्थं यक्ष्मणं तर्पयाम्यहम्। वस्त्रनिष्पीडनं कृत्वाकुर्याच्च तिलकादिकम्॥१६॥

तदनन्तर क्रमशः मृत्तिकास्नान, पितृस्नान एवं गुरुस्नान करना चाहिये। पहले पावमानी सूक्त से अपने मस्तक का अभिषेक, तदनन्तर अघमर्षण मन्त्र से स्नानादि तर्पण, तदनन्तर पुरुषसूक्त से मस्तक का जलसिंचन करना चाहिये। तत्पश्चात् कुछ बाहर निकलकर मस्तक पर तीर्थजल प्रदान, तीर्थ जलपान, हाथों से तुलसी ग्रहण करके बाहर आये और पहने वस्त्र का आंचल निचोड़े। वस्त्रांचल निचोड़ते समय मूलोक्त श्लोक पढ़ें।

"यन्मयादूषितं तोयं शारीरमल सञ्चयैः। तद्दोष परिहार्थं यक्ष्मणं तर्पयाम्यहम्।।"

तदनन्तर वस्त्र निचोड़कर तिलक लगाये।।१२-१६।।

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे कार्त्तिकस्नानजम्फलम्। अरुणं प्रतिसूर्येण यदुक्तं च सविस्तरम्॥१७॥

सूत जी कहते हैं—हे ऋषिगण! भगवान् दिवाकर ने अरुण से जिस प्रकार सविस्तार कहा था, वह कार्त्तिक स्नानफल कहता हूं। सुनिये!।।१७।।

अरुण उवाच

कस्मिंस्तीर्थे विशेषेण फलं कार्त्तिकसम्भवम्?।
क्षेत्रे वा एतदाऽऽख्याहि भगवन्स्नानयोगतः॥१८॥

अरुण कहते हैं—हे प्रभो! किस तीर्थ में विशेषतः कार्त्तिक स्नान का क्या फल है वह कहिये।।१८।।

सूर्य उवाच

यत्र कुत्राऽपि कर्तव्यंजलेत्नानंतु कार्तिके। उष्णोदकेन कर्तव्यंस्नानंकुत्राऽपिकार्त्तिके॥१९॥
ततो दशगुणं पुण्यं शीततोयनिमज्जनात्। ततः शतगुणं पुण्यं बहिःकूपोदके कृतम्॥२०॥
कूपात्सहस्त्रगुणितं फलं वापीनिषेकतः। ततोऽयुतगुणं पुण्यं तडागस्नानतो भवेत्॥२१॥
ततो दशगुणं पुण्यं निर्झरेषु निमज्जनात्। ततोऽधिकतरं पुण्यं नदीस्नानस्यकार्त्तिके॥२२॥
नद्या दशगुणं प्रोक्तं तीर्थस्नानं खगोत्तम!। ततो दशगुणं पुण्यं नद्योर्यत्र च सङ्गमः॥२३॥

सूर्यदेव कहते हैं—कार्त्तिक मास में जिस किसी स्थान में अथवा किसी भी जल में स्नान किया जा सकता है। कार्त्तिक मास में शीतल जल में स्नान की अपेक्षा उष्ण जल स्नान से दशगुणित पुण्य प्राप्त होता है। बहिर्देशस्थ कूप में स्नान करने पर उसकी अपेक्षा भी दस गुना फल मिलता है। वापी स्नान करने से कूप स्नान की अपेक्षा सहस्र गुणित फल मिलता है। तड़ाग स्नान से तो उसकी भी अपेक्षा १०००० गुना फल लाभ होगा। झरने में स्नान द्वारा पूर्वोक्त पुण्य का दस गुना फल मिलेगा। कार्त्तिक में नदी स्नान करने से और भी अधिक पुण्य की प्राप्ति होती है। हे खगोत्तम! नदी स्नान से भी दस गुना पुण्य तीर्थ स्नान से मिलता है। उससे भी दसगुणा पुण्य वहां मिलता है, जहां नदी संगम है।।१९-२३।।

नदीत्रयस्य संयोगे पुण्यस्याऽन्तो न विद्यते।
सिन्धुः कृष्णा च वेणी च यमुना च सरस्वती॥२४॥
गोदावरी विपाशा च नर्मदा तमसा मही। कावेरी सरयूः शिप्रा तथा चर्मण्वतीनदी॥२५॥
वितस्ता वेदिकाशोणोवेत्रवत्यपराजिता। गण्डकीगोमती पूर्णा ब्रह्मपुत्रासरोवरम्॥२६॥
वाग्मती च शतद्रुश्च तथा बदरिकाश्रमः। दुर्लभाः कार्त्तिकेत्वेते तीर्थान्यथनिबोधमे॥२७॥
सर्वेभ्यश्च स्थलेभ्यश्च आर्यावर्तन्तु पुण्यदम्।
कोल्हापुरी ततःश्रेष्ठा ततः काञ्चीद्वयं स्मृतम्॥२८॥

अनन्तसेनवसतिर्वराहक्षेत्रमेव च। चक्रक्षेत्रं ततः पुण्यं मुक्तिक्षेत्रं ततोऽधिकम्।।२९।।
अवन्तिकाततः श्रेष्ठाततोबदरिकाश्रमः। अयोध्या च ततःश्रेष्ठागङ्गाद्वारंततोऽधिकम्।।३०।।
ततः कनखलं तीर्थं ततो मधुपुरी वरा। एकोऽपि कार्त्तिको मासो मथुरायमुनाजले।।३१।।
यैः स्नातस्तेतु वैकुण्ठेबहुकालंवसन्तिहि। राधादामोदरस्तत्रस्वयं स्नातस्तुकार्त्तिके।।३२।।
अतो मधुपुरी श्रेष्ठा यमुना च विशेषतः।।३३।।

तथापि तीन नदी के संगमस्थल पर (त्रिवेणी-प्रयाग) स्नान का जो फल है, वह असीम है। सिन्धु, कृष्णा, वेणा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, विपाशा, नर्मदा, तमसा, मही, कावेरी, सरयु, शिप्रा, चर्मण्वती, वितस्ता, वेदिका, शोण, वेत्रवती, अपराजिता, गण्डकी, गोमती, पूर्णा, ब्रह्मपुत्र, मानस सरोवर, वाग्मती, शतद्रु, बदरिकाश्रम ये सभी तीर्थ कार्त्तिक मास में दुर्लभ हैं। तदनन्तर अन्य तीर्थों के सम्बन्ध में सुनें। सभी स्थानों की तुलना में आर्यावर्त्त अत्यन्त पुण्यप्रद है। यहां पर भी कोल्हापुर, काञ्चीद्वय (दोनों कांची), अनन्तसेन वसति(?), वराहक्षेत्र, चक्रक्षेत्र, मुक्तिक्षेत्र, अवन्तिका, बदरिकाश्रम, अयोध्या, गंगाद्वार, कनखल, मधुपुरी (मथुरा), ये स्थान क्रमशः श्रेष्ठ हैं। इनमें से जो व्यक्ति कार्त्तिक मास में मथुरा के यमुनाजल में एक बार भी स्नान करता है, वह दीर्घकाल तक वैकुण्ठ में निवास करता है। कार्त्तिक मास में स्वयं राधा-दामोदर भी मथुरा में यमुना स्नान करते हैं। अतः मधुपुरी मथुरा तथा विशेष रूप से यमुना श्रेष्ठ है।।२४-३३।।

द्वारावती ततः श्रेष्ठा प्रत्यहं स्नाति केशवः। षोडशस्त्रीसहस्रेण सार्द्धं यादवसंयुतः।।३४।।
द्वारकायांमृत्तिकायास्तिलकोयेनमस्तके। धार्यतेऽसौनरो ज्ञेयो जीवन्मुक्तोनसंशयः।
द्वारकास्नानमाहात्म्यं न वक्तुं शक्यते मया।।३५।।
गोविन्दार्पितचित्तानां जायते पुण्यभास्करा।
ततो भागीरथी श्रेष्ठा यत्र विन्ध्येन सङ्गता।।३६।।
तस्माद्दशगुणं पुण्यं तीर्थराजेऽत्र जायते।।३७।।
कलौ दशसहस्राऽन्ते विष्णुस्त्यक्ष्यतिमेदिनीम्। तदर्द्धंजाह्नवीतोयंतदर्धंदेवतागणाः।।३८।।
यावत्तिष्ठतिगङ्गाऽत्रतावत्तीर्थानिसन्तिच। स्वस्वस्थाने नृणाम्पापंतावदेवहरन्तिच।।३९।।
यदैवगङ्गानष्टा स्यात्कोवातत्पापमाहरेत्। विचार्यैवं सुतीर्थानिगमिष्यन्ति धरातले।।४०।।

इरावती यमुना से श्रेष्ठ है। १६००० स्त्रियों तथा यादवों के साथ केशव यहीं स्नान करते हैं। जो मानव द्वारका की मिट्टी से मस्तक पर तिलक लगाता है, वह जीवन्मुक्त है, इसमें तनिक सन्देह नहीं है। यहां तक कि मैं भी द्वारिका का माहात्म्य वर्णन नहीं कर सकता। जिनका चित्त गोविन्द को अर्पित है, उनके हृदय में ज्ञानरूपी सूर्य का उदय होता है। द्वारावती से भागीरथी श्रेष्ठ है। यह भागीरथी विन्ध्यपर्वत से संगत है। द्वारावती से भी दसगुणित अधिक पुण्य इस तीर्थराज भागीरथी में विद्यमान है। कलिकाल का १०००० वर्ष व्यतीत हो जाने पर विष्णु पृथिवी त्याग कर देंगे। इसके आधे काल में (५००० वर्ष में) जाह्नवी जल तथा उससे आधे काल में ग्राम्यदेवगण पृथिवी का त्याग कर देंगे। पृथिवी पर जब तक गंगा रहेगी, तब तक ही तीर्थ समूह भी अपने-अपने स्थान पर स्थित रहकर वहां मनुष्यों का पाप दग्ध करते रहेंगे। गंगा जब चली जायेंगी,

तब कौन मनुष्यों का पाप हरण करेगा? धरातल पर उत्तम तीर्थ विद्यमान हैं, यही विचार करके गंगादेवी धरातल पर अवतीर्ण हो गयीं।।३४-४०।।

तस्मान्मुनीश्वराः सर्वे यावत्तिष्ठति जाह्नवी।
तावच्च क्रियतां धर्मस्ततो भूमौ निलीयताम्।।४१।।
समाधिं गृह्य सुदृढांयावत्कृतयुगम्भवेत्। अन्यथा कलिकालेन भ्रंशनीयोभवेत्सुधीः।।४२।।

हे मुनीशवरगण! जब तक गंगा स्थित हैं, तब तक आप सब धर्मकार्य करिये। तत्पश्चात् गंगादेवी के गमन के पश्चात् आपलोग भी भूमि में विलीन हो जायें। स्थिर बुद्धि व्यक्ति सुदृढ़ता पूर्वक समाधिस्थित होकर सत्ययुग तक विद्यमान रहे। अन्यथा कलिकाल में भ्रष्ट होना अवश्यंभावी है।।४१-४२।।

ततः श्रेष्ठतरा काशी यस्यानाशो न जायते। यदाश्रयेण गङ्गाऽपि सर्वपापंव्यपोहति।।४३।।
काशिकाया नैव नाशो ब्रह्मण्यपि मृते सति। यद्दर्शनार्थङ्गाऽपिजाताचोत्तरवाहिनी।
तस्याम्पञ्चनदं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।।४४।।
आगते कार्त्तिकेमासिरौरवंनरकंगताः। आक्रोशन्तेतुपितरो वंशेऽस्माकम्भविष्यति।।४५।।
कश्चिद्भाग्यवतां श्रेष्ठो गत्वा पञ्चनदे शुभे। अस्माकं तर्पणं कुर्यान्नरकार्णवतारकम्।।४६।।

जिनके साथ मिलकर गंगा सभी पापों को दूर करती हैं तथा जिसका कभी नाश नहीं होता, वह काशीपुरी सर्वापेक्षा श्रेष्ठतम है। जिनका दर्शन करने हेतु गंगा उत्तरवाहिनी होकर (काशी) आगमन करती हैं, ब्रह्मा के विलीन हो जाने पर भी काशी का कभी विनाश नहीं होता। काशी में पंचनद (पचगंगा) नामक तीर्थ विद्यमान है। कार्त्तिक मास का आगमन होने पर रौरव नरक में पड़े पितृगण आक्षेप के साथ कहते हैं—"हमारे वंश में ऐसा पुरुष श्रेष्ठ कौन है, जो कार्त्तिक मास में शुभ पंचनदतीर्थ आकर हमें तृप्त करके हमारी नरक निवृत्ति करेगा?।।४३-४६।।

तीर्थराजादितीर्थानि प्राप्ते कार्त्तिकमासके। स्नानार्थं पञ्चगङ्गं तु समायान्तिनसंशयः।।४७।।
कृत्वातु लक्षपापानिस्नात्वापञ्चनदेशुभे। बिन्दुमाधवमभ्यर्च्यविलयंयान्तितत्क्षणात्।।४८।।
यैः स्नातं कार्त्तिके मासि सकृत्पञ्चनदेशुभे।
सर्वतीर्थकृतास्नानात्फलंकोटिगुणम्भवेत् ।।४९।।

कार्त्तिक मास में समस्त तीर्थराज स्नानार्थ उक्त पंचगंगा में आते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। लाखों पाप करके भी सुशोभन पंचनद में स्नान करने तथा विन्दुमाधव के पूजन द्वारा समस्त पाप विलीन हो जाते हैं। जो कार्त्तिक मास में एक बार भी पंचनदतीर्थ में स्नान करते हैं, सब तीर्थों में स्नान का जो फल है, उससे करोड़ों गुणित फल की उसे प्राप्ति होती है।।४७-४९।।

ब्रह्मोवाच

कार्त्तिके मासि कावेर्य्यां यः स्नानं कर्तुमिच्छति।
तावता वै विमुक्ताऽघो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्।।५०।।

कावेर्य्याश्चैव माहात्म्यं को वदेत्परमुत्तमम्। अत्र ते वर्णयिष्यामिइतिहासंपुरातनम्।।५१।।
कावेर्य्याविषयेब्रह्मन्सावधानमनाःशृणु। गौतम्या उत्तरे तीरे विष्णुपादाब्जसम्भवा।।५२।।
गङ्गा त्रैलोक्यपापघ्नीवर्ततेलोकपूजिता। सा गङ्गा चिन्तयामासकदाचित्पापशङ्किता।।५३।।
सर्वलोकाःसमागत्यमयिपापंत्यजन्ति हि। तत्पापन्तुकथुं गच्छेदितिचिन्तापरातदा।।५४।।
प्रष्टुं जगाम कैलासं गिरिजावल्लभम्भवम्। तत्र दृष्ट्वा महारुद्रं प्रोवाच हरिपादजा।।५५।।

ब्रह्मा कहते हैं—जो मानव कार्तिक मास में कावेरी में स्नान करने की इच्छा करता है, वह उस इच्छा से ही वह पापरहित होकर विष्णु का सायुज्य लाभ करता है। इस सम्बन्ध में एक प्राचीन इतिहास कहता हूं। हे ब्रह्मन्! समाहित होकर सुनो। गौतमीतीर्थ के उत्तरी तट पर त्रिलोकी के पाप का हनन करने वाली लोकपूज्या विष्णु के चरणों से निकली गंगा विराजमान हैं। उन्होंने एक बार विचार किया कि सभी लोग आकर मुझमें अपना पाप त्याग करते हैं, मेरा पाप कैसे दूर होगा? इस प्रकार चिन्तन करते हुये पापशंकिता गंगा उपाय जानने के लिये कैलास पर्वत पर आईं तथा वहां पार्वती के प्रियतम शिव के समीप गई जहां उन्होंने महारुद्ररूप भगवान् शिव का दर्शन किया। दर्शनोपरांत गंगा कहने लगीं।।५०-५५।।

गङ्गोवाच

महारुद्र! नमस्तेऽस्तु त्वांप्रष्टुमहमागता। सर्वेलोकाःसमागत्यमयिपापंत्यजन्तिहि।।५६।।
तत्पापन्तु मया सोढुं न शक्यं पार्वतीपते!। येनोपायेन तत्पापं नाऽऽगच्छेन्ममतद्वद।
एवं गङ्गावचः श्रुत्वा प्रत्याह परमेश्वरः।।५७।।

गंगा कहती हैं—हे महारुद्र! आपको प्रणाम! मैं आपसे यह पूछती हूं कि सभी लोग आकर मुझमें अपने पापों का त्याग करते हैं। हे पार्वतीपति! मैं इस पाप को सहन कर सकने में असमर्थ हूं। अब वह उपाय कहिये जिससे यह पाप मुझमें स्थित न रहे।।५६-५७।।

रुद्र उवाच

पापनिर्हरणायाऽऽदौ पद्मनाभाङ्घ्रिपङ्कजात्।।५८।।
प्रादुर्भूताऽसित्वंदेविकिमर्थंतप्यतेत्वया। पापप्रहाराऽऽधिपत्यंकल्पितंतवविष्णुना।।५९।।
तथाऽपि पापनिर्हारउपायं ते ब्रवीम्यहम्। कवेश्च तनया देवी कावेरी सरिताम्वरा।।६०।।
सर्वाकृष्टाच सर्वेषां हरेर्बलवशात्तुसा। सर्वपापप्रहरणे सामर्थ्यं तत्र वर्तते।।६१।।
कार्त्तिके मासि कावेर्य्यां यः स्नानं कुरुते नरः।
स तु पापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परम्पदम्।।६२।।
तस्मात्तां गच्छ देवि! त्वं ततः पापाद्विमोक्ष्यसे।
इत्युक्ता सा तदाऽऽगच्छत्कावेरीं पापहारिणीम्।।६३।।
तज्जलस्पर्शमात्रेण कार्त्तिके विष्णुपादजा। निर्धूतपातकागङ्गाजगामस्वनिकेतनम्।।६४।।

कार्त्तिके प्रतिवर्षन्तु गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम्।
स्नातुं भक्त्या समायाति कवेरीं पापहारिणीम्॥६५॥
तज्जलस्पर्शमात्रेण कार्त्तिकेविष्णुपादजा। निर्धूतपातका गङ्गा जगामस्वनिकेतनम्॥६६॥

गंगा का यह कथन सुनकर परमेश्वर ने उत्तर दिया—"जगत् के पापनाशार्थ ही तुम्हारा विष्णु के चरणों से प्रादुर्भाव हुआ है। हे देवी! आप क्यों इस प्रकार से परितप्त हो रही हो? क्या आश्चर्य है? विष्णु ने ही तुमको पापों को नष्ट करने का भार सौंपा है। अब तुम्हारे पापनाश का उपाय मैं कहता हूं। हे देवी! सभी नदियों में श्रेष्ठ कवि की पुत्री कावेरी विष्णुविभूति का लाभ करके तीर्थों में सर्वोत्कृष्ट हो गयी हैं। उनमें सर्वपापनाशक सामर्थ्य है। जो मानव कार्तिक मास में कावेरी में स्नान करता है, वह पापरहित होकर विष्णु का परमपद लाभ करता है। हे देवी! तुम वहां जाकर पापों से मुक्त हो जाओगी।" भगवान् का यह आदेश सुनकर विष्णु के चरणों से प्रकट हुई गंगा पापनाशिनी कावेरी के निकट गईं तथा कावेरीजल के स्पर्शमात्र से पापरहित होकर अपने स्थान पर वापस आ गईं। इस प्रकार प्रत्येक वर्ष के कार्तिक मास में गंगादेवी त्रैलोक्य को पावन करने वाली निखिल पापहारिणी कावेरी में स्नानार्थ भक्तिपूर्ण हृदय से आती हैं तथा उसके जलस्पर्श से विष्णुपदकमलनिर्गता गंगा पापमुक्त होकर अपने स्थान पर लौट आती हैं।।५८-६६।।

तस्माच्छस्तं तुलास्नानंकावेर्य्यांशस्यते बुधैः। यःकावेर्यांतुलास्नानंभक्त्यातुकुरुतेमुने॥६७॥
विमुक्तदुरितःसद्यस्ततो याति परां गतिम्।
तस्मात्स्नानं तु कावेर्यांकार्त्तिके मासि शस्यते॥६८॥

अतएव पण्डितगण कार्त्तिकमासीय कावेरी स्नान को प्रशस्त कहते हैं। हे मुनिवर! जो मानव भक्तिपूर्वक कावेरी में तुलास्नान करता है, उसके दुरित तत्काल दूर हो जाते हैं तथा वह श्रेष्ठगति पाकर आनन्दित होता है। इसलिये कार्त्तिक मास में कावेरी स्नान प्रशंसित है।।६७-६८।।

इतिहासमिमं श्रुत्वा कार्त्तिकव्रततत्परः। स कावेरी स्नानफलं प्राप्नोतिच पराङ्गतिम्॥६९॥
रात्रिशेषे भवेत्स्नानमुत्तमं विष्णुतुष्टिकृत्।
सूर्योदये मध्यमं स्याद्यावान्नाऽऽस्ता तु कृत्तिका॥७०॥
तावदेव भवेत्स्नानमन्यथा तन्न कार्त्तिकम्।
स्नानं स्त्रीभिर्विधातव्यं गृहीत्वाऽऽज्ञां धवस्य च॥७१॥
अपृष्ट्वायत्कृतंधर्म्यं भर्तारंतत्क्षयं नयेत्। स्त्रीणांनास्त्यपरोधर्मो भर्तारं प्रोज्भयकश्चन॥७२॥
कुर्यात्सहस्रपापानि भर्त्राऽऽज्ञां या समाचरेत्।
सैषा धर्मवती लोके न जायेत व्रतादिना॥७३॥
दरिद्रःपतितोमूर्खोदीनोऽपियदि चेत्पतिः। तादृशःशरणंस्त्रीणांतत्त्यागान्निरयंव्रजेत्॥७४॥
कलौ वत्स! मनुष्याणां शैथिल्यं स्नानकर्मणि।
तथाऽपि कथयिष्यामि स्नानं कार्त्तिकमाघयोः॥७५॥

यस्यहस्तौचपादौचवाङ्मनश्चसुसंयतम्। विद्यातपश्चकीर्तिश्च स तीर्थफलभाङ्नरः॥७६॥

यह इतिहास सुनकर जो मानव कार्त्तिक व्रत तत्पर हो जाते हैं, उनको कावेरी स्नानफल तथा परमगति प्राप्त हो जाती है। अब स्नान कालादि कहते हैं। रात्रि शेष होने पर वह काल स्नानार्थ उत्तम तथा विष्णु को सन्तुष्ट करने वाला है। सूर्योदय का स्नान मध्यम है। जब तक सूर्य कृत्तिका नक्षत्र में विद्यमान रहते हैं, तब तक कावेरी में कार्त्तिक स्नानकाल रहता है। इसके अतिरिक्त जो स्नान है, वह कार्त्तिक स्नान कदापि नहीं है। पत्नी स्वामी की अनुमति से स्नान करे। क्योंकि यदि स्त्री स्वामी की अनुमति के बिना स्नान करती हैं अथवा धर्मकार्य करती हैं, वह सब निष्फल हो जाता है। स्वामी का त्याग करके स्त्री को कोई भी धर्म फलप्रद नहीं होता। यदि स्वामी का आज्ञापालन करने वाली स्त्री हजारों पाप भी करें, तथापि वह त्रैलोक्य में धर्मवती है। अन्यथा व्रतादि द्वारा (पति के विपरीत रहकर चाहे कितना भी व्रत करे) उसका पाप दूर नहीं होता। यदि पति दरिद्र, पतित, मूर्ख किंवा दीन है, तथापि स्त्री हेतु ऐसा ही पति शरण्य है। पति त्याग से नारी नरकगमन करती है। हे वत्स! कलिकाल में लोग स्नान में आलस्य करते हैं, तथापि कार्त्तिक तथा माघ मास की स्नान कथा को कहता हूं। जिनका हाथ-पैर, वाणी, मन, विद्या, तप तथा कीर्त्ति सुसंयत है, वे ही तीर्थफल लाभ करते हैं।।६९-७६।।

अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकश्छिन्नमानसः। हेतुवादीचपञ्चैते न तीर्थफलभागिनः॥७७॥
प्रातरुत्थाययो विप्र! तीर्थस्नायीसदाभवेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तःपरम्ब्रह्माऽधिगच्छति॥७८॥
स्नानं चतुर्विधम्प्रोक्तं स्नानविद्भिर्मनीषिभिः।
वायव्यं वारुणं दिव्यं ब्राह्मञ्चेति तथा स्मृतम्॥७९॥

जो श्रद्धाहीन, पापी, नास्तिक, छिन्नहृदय तथा हेतुवादी हैं, ऐसे लोग तीर्थफलभागी नहीं होते। जो विप्र प्रातःकाल शय्या त्याग करके नित्य तीर्थजल में स्नान करता है, वह सर्वपापरहित होकर ब्रह्मलोक लाभ करता है। वायव्य, वारुण, दिव्य तथा ब्राह्म, मनीषीगण ने इन चार प्रकार के स्नान का वर्णन किया है।।७७-७९।।

वायव्यंगोरजःस्नानंवारुणंसागरादिषु। ब्राह्मंब्राह्मणमन्त्रोक्तंदिव्यम्मेघाऽम्बुभास्करम्॥८०॥
स्नानानाञ्चैवसर्वेषांविशिष्टं तत्रवारुणम्। ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्योमन्त्रवत्स्नानमाचरेत्॥८१॥
तूष्णीमेवहिशूद्रस्यस्त्रीणाञ्चैव तथास्मृतम्। बाला च तरुणी वृद्धा नरनारीनपुंसकाः॥८२॥
पापैः सर्वैः प्रमुच्यन्ते स्नानात्कार्त्तिकमाघयोः।
स्नाता वै कार्त्तिके लोकाः प्राप्नुवन्तीप्सितम्फलम्॥८३॥
पुष्करे तीर्थवर्ये तु नन्दायाः सङ्गमे पुरा। प्रभञ्जनश्च मुक्तोऽभूत्तदैव व्याघ्रजन्मतः॥८४॥
चन्दायावचनेनैवकार्त्तिकेसापरं ययौ। एवंस्नानविधिःप्रोक्तः किम्भूयःश्रोतुमिच्छसि॥८५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे कार्त्तिकस्नानविधिनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

इनमें से गौ के चरण की रज से स्नान को वायव्य कहते हैं। सागर स्नान वारुण स्नान है। ब्राह्मण

के मन्त्रोक्त स्नान को ब्राह्म तथा मेघ जलधारा द्वारा स्नान को तथा भास्कर तापोद्भव स्नान को दिव्य स्नान कहते हैं। इन सब में से वारुण स्नान सर्वोत्तम है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य मन्त्रस्नान का आचरण करें। स्त्री तथा शूद्रगण मौनी होकर मन्त्ररहित स्नान करें। बाला, युवती, वृद्धा, नर, नारी, नपुंसक आदि सभी कार्त्तिक एवं माघ स्नान द्वारा समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं। कार्त्तिक मास में तीर्थ प्रधान पुष्कर तथा नदी संगम पर स्नान द्वारा मानव इच्छित फललाभ करता है। पूर्वकाल में प्रभंजन नामक राजा ने एक हिरणी का वध किया था जो दुग्धवती थी (सवत्सा थी)। इससे मृगी के शाप के कारण राजा को व्याघ्रयोनि मिली। अन्ततः वह व्याघ्र नन्दा के वाक्य को मानकर कार्त्तिक में पुष्कर स्नान करने के कारण शापमुक्त हो गया। इस प्रकार से धर्म के शाप से नदीरूपी हो गई नन्दा ने भी पुष्कर जल स्पर्श द्वारा परम गतिलाभ किया था। मैंने तुमसे कार्त्तिक स्नानविधि कहा। अब तुम क्या सुनना चाहते हो?।।८०-८३।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

पञ्चमोऽध्यायः

नित्य कर्म वर्णन

नारद उवाच

कदा स्नानं प्रकर्तव्यं कथं स्थेयंदिनावधि। आह्निकं तत्समाचक्ष्वविशेषेणपितामह!।।१।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे पितामह! किस समय स्नान करना चाहिये? उस दिन का कर्त्तव्य क्या है? किस प्रकार के भाव के साथ रहना चाहिये? विशेषतः स्नान का दिन कृत्य कहिये।।१।।

ब्रह्मोवाच

रात्र्यां तुर्यांशशेषायामुत्तिष्ठेत्सर्वदा व्रती। विष्णुं स्तुत्वा बहुस्तोत्रैर्दिनकार्यम्विचारयेत्।।२।।
ग्रामनैर्ऋत्यदिग्भागे मलोत्सर्गंयथाविधि। ब्रह्मसूत्रं दक्षकर्णे स्थाप्य तत्रउदङ्मुखः।।३।।
अन्तर्धायतृणंभूमौ शिरः प्रावृत्यवाससा। वक्त्रं नियम्यचस्त्रेणाऽसङ्गःसोदकभाजनः।।४।।
कुर्यान्मूत्रपुरीषन्तु रात्रौचेद्दक्षिणामुखः। ततउत्थायचाऽऽगच्छेत्समीपं कलशस्यहि।।५।।
गन्धलेपक्षयकरं मृत्तिकाशौचमाचरेत्। एका लिङ्गे करेतिस्त्र उभयोर्मृद्द्वयंस्मृतम्।।६।।
मूत्रशौचे त्विदं ज्ञेयं विष्ठाशौचमतःश्रृणु। पञ्चापानेऽथवा सप्त दश वामकरे तथा।।७।।
उभयोःसप्त दातव्याःपादयोर्मृत्तिकात्रयम्। एतच्छौचंगृहस्थस्यद्विगुणंब्रह्मचारिणः।।८।।
वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनाञ्चचतुगुणम्। एतच्छौचं दिवाप्रोक्तं रात्रावर्द्धंसमाचरेत्।।९।।

मार्गस्थस्य तदर्धं स्यात्स्त्रीशूद्राणां तदर्धकम्।
शौचकर्मविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः॥१०॥

दन्तजिह्वाविशुद्धिञ्च ततः कुर्यादतन्द्रितः। आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजाः पशुवसूनि च॥११॥
ब्रह्म प्रज्ञाञ्चमेधाञ्चत्वं नोदेहिवनस्पते!। दन्तकाष्ठन्तु गृह्णीयाद् द्वादशाङ्गुलसम्मितम्॥१२॥
क्षीरवृक्षस्यनग्राह्यं कार्पासस्य तथैव च। कण्टकस्य च वृक्षस्य दग्धवृक्षस्यचैवहि॥१३॥
सद्गासनं मृदुतरं दन्तधावनमादितः। उपवासे नवम्याञ्च षष्ठ्यां श्राद्धदिने रवौ॥१४॥
ग्रहणे प्रतिपद्दर्शे न कुर्याद्दन्तधावनम्। कुर्याद् द्वादश गण्डूषाननुक्ते दन्तधावने॥१५॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—व्रती व्यक्ति रात्रि का चतुर्थांश बाकी रहते ही शय्या त्याग करके अनेक स्तोत्रों से विष्णु का स्तव करें। दिन के कर्त्तव्यों का विचार भी करें। तदनन्तर ग्राम के नैर्ऋत् दिशा में मलत्याग कृत्य करें। मलत्याग काल में यज्ञोपवीत को दाहिने कान पर रखें। मस्तक पर वस्त्र लपेटे। उत्तर मुख करके मलत्यागार्थ बैठे। बैठने के पूर्व उस स्थान पर तृण बिछाये। मलत्याग काल में उत्तर मुख बैठना चाहिये तथा वस्त्र से मुख बन्द करें। जलपात्र भी पास में रखें। रात्रि में मलमूत्र त्याग करते समय दक्षिणाभिमुखीन बैठे। मल-मूत्र त्यागोपरान्त जलपात्र के पास आकर जब तक गन्ध तथा मल लेप दूर न हो जाये तब तक मिट्टी से साफ करना चाहिये। मृत्तिका शौच का नियम है कि लिंग पर एक बार मिट्टी लगाये, हाथों पर तीन बार लगाये। मूत्रशौच में भी यही मृत्तिका शौच करें। अब विष्ठा शौच का विधान सुनें। गुह्य देश में पांच अथवा सात बार, बायें हाथ में दस बार, दोनों हाथों को मिलाकर सात बार तथा दोनों पैरों में तीन-तीन बार मृत्तिका शौच करें। यह गृहस्थ का शौच है। ब्रह्मचारी का शौच इससे द्विगुण होता है। वानप्रस्थों का त्रिगुण तथा यतिगण का चतुर्गुण होता है। यह जो शौच विधान वर्णित है, यही दिव्यशौच है। रात्रि में इसका आधा करना चाहिये। पथिक व्यक्ति इसका आधा शौच करे। स्त्री-शूद्रगण उसका भी आधा शौच करे। शौचकर्म रहित की सभी क्रिया निष्फल होती है। अतएव आलस्य रहित होकर दांत एवं जिह्वा की शुद्धि करें। इस समय इस मन्त्र से अभिमंत्रित करके दन्तकाष्ठ लेना चाहिये। "आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजापशुवसूनिच, ब्रह्म प्रज्ञाञ्चमेधाञ्च त्वे नोदेहि वनस्पते" इस मन्त्र से द्वादश अंगुलि का दन्तकाष्ठ लेना चाहिये। दन्तकाष्ठ क्षीरयुक्त वृक्ष का लेना चाहिये। यह दन्तकाष्ठ कार्पास किंवा कन्टक अथवा दग्धवृक्ष का लेना वर्जित है। गन्धयुक्त अथवा अत्यन्त कोमल दन्तकाष्ठ भी न लें। श्राद्ध, ग्रहण, किंवा उपवास के दिन, नवमी, षष्ठी, प्रतिपद्, अमावस्या, पूर्णिमा के दिन दन्तधावन नहीं करें। इन सब दिन द्वादश चुल्लू जल से मुखशोधन करना चाहिये।।२-१५।।

दन्तान्विशोध्य विधिवन्मुखं सम्मार्ज्य वारिणा।
ललाटे चोर्ध्वपुण्ड्रन्तु धृत्वा चाऽऽचम्य वारिणा॥१६॥

देवालये नदीतीरे राजमार्गे विशेषतः। दत्त्वाचाकाशदीप तु तुलसी सन्निधावथ॥१७॥
गृहीत्वाऽर्चनसामग्रीमिष्टदेवगृहं व्रजेत्। ततो गायेतनृत्येत पूजां कृत्वा तु बुद्धिमान्॥१८॥
पठित्वाविष्णुनामानिकुर्य्यान्नीराजनंहरेः। नाडीद्वयावशिष्टांरात्र्यांगच्छेज्जलाशयम्॥१९॥
तन्त्रोक्तविधिनास्नानं कुर्याद्वैकार्त्तिकव्रती। वस्त्रनिष्पीडनंकृत्वाकुर्याच्चतिलकंतथा॥२०॥

ततः सन्ध्यामुपासीतस्वसूत्रोक्तेन वर्त्मना। ततःकार्योजपोदेव्या यावदर्कोदयोभवेत्॥२१॥
एतत्प्रोक्तं रात्रिशेषकृत्यंदैनमथोच्यते। यस्मिन्कृतेकार्त्तिकोऽयंसकलःसफलो भवेत्॥२२॥

विधिपूर्वक दन्तधावन करके तदनन्तर जल से मुख धोये और आचमनोपरान्त ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करें। तदनन्तर नदीतीर-राजपथ अथवा तुलसी के समीप आकाशदीप (लम्बे बांस पर टोकरी में दीपक जलाकर ऊर्ध्व में लटकाना) प्रदान करके पूजोपचार के साथ अभीष्ट देवालय में जाना चाहिये। तदनन्तर बुद्धिमान व्यक्ति पूजा के अनन्तर नृत्यगीत द्वारा विष्णु के नामों का पाठ करके हरि की आरती करें। कार्त्तिकमास में व्रती पुरुष रात्रि के दो घड़ी बाकी रहते जलाशय पर जाकर वहां सविधि स्नान करे। स्नान के उपरान्त वस्त्र निचोड़ना, तिलक धारण, अपने-अपने वेदमार्ग के अनुरूप सन्ध्यावन्दन करें। सूर्योदय होने तक वेदमाता गायत्री का जप करें। यह रात्रि शेष का कार्य कहा गया। अब दिन कृत्य कहता हूं। इस प्रकार के आचरण द्वारा समस्त कार्त्तिक मास सफल हो जाता है।।१६-२२।।

विष्णोःसहस्रनामाऽऽद्यंसन्ध्यान्ते च पठेत्ततः। देवालयेसमागत्यपुनः पूजनमारभेत्॥२३॥
नृत्यगानादिकार्येषुप्रहरंदिवसं नयेत्। ततः पुराणश्रवणंयामार्धसम्यगाचरेत्॥२४॥
पौराणिकस्यपूजांतुतुलसीपूजनं तथा। कृत्वामाध्याह्निकंकर्मभुञ्जीतद्विदलोज्झितम्॥२५॥
बलिदानं वैश्वदेवतिथीनांसमर्पणम्। कृत्वाभुङ्क्तेतुयोमर्त्यःकेवलंचाऽमृतं हि तत्॥२६॥
यथाशक्तिद्विजाभोज्याःप्रत्यहंवाऽथ पर्वणि। हविष्यभोजनंकुर्यादामिषं परिवर्जयेत्॥२७॥
भक्षयेत्तुलसीं वक्त्रशुद्ध्यर्थं तीर्थवारिणा। संसारव्यवहरेण दिनशेषं समापयेत्॥२८॥
सायंकाले पुनर्गगच्छेद्विष्णोर्देवालयम्प्रति।
सन्ध्यां कृत्वा प्रयुञ्जीत तत्र दीपान्यथाबलम्॥२९॥
विष्णुं प्रणम्य हरये कृत्वानीराजनं शुभम्। स्तोत्रपाठादिकं कुर्वन्नाद्ययामेतुजागरम्॥३०॥
यामे तु प्रथमेऽतीते निद्रां कुर्याद्विचक्षणः। ब्रह्मचर्यव्रतं कुर्याद्भार्यामीयादृतौ तथा॥३१॥
तया कामयमानो वा भार्यां गच्छेन्न दोषभाक्।
एवं प्रतिदिनं कुर्यादामासं तु यथाविधि॥३२॥
एवंतुकार्त्तिकेमासियःकुर्यात्परमंव्रतम्। सर्वपापविनिर्मुक्तोयातिविष्णोःसलोकताम्॥३३॥
रोगापहं पातकनाशकृत्परं सद्बुद्धिदं पुत्रधनादिसाधकम्।
मुक्तेर्निदानं नहि कार्तिकव्रताद्विष्णुप्रियादन्यदिहाऽस्ति भूतले॥३४॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे नित्यकर्मकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

मनुष्य विष्णुसहस्रनाम का पाठ सन्ध्यान्त में पढ़े तथा पुनः देवालय में आकर पूजा करे। तदनन्तर विष्णु के नृत्यगीतादि कार्य में एक प्रहर बिताकर सम्यक्रूपेण यामार्द्धकाल तक पुराण पढ़े। तदनन्तर

पुराणवाचक तथा तुलसी की पूजा करके मध्याह्न कर्म समापन करके द्विदल रहित (दालरहित) भोजन करना चाहिये। जो मानव वैश्वदेव तथा अतिथिगण को बलि प्रदान करने के अनन्तर भोजन करता है, उसका भोजन पदार्थ अमृततुल्य हो जाता है। नित्य अथवा पर्वदिन में यथाशक्ति द्विजों को भोजन देना चाहिये। द्विजगण नित्य हविष्यान्न भक्षी होकर भोजन करें। कभी आमिष भोजन न करें। तदनन्तर मुखशुद्धि के लिये तीर्थजल तथा तुलसी ग्रहण करके सांसारिक कार्य करें। तत्पश्चात् पुनः सन्ध्या काल में विष्णुमंदिर जाकर सन्ध्या करें तथा शक्ति के अनुरूप दीपदान, प्रणाम, हरि का उत्तम नीराजन तथा स्तुति पाठादि करके प्रथम याम के समय जागरण करें। तदनन्तर विचक्षण व्यक्ति द्वितीययाम में शयन करें। ब्रह्मचर्य पालन करके केवल ऋतुकाल में ही पत्नी-गमन करना चाहिये तथापि यदि पत्नी स्वयं संगम हेतु प्रार्थना करती है, तब पुरुष संगम करने के कारण दोषयुक्त नहीं होगा। इस प्रकार एक मास सविधि-नित्य नियम पालन करें। वह मानव सर्वपापरहित होकर विष्णु का सारूप्य प्राप्त करता है। हे नारद! पृथिवी पर कार्त्तिक व्रत ऐसा रोगहारी, पापहारी, सद्वृत्ति प्रदाता, पुत्र-धन आदि प्रदाता अन्य व्रत नहीं है। यह विष्णु का प्रिय व्रत तथा मुक्तिसाधक है।।२३-३४।।

।।पञ्चम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षष्ठोऽध्यायः

कार्त्तिक व्रत निरूपण, वाराणसी में कार्त्तिक व्रत फल

ब्रह्मोवाच

शृणुनारदवक्ष्यामिकार्त्तिकस्यव्रतंमहत्। यच्छ्रु त्वासर्वपापेभ्योमुक्तोमोक्षमवाप्स्यसि।।१।।
कार्त्तिकेमासिसंप्राप्तेनिषिद्धानि च वर्जयेत्। तैलाभ्यङ्गं परान्नञ्च तथा वै तैलभोजनम्।।२।।
फलानि बहुबीजानि धान्यानि द्विदलान्यपि।
वर्जयेत्कार्त्तिके मासि नाऽत्र कार्या विचारणा।।३।।
अलाबुं गृञ्जनञ्चैववृन्ताकंबृहतीफलम्। अन्नं पर्युषितम्बाऽपि भिस्सटं चमसूरिकम्।।४।।
पुनर्भोजनं माध्वं च परान्नंकांस्यभोजनम्। नखं चर्म च छत्राकंकाञ्जि दुर्गन्धमेव च।।५।।
गणान्नं गणिकान्नञ्च तथा वै ग्रामयाजिनः। शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कं सूतकान्नं तथैव च।।६।।
श्राद्धान्नमृतुमत्याश्च जातकं नामकं तथा। श्लेष्मातकफलं चैव वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती।।७।।
निषिद्धेषु च पत्रेषु भोजनं नैव कारयेत्। मधुपालाशकदलीजम्बूप्लक्षमकूटिकाः।
एतत्पत्रेषु भोक्तव्यं पुष्करे न कदाचन।।८।।
कार्त्तिकेमासिसंप्राप्तेयः कुर्याद्वनभोजनम्। स यातिपरमंलोकं विष्णोर्देवस्य चक्रिणः।।९।।

प्रातःस्नानं तु कर्तव्यं तथैव हरिपूजनम्। कथायाःश्रवणं चैव कार्त्तिके शस्यते मुने॥१०॥
गोपीचन्दनदानंतु गोदानंश्रोत्रियाय च। कर्तव्यं कार्त्तिकेमासितेन मोक्षमवाप्नुयात्॥११॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! अब वह उत्तम कार्तिक व्रत कहता हूं। जिसे सुनकर तुम मोक्षलाभ करोगे। अव उस उत्तम कार्त्तिक मास के व्रत को कहता हूं। सुनो! कार्त्तिक मास में तैल लगाना, परान्न भोजन, तैलभक्षण, अनेक बीज वाले फल (जैसे अमरुद आदि), धान्य तथा दालें (द्रिदल) निषिद्ध है। इसमें कोई विचार-वितर्क न करें। अलाबू, (लम्बी लौकी) गृञ्जर (गाजर-शलजम) वार्त्ताकु, बृहतीफल, बासी अन्न, जले अन्न, मसूर, दो बार भोजन, मधु तथा कांस्यपात्र में भोजन न करे, नख गन्धद्रव्य, मसूरि विशेष, छत्राक, काञ्जी, दुर्गन्ध, गणान्न, गणिका का अन्न, ग्रामयाजी का अन्न, शूद्र का अन्न, शूद्र के सम्पर्क में आया अन्न, सूतकान्न, श्राद्धान्न, ऋतु स्नाता का अन्न, जातक का अन्न, नामक का अन्न, श्लेष्मा वाले फल का कार्त्तिक व्रती वर्जन करें। कार्त्तिक व्रती निषिद्ध अन्न भक्षण न करें। मधु (महुआ) पलाश, कदली, जामुन, प्लक्ष, मधुटिका के पत्र में भोजन कर सकते हैं, तथापि पुष्कर पत्र में भोजन निषिद्ध है। कार्त्तिक मास आने पर जो आंवले के वृक्ष की छाया में भोजन करते हैं, वे चक्रधारी देव विष्णु के लोक में जाते हैं। हे मुनिवर! प्रातः स्नान, हरि पूजा तथा हरिकथा श्रवण कार्त्तिक मास में प्रशस्त है। कार्त्तिक मास में जो श्रोत्रिय ब्राह्मणों को गोपीचन्दन तथा गौ अर्पित करता है, उसे मोक्ष प्राप्ति होती है।।१-११।।

कदलीफलदानं तु दानंधात्रीफलस्य च। वस्त्रदानं तथाकुर्याच्छीतार्ताय द्विजन्मने॥१२॥
शाकादिदानंकुर्वीतचाऽन्नदानं विशेषतः। शालग्रामस्यदानं च कर्तव्यं तु द्विजन्मने॥१३॥
पौराणिकाय यो दद्यादामान्नं घृतपायसम्। स चैश्वर्यमवाप्नोतिशतब्राह्मणभोजनात्॥१४॥
कमलैःपूजयेद्यस्तुकार्त्तिकेकमलाप्रियम्। स तु पुण्यमवाप्नोतिनाऽत्रकार्या विचारणा॥१५॥
कार्त्तिके तुलसीपत्रं यो भक्त्या विष्णवेऽर्पयेत्।
संसाराच्च विनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम्॥१६॥
कार्त्तिके केतकीपुष्पैरर्चयेद्गरुडध्वजम्। पूजितो जन्मसाहस्त्रं नाऽत्र कार्या विचारणा॥१७॥

ब्राह्मण को इस मास में केला, आंवला तथा शीतार्त्त ब्राह्मण को वस्त्र दान करें। ब्राह्मण को शाक अन्न तथा शालग्राम दान करना चाहिये। जो व्यक्ति एक भी पुराणवेत्ता ब्राह्मण को अन्न, घृत तथा पायस प्रदान करते हैं, मानो उसने १०० ब्राह्मणों को भोजन कराया। वह व्यक्ति उस पुण्य द्वारा ऐश्वर्यशाली हो जाता है। जो कार्त्तिक में कमल से कमलप्रिया लक्ष्मीपूजन करते हैं, उनको प्रभूत पुण्यलाभ होता है। इस विषय में कोई वितर्क न करें। जो कार्त्तिक मास् में भक्तिपूर्वक विष्णु को तुलसी अर्पित करते हैं, वे संसार से मुक्त होकर विष्णु के परमपद की प्राप्ति करते हैं। जो व्यक्ति केतकी पुष्पों से गरुड़ध्वज जनार्दनदेव की अर्चना करता है, उसे मात्र एक बार पूजन द्वारा ही सहस्र जन्मकृत पूजाफल मिलता है। इसमें सन्देह नहीं है।।१२-१७।।

शङ्खदानं तु यःकुर्यात्तथाचक्राङ्कितस्य च। तस्यपापानिनश्यन्ति दानमात्रान्न संशयः॥१८॥
गीतापाठं तु यःकुर्यात्कार्त्तिकेविष्णुवल्लभे। तस्य पुण्यफलम्वक्तुं नाऽलम्वर्षशतैरपि॥१९॥
श्रीमद्भागवतस्याऽपि श्रवणंयः समाचरेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छति॥२०॥

एकादश्यां निराहारमुपवासं करोति यः। पूर्वजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नाऽत्र संशयः॥२१॥

शालिग्रामस्य नैवेद्यं कोटियज्ञफलं लभेत्।
अन्यदेवस्य नैवेद्यं भक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥२२॥

जो व्यक्ति चक्रांकित शंखदान करते हैं, दानमात्र से ही निःसंदिग्ध रूप से उनके पापों का विनाश हो जाता है। जो इस विष्णुप्रिय मास में गीता का पाठ करते हैं, मैं उनका पुण्यफल सौ वर्षों में भी नहीं कह सकता। जो सम्यक्तः इस मास में श्रीमद्भागवत का पाठ करते हैं, वे समस्त कलुष रहित होकर निर्वाण मोक्ष की प्राप्ति करते हैं। जो एकादशी के दिन निराहारी रहकर उपवास करते हैं, उनका पूर्व जन्मकृत पाप नष्ट हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है। शालग्राम का नैवेद्य भक्षण करने से कोटियज्ञफल लाभ होता है, तथापि अन्य देवता का नैवेद्य भक्षण करने से चान्द्रायण करना होगा।।१८-२२।।

पूजाकाले तु देवस्यघण्टानादंकरोतियः। हरेस्तृप्तिं परां याति मनुजो नाऽत्र संशयः॥२३॥
परान्नं वर्जयेद्यस्तुकार्त्तिकेविष्णुतुष्टये। दामोदरस्यप्रीतिंससम्यक्प्राप्नोति मानवः॥२४॥
अध्वगंतुपरिश्रान्तंकालेच गृहमाऽऽगतम्। योऽतिथिंपूजयेद्भक्त्याजन्मसाहस्त्रनाशनम्॥२५॥
निन्दांकुर्वन्ति ये मूढावैष्णवानांमहात्मनाम्। पतन्तिपितृभिःसार्द्धमहारौरवसञ्ज्ञके॥२६॥

दृष्ट्वा भागवतान्विप्रान्सम्मुखो न च याति हि।
न गृह्णाति हरिस्तस्य पूजां द्वादशवार्षिकीम्॥२७॥
निन्दां भगवतः श्रृण्वंस्तत्परस्य जनस्य च।
ततो नाऽपैति यः सोऽपि हरेः प्रियतमो नहि॥२८॥

प्रदक्षिणांतु यः कुर्यात्कार्त्तिके केशवस्य हि। पदेपदेऽश्वमेधस्यफलंप्राप्नोत्यसंशयः॥२९॥

जो व्यक्ति हरि के पूजाकाल में घंटा बजाते हैं, उनसे हरि तृप्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। जो लोग विष्णु की प्रसन्नता हेतु कार्त्तिक में परान्न त्याग कर देते हैं, उनके प्रति प्रभु दामोदरदेव सम्यक्रूपेण सन्तुष्ट हो जाते हैं। जो परिश्रान्त पथिक के घर आने पर भक्ति पूर्वक उसका अतिथि सत्कार करते हैं, उनका हजारों जन्म का पाप नष्ट हो जाता है। जो मूर्ख व्यक्ति महात्मा वैष्णवगण की निन्दा करते हैं, वे अपने पितरों के साथ महारौरव नरक गमन करते हैं। भगवद्भक्त मनुष्य को देखकर जो उसके समक्ष नहीं आते, श्रीहरि उसकी द्वादश वर्ष तक की पूजा ग्रहण ही नहीं करते। जो मानव प्रभु की निन्दा सुनकर उसमें हामी भरता है तथा निन्दाकारी से दूर नहीं चला जाता, वह कभी भी हरि का प्रिय नहीं होता। जो कार्त्तिक मास में हरि की प्रदक्षिणा करते हैं, उनको पग-पग पर राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञफल प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं है।।२३-२९।।

दंडप्रणामं यः कुर्यात्कार्त्तिके केशवाऽग्रतः।
राजसूयाऽश्वमेधानां फलम्प्राप्नोत्यसंशयः॥३०॥

कुटुम्बभोजनं चैव कार्त्तिके भक्तिसंयुतः। कारयेद्विप्रशार्दूल! तस्य पुण्यमनन्तकम्॥३१॥
परस्त्रीसङ्गमं यस्तुकार्त्तिकेकुरुते नरः। तस्यपापस्य विश्रान्तिर्यावद्वक्तुंन शक्यते॥३२॥

तुलसीमृत्तिकापुण्ड्रं ललाटे यस्य दृश्यते। यमस्तं नेक्षितुंशक्तः किमुदूता भयङ्कराः।।३३।।

जो कार्त्तिक मास में केशव को दण्डवत् प्रणाम निवेदित करते हैं, वे अनेक राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञफल को प्राप्त करते हैं। हे द्विजशार्दूल! जो भक्ति के साथ कार्त्तिक मास में कुटुम्बी ब्राह्मण को भोजन कराता है, उसका पुण्य फल अनन्त है। इस मास में जो पराई स्त्री का संगम करता है, उसके पापों की सीमा का मैं वर्णन नहीं कर सकता। जिनके ललाट पर तुलसी की मिट्टी का तिलक लगा है, यम को उसकी ओर देखने का सामर्थ्य ही नहीं है। भयानक यमदूतों की तो बात ही क्या!।।३०-३३।।

शकम्वा लवणम्वाऽपि यत्किञ्चिद्वा भविष्यति।
तद्देयं कार्त्तिके मासि प्रीत्यर्थं शार्ङ्गधन्वनः।।३४।।
इत्याद्या बहवो धर्माःकार्त्तिके विष्णुवल्लभाः। यथाशक्त्याप्रकुर्वीतधर्मंदेवस्यतुष्टिदम्।।३५।।
हरिसन्तुष्टये कार्यस्त्यागो वा स्वेष्टवस्तुनः। मासान्ते द्विजवर्यायदद्यात्तद्व्रतपूर्तये।।३६।।
सर्वव्रतानि चैकत्र सत्यव्रतमथैकतः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यं भाषेत सर्वदा।।३७।।
अन्यधर्मेष्वधिकृतिः कुलजातिविभागतः।
अधिकारी कार्त्तिके तु सर्व एव जनो भवेत्।।३८।।

शाक किंवा लवण जो कुछ पास में हो शार्ङ्गधनुर्धारी श्रीहरि के लिये कार्त्तिक मास में वही दान करें। हे नारद! मैंने जो कुछ कहा है, वह सब तथा अन्य अनेक विष्णुप्रिय कार्त्तिक मास में अनुष्ठान योग्य धर्म हैं। अतएव यथाशक्ति विष्णु के प्रसन्नतार्थ धर्माचरण करना चाहिये। हरि के प्रसन्नतार्थ इस मास में अपनी-अपनी इष्ट वस्तु का त्याग करें तथा व्रतोद्यापनार्थ कार्त्तिक मास का अवसान होने पर वह वस्तु उत्तम ब्राह्मणों को दान करना चाहिये। जैसे एक ओर सभी व्रत हैं, उसी प्रकार से दूसरी ओर अकेला सत्यव्रत सबके बराबर है। इसलिये सर्वप्रयत्नपूर्वक सत्य ही बोलना चाहिये। अन्यान्य धर्माचरण में जाति तथा कुल के अनुसार अधिकार है, तथापि कार्त्तिक व्रतार्थ जाति कुलगत कोई भेद नहीं है। इसमें तो सभी का समान अधिकार है।।३४-३८।।

गोग्रासः कार्त्तिकेमासि विशेषाद्यैस्तुदीयते। तेषांपुण्यफलंवक्तुं नशक्नोतिपितामहः।।३९।।
विष्णुदेवालयं प्रातः सम्मार्जयति कार्तिके। तस्य वैकुण्ठभवने जायते सुदृढं गृहम्।।४०।।
दद्यात्कार्तिकमासे तु धर्मकाष्ठानि भूरिशः।
न तत्पुण्यस्य नाशोऽस्ति कल्पकोटिशतैरपि।।४१।।
सुधादि लेपयेद्यस्तु कार्त्तिके विष्णुमन्दिरे।
चित्रादिकं लिखेद्वाऽपि मोदते विष्णुसन्निधौ।।४२।।

जो कार्त्तिक मास में विशेष द्रव्य द्वारा गोग्रास देते हैं, चतुरानन ब्रह्मा भी उनके पुण्य का वर्णन चारों मुख से नहीं कर सकते। जो कार्त्तिक मास में प्रातः विष्णुमन्दिर का मार्जन करते हैं, वैकुण्ठ भवन में उनके लिये सुदृढ़गृह निर्मित होता है। जो कार्त्तिक मास में धर्मरक्षार्थ काष्ठदान करते हैं, शतकोटि कल्पों में भी उनका पुण्य नष्ट नहीं होता। जो कार्त्तिक मास में सुधा आदि लेपन से विष्णु मन्दिर को संस्कृत करते हैं, अथवा चित्र आदि से उसे सजाते हैं, वे विष्णु के सन्निधान को पाकर चिरकाल पर्यन्त मुदित होते रहते हैं।।३९-४२।।

देवालये वा तीर्थे वा कृतो दुष्टैर्नृपैः करः। तं मोचयन्ति ये लोकास्तेषांधर्मः सनातनः॥४३॥
कार्त्तिकेमासि यो विप्रोगभस्तीश्वरसन्निधौ। शतरुद्रीजपंकुर्यान्मन्त्रसिद्धिःप्रजायते॥४४॥

वाराणस्यां तु यैः स्थित्वा त्रिवर्षं कार्त्तिकव्रतम्।
सोपाङ्गं साङ्गं यैर्मर्त्यैः कृतं भक्त्येकतत्परैः॥४५॥

इहलोके फलं तेषां प्रत्यक्षं जायते किल। सम्पत्त्या चैवसन्तत्यायशोभिर्धर्मबुद्धिभिः॥४६॥

पलाण्डुं शृङ्गं मांसं च शय्यां सौवीरकं तथा।
राजिकोन्मादिकञ्चाऽपि चिपिटान्नञ्च वर्जयेत्॥४७॥

धात्रीफलं भानुवारे परदेशागमं तथा। तीर्थं विना सदैवेह वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती॥४८॥
देववेदद्विजातीनां गुरुगोव्रतिनां तथा। स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती॥४९॥
नरकस्यचतुर्दश्यां तैलाभ्यङ्गं च कारयेत्। अन्यत्र कार्त्तिकेमासि तैलस्नानंविवर्जयेत्।

नालिकां मूलकं चैव कूष्माण्डञ्च कपित्थकम्॥५०॥

रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतिताऽव्रतिकैस्तथा। द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च नवदेत्सर्वदाव्रती॥५१॥
एभिर्दृष्टं च काकैश्च सूतिकान्नं च यद्भवेत्। द्विःपाचितं च दग्धान्नं नैवाऽद्याद्वैष्णवव्रती॥५२॥
क्रमात्कूष्माण्डबृहतीतरुणीमूलकं तथा। श्रीफलं च कलिङ्गं चफलंधात्रीभवं तथा॥५३॥
नारिकेलमलाबुञ्च पटोलं बृहतीफलम्। चर्मवृन्ताकचवलीशाकं तुलसिजं तथा॥५४॥
शाकान्येतानि वर्ज्यानि क्रमात्प्रतिपदादिषु। एवमेवहिमाघेऽपिकुर्य्याच्चनियमान्व्रती॥५५॥
कार्त्तिकव्रतिनः पुण्यं यथोक्तव्रतकारिणः। न समर्थो भवेद्वक्तुं ब्रह्मापीहचतुर्मुखः॥५६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे कार्त्तिकव्रतनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

देवालय तथा तीर्थ के प्रति दुष्ट राजा द्वारा लगाये कर से जो मुक्ति दिला देते हैं, उनका धर्म कभी भी क्षयीभूत नहीं होता। जो ब्राह्मण कार्त्तिक मास में काशी में रहकर शतरुद्री जप करता है, उसे मन्त्रसिद्धि हो जाती है। जो धार्मिक व्यक्ति तीन वर्ष वाराणसी में रहकर वत्सद्वादशी प्रभृति के दिन स्नान-दीपदान प्रभृति क्रिया तत्पर होकर भक्तिपूर्वक कार्त्तिक व्रत सम्पन्न करता है, निःसंदिग्ध रूप से उसे फल प्रत्यक्ष होता है। वह मनुष्य सम्पत्ति, सन्तति तथा यशयुक्त ही बना रहता है। कार्त्तिक मास में प्याज, जीवक, मांस, शय्या, बदरीफल, राजिक, उन्मादक द्रव्य, चिउड़ा का त्याग करें। रविवार को आंवला तथा परदेशगमन का सतत् त्याग कार्त्तिक व्रती को करना चाहिये। कार्त्तिक व्रती पुरुष देव, वेद, द्विज, गुरु, गौ, व्रती, श्री, राजा तथा उत्तम व्यक्ति की निन्दा कदापि न करें। उस व्यक्ति को चतुर्दशी के दिन तैल लगाना चाहिये। लेकिन अन्य दिन तैलस्नान का सर्वथा त्याग करें। नलिका, मूली, कोहड़ा तथा कपित्थ भक्षण न करें। रजस्वला, अन्त्यज, म्लेच्छ, पतित, व्रतहीन, द्विजद्वेषी, वेदवाह्यव्रती, व्यक्तियों के साथ बातें भी न करें। इन सबके द्वारा देखा, कौये द्वारा देखा अन्न,

सूतिकान्न, दुबारा पकाया अन्न, जला अन्न, वैष्णव व्रती इनका भोजन न करें। कोहड़ा, कुलथी, तरोई, मूली, बेल, कपित्थ, आंवला, नारियल, लम्बी लौकी, पटोल, वृहतीफल, मसूरिक शाक, कचवली तथा तुलसी का प्रतिपदा से लगाकर क्रमशः एक-एक का वर्जन करें। जैसे प्रतिपदा को कोहड़ा, द्वितीया को कुलथी त्यागें। माघमासीय व्रत का भी यही विधान है। कार्त्तिक व्रत के फल को चार मुख वाले ब्रह्मा भी नहीं कह सकते।।४३-५६।।

।।षष्ट अध्याय समाप्त।।

सप्तमोऽध्यायः

दीपदान माहात्म्य, दीपदान महिमा, राजा का दीपदान वर्णन

नारद उवाच

भगवन्कृतकृत्योऽस्मि तवपादसमाश्रयात्। श्रोतव्यं नेह भूयो मे विद्यते देवसत्तम!।।१।।
तथाऽपि भगवन्किञ्चित्प्रष्टव्यंमेहृदिस्थितम्। त्वद्वाक्यामृतपीतस्यनमेतृप्तिर्हिजायते।।२।।
दीपदानस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि ते प्रभो। येनचाऽपिपुरादत्तस्तद्वदस्वचतुर्मुख।।३।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे भगवान्! आपके चरण कमलों का आश्रय लेकर मैं कृतार्थ हो गया। यद्यपि पुनः अब मुझे कुछ नहीं सुनना है, हे देव श्रेष्ठ! तथापि मेरे अन्तःकरण में कुछ प्रश्न उदित हो रहे हैं। आपकी वाणी रूप अमृतधारा का पान करने पर भी मेरी पिपासा शान्त नहीं हो रही है। हे प्रभो! मैं दीपदान का माहात्म्य सुनना चाहता हूं। हे चतुरानन! किस मनुष्य ने पूर्वकाल में दीप प्रदान किया था, कृपया कहिये।।१-३।।

ब्रह्मोवाच

प्रातःस्नात्वा शुचिर्भूत्वा दीपंदद्यात्प्रयत्नतः। तेनपापानि नश्येयुस्तमांसीवभगोदये।।४।।
आजन्मयत्कृतं पापं स्त्रिया वा पुरुषेण च। तत्सर्वं नाशमायातिकार्त्तिके दीपदानतः।।५।।
अत्र ते वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम्। श्रवणात्सर्वपापघ्नं दीपदानफलप्रदम्।।६।।
पुरा द्रविडदेशे तु ब्राह्मणो बुद्धनामकः। तस्यभार्याऽभवद्दुष्टा अनाचाररता मुने!।।७।।
तस्याः संसर्गदोषेण क्षीणाऽऽयुर्मृतिमाप्तवान्।
पत्यौ मृतेऽपि सा पत्नी अनाचारे विशेषतः।।८।।
रताऽभून्न हि तस्यास्तु लज्जालोकापवादतः। सुतबन्धुविहीनासासदाभिक्षान्नभोजना।।९।।

ब्रह्मा कहते हैं—प्रातःकाल स्नान द्वारा पवित्र होकर प्रयत्नपूर्वक दीपदान करने से तमोराशि दूर हो जाती है, जैसे सूर्योदय द्वारा अन्धकार दूर हो जाता है। स्त्री हो अथवा पुरुष हो, कार्त्तिकमास में दीपदान करने

से आजन्मकृत समस्त पापों का नाश हो जाता है। इस सम्बन्ध में तुमसे एक प्राचीन इतिहास कहता हूं। इसे सुनने वाले का सभी पाप नष्ट होता है तथा वह व्यक्ति दीपदान का फललाभ करता है। हे मुनिवर! पूर्वकाल में द्रविड़ देशवासी बुद्ध नामक ब्राह्मण था। उसकी स्त्री अनाचाररत तथा दुष्टा थी। ब्राह्मण बुद्ध इस पत्नी के संसर्गदोष के कारण क्षीणायु होकर मृत हो गया। पति के निधन के अनन्तर पत्नी और भी विशेषरूप से दुराचरण में लिप्त हो गयी। उसमें लज्जा तथा लोकापवाद का भय भी नहीं रह गया। पुत्र तथा सुहृदरहित वह बुद्ध ब्राह्मण की पत्नी भिक्षान्न भोजन से निर्वाह करने लगी।।४-९।।

न संस्कारान्नमल्पं वा भुक्त्वा पर्युषिताशिनी। परपाकरतानित्यंतीर्थयात्रादिवर्जिता॥१०॥
कथायाः श्रवणं चैव न श्रृतंतु तया द्विज!। एकदा ब्राह्मणः कश्चित्तीर्थयात्रापरायणः॥११॥
तस्या गृहं समागच्छद्विद्वान्वैकुत्सनामकः। अनाचाररतां तां तु दृष्ट्वा ब्रह्मर्षिसत्तमः।
कोपेन रक्तचक्षु; संस्तामुवाचाऽसतीं स्त्रियम्॥१२॥

उसे कभी भी तनिक सुसंस्कृत अन्न नहीं मिलता था। वह केवल बासी भोजन करती थी तथा नित्य परपाक (दूसरे का बनाया) भोजन पाकर तीर्थयात्रा इत्यादि को त्याग चुकी थी। हे द्विज! वह किसी की बात न तो सुनती थी न मानती थी। एक बार तीर्थयात्रा तत्पर विद्वान् कुत्स द्विज उसके गृह आये तथा वे ब्रह्मर्षिश्रेष्ठ कुत्स उस अनाचार तत्पर स्त्री को देखकर क्रोधित होकर कहने लगे।।१०-१२।।

कुत्स उवाच

वक्ष्यामि साम्प्रतं मूढे! मद्वाक्यमवधारय॥१३॥
दुःखहेतुमिमं देहं पूयशोणितपूरितम्। पञ्चभूतात्मकञ्चैव किं च पुष्णासि दूतिके!॥१४॥
जलबुद्बुदवद्देहो नाशमायाति निश्चितम्। अनित्यं देहमाश्रित्यनित्यं त्वंमन्यसेहृदि॥१५॥
तस्मादन्तः स्थितं मोहं त्यज मूढे! विचारतः। स्मरसर्वोत्तमं देवंकुरुश्रवणमादरात्॥१६॥
कार्त्तिके मासि सम्प्राते स्नानदानादिकं कुरु। दामोदरस्यप्रीत्यर्थं दीपदानं तथाकुरु॥१७॥
लक्षवर्त्यादिकं चैव लक्षपद्मादिकं तथा। प्रदक्षिणां तु देवस्य नमस्कारं तथैव च॥१८॥
धारणं पारणं चैव कुरु भक्त्या हि कार्त्तिके। विधवानां व्रतमिदं सधवानां तथैव च॥१९॥
सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्। तत्राऽपि कार्त्तिके मासि दीयतां दीप उत्तमः॥२०॥
दीपो हरेः प्रियकरः कार्त्तिके मासिनिश्चितम्। महापातककृद्वापिदीपदानात्प्रमुच्यते॥२१॥

कुत्स कहते हैं—हे मूढ़े! मैं जो कहता हूं उसे सावधानी पूर्वक सुनें। किस कारण से तुम इस मल-मूत्र-रक्त युक्त पञ्चभूतात्मक देह का पालन-पोषण कर रही हो? हे दूतिके! यह देह जल के बुलबुले के समान शीघ्र नाशवान् है। तुम इस अनित्यदेह का आश्रय लेकर मन ही मन इसे नित्य मान रही हो! वास्तव में यह नित्य नहीं है। हे मूढ़े! विचार बुद्धि द्वारा हृदयस्थ मोह का त्याग करो। तुम सर्वोत्तम देवता का स्मरण करो। आदर के साथ सत्कथा को सुनो। कार्त्तिक मास में स्नान-दानादि करो। तुम दामोदर की प्रसन्नता हेतु एक लाख बत्ती युक्त दीप जलाओ तथा एक लाख पद्मदान करके भक्ति के साथ श्रीहरि की प्रदक्षिणा करके उनको प्रणाम करो। कार्त्तिक व्रत का धारण तथा पारण सर्वपापनाशक है। वह सर्व उपद्रव नाशक भी है। इस व्रत का पालन

सधवा तथा विधवा, दोनों कर सकते हैं। कार्त्तिक मास में उत्तम दीपदान करो। कार्त्तिक मास में दीप हरि के लिये प्रियकारी है। महापापी भी दीपदान द्वारा सर्वपाप विनिर्मुक्त हो जाता है।।१३-२१।।

पुराकश्चिद्द्विजवरो नाम्ना हरिकरो ह्यभूत्। अधर्मविषयासक्तः शश्वद्वेश्यारतो द्विजः।।२२।।
पितृवित्तक्षयकरो वंशच्छेदे कुठारकः। कदाचित्तेन विधवे! द्यूते पितृधनं महत्।।२३।।
हारितं दुष्टसंसर्गात्ततो दुःखी स चाऽभवत्। कदाचित्साधुसंसर्गात्तीर्थयात्राप्रसङ्गतः।।२४।।
अयोध्यामागतोवत्से! महापापकरोद्विजः। कार्त्तिकेमासिसम्प्राप्तःश्रीमद्द्विजगृहेसदा।।२५।।
द्यूतव्याजेन तेनाऽऽशु दीपो दत्तो हरेः पुरः। ततःकालान्तरेविप्रोमृतोमोक्षमवाप्तवान्।।२६।।
महापातककृद्वाऽपि गतवानभयं हरिम्। तस्मात्त्वं कार्त्तिके मासि दीपदानं तथा कुरु।।२७।।
तथाऽन्यान्यपि दानानि कुरु भक्तिसमन्विता।
इत्यादिश्याथ तां कुत्सो जगामाऽन्यगृहं द्विजः।।२८।।

पूर्वकाल में सतत् वेश्यागामी, अधर्मासक्त हरिकर नामक ब्राह्मण था। वंश का उच्छेद करने में कुल्हाड़ी के समान वह ब्राह्मण द्यूत में आसक्त हो गया। उसने पिता के समस्त धन का नाश कर दिया। दुष्टों के साथ के कारण समस्त पितृधन का नाश हो जाने पर वह अतीव दुःखमग्न हो गया। हे विधवा! एक बार वह हरिहर महापातकी होकर भी साधुओं के साथ तीर्थयात्रा द्वारा अयोध्या पहुंचा। हे वत्से! तब कार्त्तिक मास था। वह हरिकर एक ब्राह्मण के यहां ठहरा तथा द्यूत द्वारा देवालय के समक्ष दीप जलाया। कुछ समय पश्चात् वह हरिकर मृत हो गया तथापि उस हरिकर ने महापातकी होने पर भी तीर्थयात्रा तथा देवालय में दीप जलाने के कारण सर्वपाप रहित होकर अभयदाता हरि को पाकर मोक्ष प्राप्त किया। इस कारण अब तुम भी भक्तियुक्त चित्त से कार्त्तिक मास में वैसा ही दीपदान तथा अन्य दान करो। द्विजवर कुत्स ब्राह्मणी को यह उपदेश देकर अन्यत्र चले गये।।२२-२८।।

साऽपिकुत्सवचःश्रुत्वापश्चात्तापेनसंयुता। व्रतंतुकार्तिकेमासिकरिष्यामीतिनिश्चिता।।२९।।
पतङ्गोदयवेलायां कार्त्तिकेस्नानमम्भसि। दीपदानं व्रतं चैव मासमेकं चकार सा।।३०।।
ततः कालान्तरे चैव गतायुर्मृतिमागता। दीपदानस्य माहात्म्यान्महापापकृदप्यसौ।।३१।।
स्वर्गमार्गं गतासास्त्रीकालेमोक्षमवापह। तस्मान्नारद! माहात्म्यंदीपदानस्यकोवदेत्।।३२।।
कार्त्तिके दीपदानं तु महापुण्यफलप्रदम्। कार्त्तिकव्रतनिष्ठो यो दीपदानादिकृन्नरः।।३३।।
दीपदानस्येतिहासं शृण्वन्वै मोक्षमाप्नुयात्।।३४।।
दीपदानस्य माहात्म्यं वक्तुं केनेह शक्यते। परदीपप्रबोधस्य माहात्म्यं शृणु नारद!।।३५।।
स्वस्याऽपि शक्तिराहित्ये परस्याऽपि प्रबोधनम्।
यः कुर्याल्लभते सोऽपि नाऽत्र कार्या विचारणा।।३६।।
दीपार्थं वर्तिकां तैलं पात्रं वा यो ददाति हि। सहायं वाऽथ कुरुतेददतांदीपमुत्तमम्।।३७।।
स तुमोक्षमवाप्नोतिनाऽत्रकार्याविचारणा। कार्त्तिकेदीपदानस्यमाहात्म्यंकोनुवर्णयेत्।।३८।।

ब्राह्मणी भी ऋषि कुत्स का यह वचन सुनकर परितृप्त हो गयी। उसने व्रत लिया कि "मैं कार्त्तिक मास में व्रत करूंगी।" उसने यह निश्चय करके कार्त्तिक मास में सूर्योदय स्नान तथा दीपदान हेतु एक मास व्रत किया। तदनन्तर वह ब्राह्मणी आयु क्षीण होने पर मृत हो गयी। वह महापातकी होकर भी दीपदान माहात्म्य के कारण स्वर्ग गयी तथा कालान्तर में उसे मोक्ष प्राप्त हो गया। अतएव कार्त्तिक मास में दीपदान महापुण्यप्रद है। हे नारद! इस दीपदान के फल को कौन कह सकता है? कार्त्तिक मास में निष्ठावान् होकर दीपदान के इतिहास को सुनो। इससे मोक्ष प्राप्त होता है। दीपदान की महिमा कह सकने में कौन सक्षम है? हे नारद! अब पराये दीप को प्रबोध करने का माहात्म्य सुनो। यदि स्वयं दीपदान कर सकने का सामर्थ्य नहीं है, तब जो व्यक्ति दूसरे के दीपक को सतत् बुझाने से बचता है, उसे भी दीपदान का ही फललाभ होता है। इसमें सन्देह नहीं है। जो व्यक्ति दीप हेतु तैल, बत्ती किंवा पात्र प्रदान करता है, अथवा दीपदाता की सहायता करता है, उसे भी मोक्ष मिलता है, इसमें सन्देह नहीं है। कार्त्तिक के दीपदान माहात्म्य को कौन कह सकता है?।।२९-३८।।

स्वस्याऽपि शक्तिराहित्ये परदीपं प्रबोधयेत्।
सोऽपि तत्फलमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा।।३९।।
वेश्या चेन्दुमतीनाम तस्या गेहेऽथ मूषिका। परदीपप्रबोधेन मोक्षं प्रापसुदुर्लभम्।।४०।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परदीपं प्रबोधयेत्। तेन मोक्षमवाप्नोति मूषिकावन्न संशयः।।४१।।
परदीपप्रबोधस्य फलमीदृग्विधं मुने!। साक्षाद्दीपप्रदानस्य माहात्म्यं केन वर्ण्यते।।४२।।

जब स्वयं दीपदान का सामर्थ्य न हो तब परदीप रक्षण भी दीपदानवत् फलप्रद है। इन्दुमती नामक एक वेश्या प्राचीन काल में रहती हैं। एक बार वह धनी पुरुष न मिलने के कारण खिन्न मन से देवगृह में दीपदान करके सो गयी। तभी दीपक तेल को पीने एक मूषक आया। तेल पीते-पीते उसने बत्ती ऊपर उठा दिया, जिससे दीपक तेज हो गया। वह मूषक इस पुण्यफल से मुक्त हो गया। हे मुनिवर! परदीप प्रबोधन का माहात्म्य ऐसा ही है। तब जिसने साक्षात् दीपदान किया है, उसका माहात्म्य कौन कह सकता है?।।३९-४२।।

नारद उवाच

कार्त्तिके दीपदानस्य माहात्म्यञ्ज मयाश्रुतम्। परदीपप्रबोधस्यमाहात्म्यमपिवैश्रतम्।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि व्योमदीपस्य वैभवम्।।४३।।

नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! कार्त्तिक मास में स्वयं दीपदान करने तथा परदीप प्रबोधन का माहात्म्य सुना। अब आकाशदीप प्रदान का माहात्म्य सुनने की इच्छा है।।४३।।

ब्रह्मोवाच

आकाशदीपमाहात्म्यं श्रृणुपुत्र! समाहितः। यस्य श्रवणमात्रेण दीपदाने मतिर्भवेत्।।४४।।
सम्प्राप्ते कार्त्तिके मासिप्रातःस्नानपरायणः।
आकाशदीपंयोदद्यात्तस्यपुण्यं वदाम्यहम्।।४५।।
सर्वलोकाधिपोभूत्वासर्वसम्पत्समन्वितः। इहलोकेसुखंभुक्त्वाचान्तेमोक्षमवाप्नयात्।।४६।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे पुत्र! समाहित होकर आकाशप्रदीप का माहात्म्य श्रवण करो। यह श्रवण करने से दीपदान की इच्छा उत्पन्न होती है। कार्त्तिक मास में समागत होने पर प्रातःस्नान परायण मानव आकाशप्रदीप प्रदान करके जो पुण्यलाभ करता है, वही कहता हूं। कार्त्तिक मास में आकाशप्रदीप प्रदाता निखिल लोकों का अधिपति होकर सर्व सम्पत्तिवान् हो जाता है तथा इहलोक में विविध सुखलाभ करके अन्त में मृत्यु के उपरान्त मोक्ष लाभ करता है।।४४-४६।।

स्नानदानक्रियापूर्वं हरिमन्दिरमस्तके। आकाशदीपो दातव्यो मासमेकं तु कार्त्तिके।
कार्त्तिके शुद्धपूर्णायां विधिनोत्सर्जयेच्च तम्।।४७।।
यः करोति विधानेनकार्त्तिकेव्योम्निदीपकम्। न तस्यपुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि।।४८।।
अत्र ते वर्णमिष्यामि इतिहासं पुरातनम्। यस्य श्रवणमात्रेण व्योमदीपफलं लभेत्।।४९।।
पुरा तु निष्ठुरोनामलुब्धको लोककण्टकः। यमुनातीरवासी चकालमृत्युरिवाऽपरः।।५०।।
वने चरन्मृगान्सर्वान्हत्वा वृत्तिमकल्पयत्। पथिकान्बाधते नित्यं चोरवृत्त्याधनुर्धरः।।५१।।
कश्चिद् ग्रामं जगामाऽऽशु चौर्यार्थं कार्त्तिके मुने!।
तस्मिन्विदर्भनगरे राजा सुकृतिनामकः।।५२।।
चन्द्रशर्माख्यविप्रस्य वचनात्कार्त्तिकेसुधीः। चकार व्योमदीपन्तुहरिमन्दिरमस्तके।।५३।।
दीपं दत्त्वा महाभक्त्याअशृणोच्चकथांनिशि। एतस्मिन्नेवकालेतुचौर्यार्थसमुपागतः।।५४।।
राज्ञा दत्तं व्योमदीपं पश्यन्क्षणमतिष्ठत। तदानीं दैवयोगेन गृध्रो जवसमन्वितः।।५५।।

कार्त्तिक मास में पहले स्नानदानादि सम्पन्न करके तदनन्तर विष्णु मन्दिर के शिखर पर एक मास दीपदान करना चाहिये। कार्त्तिक मास में पवित्र स्थान पर यथाविधि दीप उत्सर्ग करके जो मानव आकाश प्रदीप प्रदान (जलता है) करता है, कोटिकल्प पर्यन्त उसका पुनर्जन्म नहीं होता। इस सम्बन्ध में तुमसे एक प्राचीन इतिहास कहता हूं, उसे सुनकर आकाशदीपदान का ही फल लाभ होता है। पूर्वकाल में समस्त लोककण्टक निष्ठुर नामक एक व्याध था। द्वितीय यम के समान लगने वाला यह निष्ठुर यमुनातट पर निवास करता था। धनुर्धारी निष्ठुर वन में विचरण करता तथा पशुओं का वध करके उनसे जीविका चलाता था। वह मार्ग में चौर कृत्य द्वारा भी पथिकों को उत्पीड़ित करता था। यह निष्ठुर व्याध एक समय कार्त्तिक मास में चौर्य कार्य हेतु शीघ्रतापूर्वक एक ग्राम में प्रविष्ट हो गया। हे मुने! उस देश का राजा था सुकृति। सुधी राजा सुकृति ने चन्द्रवर्मा नामक द्विज के उपदेशानुसार कार्त्तिक मास में हरिमन्दिर के मस्तक प्रदेश पर आकाशप्रदीप जलाकर भक्तिपूर्वक रात्रिकाल में हरिकथा सुनी। इस समय निष्ठुर चौर्य कार्य हेतु वहां गया तथा क्षणकाल वहां खड़ा होकर उसने उस आकाश प्रदीप को देखा। तभी वहां पर दैवयोग से वेगगामी एक गृध्र आ गया।।४७-५५।।

शीघ्रमागत्य जग्राह तैलपात्रं सदीपकम्। स्वमुखेनैव संगृह्य वृक्षाग्रं च समाश्रयत्।।५६।।
तत्र पीत्वा तु तैलञ्च दीपं स्थाप्य स पक्षिराट्। वृक्षाग्रं तु समास्थाय क्षणमात्रमतिष्ठत।।५७।।

उस गृध्र ने शीघ्रतापूर्वक तैलपात्र के साथ आकाश प्रदीप उठाया तथा तैलपात्र को मुंह में दबाकर एक वृक्ष पर जा बैठा। तदनन्तर उस पक्षी ने तेल पीकर दीपपात्र को वृक्ष की शाखा के आगे रखा तथा उसी वृक्ष पर विश्राम करने लगा।।५६-५७।।

तदानीं दैवयोगेन ग्रहीतुंपक्षिसत्तमम्। मार्जारोऽप्यारुहद्वृक्षं पक्षिणाऽधिष्ठितंतुतम्।।५८।।
तदग्रे मुखदीपञ्च पश्यन्क्षणमतिष्ठत। आकाशदीपमाहात्म्यं कथितं चन्द्रशर्मणा।।५९।।
राज्ञे सुकृतिनाम्नेचतौ वै शुश्रुवतुःक्षणम्। खगमार्जारकौतत्र स्वस्वचाञ्चल्यदोषतः।।६०।।
मार्जारो जगृहे तत्र शाखान्तरगतं खगम्। दैवेन चोदितौ वृक्षाच्छिलायां पतितौ तदा।।६१।।
भग्नगात्रौ मृतौ तत्र पक्षिमार्जारकौभुवि। दिव्यदेहसमायुक्तौ यानारूढौदिवङ्गतौ।।६२।।

तभी वहां दैवयोग से एक बिलाड आया तथा गृध्र को पकड़ने हेतु वृक्ष शाखा पर चढ़ा। तदनन्तर उस बिलाड़ ने पक्षी के सामने दीप को देखा तथा क्षणकाल वहीं रुक गया। इस समय द्विज चन्द्रशर्मा राजा सुकृति से आकाशदीप का माहात्म्य कह रहे थे। तभी पक्षी एवं बिलाड़, इन दोनों ने चन्द्रशर्मा कथित आकाशदीप की महिमा को सुना। पक्षी तथा मार्जार दोनों ही चंचल होते हैं। अपनी चंचलता के कारण दोनों का मन हरिकथा में नहीं लगा। तब बिलाड़ (मार्जार) ने एक क्षण भी देरी किये बिना गृध्रपक्षी पर आक्रमण कर दिया। तभी दैवात् बिलाड़ एवं गृध्र, दोनों ही वृक्ष के नीचे शिला पर गिरे तथा शरीर भग्न होने के कारण दोनों ही मृत हो गये। हे नारद! मृत्यु के उपरान्त बिलाड़ तथा गृध्र दोनों ने ही दिव्य देह धारण किया तथा स्वर्गलोक विमान से गमन किया।।५८-६२।।

तत्सर्वंलुब्धको दृष्ट्वा चौर्यार्थं समुपागतः। निवृत्तो दुष्टभावेन कथयन्तंकथांमुनिम्।।६३।।
चन्द्रशर्माणमाभाष्य इदं वचनमब्रवीत्। चन्द्रशर्मन्मया दृष्टं चौर्यार्थं ह्यागतेन च।।६४।।
राज्ञा सुकृतिना दत्तं व्योमदीपं मनोहरम्। तदानीं दैवयोगेन खगः पात्रं प्रगृह्य च।।६५।।
तैलं पीत्वा तु तत्पात्रं सदीपं तुमनोहरम्। वृक्षाग्रेस्थापयित्वाच तत्र क्षणमतिष्ठत।।६६।।
मार्जारोऽप्यागतस्तत्रग्रहीतुंपक्षिपुङ्गवम्। दैवेन प्रेरितौ तौ च उभे शाखेसमाश्रितौ।।६७।।

त्वन्मुखात्कथ्यमानां हि कथां शुश्रुवतुः क्षणम्।
पश्चाच्चाञ्चल्यदोषेण मार्जारो ह्यग्रहीत्खगम्।।६८।।
तौ वृक्षात्पतितौ मृत्युम्प्राप्तौ च क्षणमात्रतः।
उभौ तौ दिव्यरूपौ च यानारूढौ दिवं गतौ।।६९।।

तदाश्चर्यमहं दृष्ट्वा त्वां प्रष्टुं समुपागतः। तौ कौ पुराच मार्जारखगौ तद्वदभोद्विज।।७०।।
तिर्यग्योनिसमापन्नौमुक्तौकेनच कर्मणा। इतिलुब्धवचः श्रुत्वा चन्द्रशर्माऽब्रवीत्तदा।।७१।।

चोरी के लिये आये उस व्याध निष्ठुर ने यह सब प्रत्यक्ष देखा था। वह दुष्टभाव से निवृत्त होकर तत्क्षण धर्मवक्ता मुनि चन्द्रशर्मा के पास आकर कहने लगा—"हे चन्द्रशर्मन्! मैंने चौर्य कार्यार्थ यहां आगमन करके देखा कि दैवयोग से एक गृध्र ने आकर राजा सुकृति प्रदत्त मनोहर आकाश प्रदीप को उठाकर वृक्षशाखा पर आरोहण किया। उसने तैलपान करके वहीं वृक्ष शाखा पर वह दीपपात्र रखा तथा क्षणकालार्थ वहीं बैठ गया। तदनन्तर एक बिलाड़ आकर पक्षिराज गृध्र को पकड़ने का प्रयास करने लगा। हे द्विज! इन्होंने दैव प्रेरित होकर वृक्ष शाखा से ही आपके मुख से निःसृत धर्मकथा को सुना। तत्पश्चात् चाञ्चल्य दोष के कारण बिलाड़ ने गृध्र पर आक्रमण किया। इससे वे दोनों ही वृक्षशाखा से गिरकर मृत हो गये। उन्होंने मरणोपरान्त दिव्यदेह धारण

किया तथा यान पर बैठकर स्वर्ग चले गये। मैं यह अद्भुत व्यापार देखकर इसका कारण जानने आपके निकट आया हूं। हे द्विज! ये खग गृध्र तथा मार्जार कौन हैं, पूर्वजन्म में ये क्या थे? इनको तिर्यक् योनि क्यों मिली, अब क्या करने से ये मुक्त हो गये? कृपया मुझे बतायें।।" व्याध का यह वचन सुनकर चन्द्रशर्मा कहने लगे।।६३-७१।।

शृणु लुब्ध! प्रवक्ष्यामि तयोर्वृत्तान्तमञ्जसा।
मार्जारोऽपि पुरा पापी तथा श्रीवत्सगोत्रजः।।७२।।
देवशर्माइतिप्रोक्तो देवद्रव्याऽपहारकः। अहो बलनृसिंहस्य पूजाकर्तृत्वमाप सः।।७३।।
तस्मिन्देवालये प्राप्तं तैलं द्रव्यादिकं तथा। अपहृत्यच तेनैव कुटुम्बं पोषयत्यसौ।।७४।।
आयुर्नीत्वैवमेवाऽसौ ततः पञ्चत्वमागतः। तस्मात्पापात्कालसूत्रं महारौरवरौरवम्।।७५।।
निरुच्छ्वासं तथा प्राप्य असिपत्रवनंक्रमात्। छिद्यमानो महाकायैर्यमदूतैर्भयङ्करैः।।७६।।
अनुभूय च तान्सर्वान्ब्रह्मराक्षसतांगतः। ततस्तुश्वानयोनौच चण्डालोऽभूत्कुकर्मतः।।७७।।
एवं जन्मशतम्प्राप्य भूमौ मार्जारतांगतः। आकाशदीपमाहात्म्यंश्रुत्वेदानीं तु दैवतः।
निर्मुक्ताऽखिलपापस्तु अगमद्धरिमन्दिरम्।।७८।।

चन्द्रशर्मा कहते हैं—"हे व्याध! खग तथा मार्जार का पूर्व वृत्तान्त सुनो। पूर्वकाल में यह मार्जार श्रीवत्स गोत्र में जन्मा था। उसका नाम था देवशर्मा। पापी देवशर्मा सदैव देवद्रव्य का हरण करता था। दुःख की कथा क्या कहूं। देवशर्मा को नृसिंह श्रीहरि की पूजा का कर्तृत्व प्राप्त था। देवालय में जो कुछ तैल प्राप्त होता था, सब हस्तगत करके वह उससे अपने आत्मीय-स्वजनों का भरण-पोषण करता था। तदनन्तर कालवशात् देवशर्मा क्षीणायु होकर पञ्चत्व को प्राप्त कर गया। इन पापों के कारण क्रमशः वह कालसूत्र, रौरव, महारौरव, निरुच्छ्वास तथा असिपत्रवन नामक नरकों को प्राप्त हो गया। असिपत्रवन में पतित देवशर्मा महाकाय यमदूतों द्वारा भेदा जाता तथा समस्त नरक भोग भोगने के उपरान्त उसने ब्रह्मराक्षस होकर जन्म लिया। तदनन्तर वह कर्मदोष के कारण कुत्ते की योनि में तदनन्तर चाण्डाल योनि में गया। इस प्रकार उसने सैकड़ों जन्मों को भोग कर अन्त में मार्जार योनि को प्राप्त किया। सम्प्रति दैवयोग से वह मार्जार आकाशदीप माहात्म्य सुनने के अनंतर समस्त कलुषरहित होकर हरि के निकट पहुंचा।।७२-७८।।

गृध्रोऽयं तु पुरा विप्रोमिथिलेवेदपारगः। शर्यातिरितिविख्यातोनाम्नालोकेमहाप्रभुः।।७९।।
दासीसङ्गं चकाराऽसौ वेश्यासङ्गं तथैवच। तेन दोषेण महता पञ्चत्वमगमत्तदा।।८०।।
कुम्भीपाके महाघोरे स्थित्वा युगचतुष्टयम्। कर्मशेषेण भूमौच गृध्रत्वमगमत्तदा।।८१।।
दैवेन चोदितो गृध्रस्तैलपानार्थमागतः।।८२।।
दत्त्वा चाऽऽकाशदीपञ्च श्रुत्वा चैव हरेः कथाम्।
विध्वस्ताऽखिलपापस्तु जगाम हरिमन्दिरम्।।८३।।
इत्येतत्सर्वमाख्यातं लुब्ध! गच्छ यथासुखम्।
व्याधोऽप्यस्य वचः श्रुत्वा गत्वा चैव स्वमन्दिरम्।।८४।।

यह गृध्र पूर्वकाल में मिथिला देश में शर्याति नामक प्रख्यात प्रभुशक्तिसम्पन्न ब्राह्मण था। द्विज शर्याति ने वेश्या एवं दासियों का संसर्ग प्राप्त किया तथा दूषित होकर मृत हो गया। इस पाप के कारण उसने महाघोर कुंभीपाक नरक में चार युग दण्डभोग किया। वहां कर्मक्षय हो जाने पर उसने गृध्र योनि में जन्म लिया। हे व्याध! अब वह गृध्र दैव कृत प्रेरणा से यहां तैलपानार्थ आया। वह दीपक मुख में लेकर वृक्षशाखा पर बैठा। तभी आकाश दीपदान की कथा हो रही थी। जिसे उसने वृक्षशाखा पर बैठे हुये सुना। हे व्याध! तदनन्तर गृध्र भी समस्त पापरहित होकर हरिधाम को प्राप्त हो गया। मैंने तुमसे यह सब कथा कह दिया। अब तुम यथासुख जाओ।'' व्याध भी यह सुनकर अपने घर लौट गया।।७९-८४।।

व्रतं चाऽऽकाशदीपस्य चकारविधिवन्मुने!। आयुःशेषंतदानीत्वाजगामहरिमन्दिरम्।।८५।।
सुनन्दोऽपि महाराज आश्चर्यं समुपागतः। चकार विधिना मासं चन्द्रशर्मोक्तमार्गतः।।८६।।

प्रातः स्नात्वा शुचिर्भूत्वाकार्त्तिके मासि वै नृपः।
कोमलैस्तुलसीपत्रैः समभ्यर्च्य जनार्दनम्।।८७।।
रात्रौ दद्याद् व्योमदीपं मन्त्रेणाऽनेन वै नृपः।।८८।।

दामोदराय विश्वाय विश्वरूपधरायच। नमस्कृत्वा प्रदास्यामि व्योमदीपं हरिप्रियम्।
निर्विघ्नं कुरु देवेश! यावन्मासः समाप्यते।।८९।।

व्रतेनाऽनेन देवेश! त्वयिभक्तिः प्रवर्द्धताम्। इति मन्त्रेण राजाऽसौ दीपदानञ्चकारह।।९०।।

हे मुनिवर! तब वह व्याध भी उन ब्राह्मण का वाक्य सुनकर अपने घर आया तथा उसने यथाविधि आकाश दीपव्रत धारण किया। तदनन्तर काल आने पर मृत्यु के उपरान्त उसने वैकुण्ठलोक प्राप्त किया। राजा सुकृति ने भी यह विस्मय देखकर चन्द्रशर्मा के उपदेशानुसार विधिवत् एक मास मर्यन्त कार्त्तिकव्रत धारण किया तथा नित्य पवित्र होकर प्रातःस्नान किया तथा पद्म एवं तुलसीपत्र द्वारा जनार्दनार्चन भी किया। वह ''दामोदराय विश्वाय विश्वरूपाधराय च, नमस्कृत्वा प्रदास्यामि व्योमदीपं हरिप्रियम्। निर्विघ्नं कुरुदेवेश! त्वयि भक्ति प्रवर्द्धताम्।'' मन्त्र से दीपदान करता था।।८५-९०।।

ब्राह्मे मुहूर्ते च पुनर्व्योमदीपं ददाति हि। विष्णोः पूजा कृताप्रातःप्रातःस्नानञ्चकारह।।९१।।

उत्सर्गस्य विधिं कृत्वा व्योम्निदीपं समाप्य च।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च व्रतं विष्णोः समापयेत्।।९२।।

तेन पुण्यप्रभावेण स राजा मुनिसत्तम!। शरदां शतसाहस्त्रमिह भागान्मनोहरान्।।९३।।
सुपुत्रपौत्रस्वजनैबुभुजे सह भार्यया। ततश्चाऽन्ते द्विजवर विमानं सुमनोहरम्।।९४।।

स्त्रीभिः सहः समारुह्य मोखामर्गं गतो मुने!।
चतुर्भुजः पीतवासाः शङ्खचक्रगदाधरः।।९५।।
विष्णुलोके विष्णुरिव प्रोच्यमानः सदाऽमरैः।
क्रीडयामास राजाऽसौ यथाकामं महामनाः।।९६।।

तस्मात्तु कार्तिके मासि मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
आकाशदीपो दातव्यो विधानेन हरेः प्रियः॥९७॥
दास्यन्ति ये कार्त्तिकमासि मर्त्या व्योम प्रदीपं हरितुष्टयेऽत्र।
पश्यन्ति ते नैव कदाऽपि देवं यमं महाक्रूरमुखं मुनीन्द्र!॥९८॥
अथाऽन्यच्च प्रवक्ष्यामि व्योमदीपस्य वैभवम्।
बालखिल्यैः पुरा प्रोक्तं तच्छृणुष्व द्विजोत्तम!॥९९॥

राजा इस विधान से दीपदान करता। वह ब्राह्ममुहूर्त्त में आकाश दीपदान, प्रातः सन्ध्या तथा विष्णु पूजा करता। दीप उत्सर्ग करके आकाश दीपदान सम्पन्न करता था। दीपोत्सर्ग के उपरान्त आकाश दीपदान करके वह राजा ब्राह्मण भोजन कराता। हे मुनिसत्तमगण! इस पुण्यफल द्वारा राजा पुत्र-पौत्र-स्वजन एवं पत्नी के साथ सौ सहस्रवर्ष पर्यन्त विविध मनोरम भोगों का उपभोग करके अन्त में मनोहर विमान पर आरूढ़ होकर स्त्री पुत्रादि के साथ मोक्ष को प्राप्त हो गया। महामना राजा सुकृति वैकुण्ठ पहुंचकर चतुर्भुज, शंखचक्रगदाधारी, पीतवस्त्रधारी होकर विष्णु के समान होकर अमरगण द्वारा पूजित होता हुआ अपनी इच्छा के अनुरूप क्रीड़ारत रहता था। इसलिये दुर्लभ मानव जन्म पाकर यथाविधि कार्त्तिक मास में हरिप्रिय आकाश दीपदान करें।

हे मुनीन्द्र! जो लोग हरि की प्रसन्नता हेतु कार्त्तिक मास में दीपदान करते हैं, महाक्रूर मुखवाले यम का वे कदापि दर्शन नहीं करते। हे द्विजश्रेष्ठ! पूर्वकाल में बालखिल्यगण ने जिन आकाशदीप क़ी महिमा का वर्णन किया था, वह सब सुनो।।९१-९९।।

बालखिल्या ऊचुः

कृष्णादिमासक्रमतःकार्त्तिकस्याऽऽदिमासतः। आकाशदीपदानंतुकुर्वन्तुऋषिसत्तमाः॥१००॥
तुलायां तिलतैलेनसायंसन्ध्यासमागमे। आकाशदीपं यो दद्यान्मासमेकं निरन्तरम्॥१०१॥
सश्रीकाय श्रीपतयेश्रिया न सवियुज्यते। आकाशदीपवंशस्तुविंशद्धस्तोत्तमोभवेत्॥१०२॥

बालखिल्यगण कहते हैं—हे ऋषिप्रवरगण! कार्तिक मास के आदि से लेकर अन्त पर्यन्त आकाशदीपदान करिये। जो कार्त्तिक मास की सन्ध्या के समय तिल तैल द्वारा लक्ष्मी के साथ जनार्दन को एक मास पर्यन्त निरन्तर आकाशदीप प्रदान करते हैं, लक्ष्मी कदापि उनका त्याग नहीं करतीं। आकाशदीप का जो बांस हो, वह बीस हाथ का उत्तम कहा गया है।।१००-१०२।।

मध्यमो नवहस्तः स्यात्कनिष्ठः पञ्चहस्तकः।
यथा दूरस्थितैर्लोकैर्दृश्यते तत्तथाऽऽचरेत्॥१०३॥
तथाऽभ्रादिकरण्डेषु दीपदानं विशिष्यते। वंशस्य नवमांशेनलम्बाकार्या पताकिका॥१०४॥
मयूरपिच्छमुष्टिं वा कलशं चोपरिन्यसेत्। विष्णुप्रीतिकरोदीपःपित्रुद्धारस्यकारकः॥१०५॥
एकादश्यास्तुलार्काद्वा दीपदानमतोऽपिवा। दामोदराय नभसि तुलायां लोलयासह॥१०६॥
प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे। आकाशदीपसदृशं पितुरुद्धारकं नहि॥१०७॥

हेलिकस्य च द्वौ पुत्रौ तत्रैकस्तु पिशाचकः। व्योमदीपपुण्दानान्मोक्षंप्राप्तसुदुर्लभम्॥१०८॥
नमः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो नमो धर्माय विष्णवे। नमो यमाय रुद्राय कान्तारपतये नमः॥१०९॥
मन्त्रेणाऽनेनयेमर्त्याःपितृभ्यः खेतुदीपकम्। प्रयच्छन्तिगतायेस्युर्नरकेयान्तितेऽपिवै।
उत्तमां गतिमित्थं ते दीपदानं मयेरितम्॥११०॥

मध्यम बांस नौ हाथ का तथा अधम बांस पांच हाथ ऊंचा होता है, तथापि दूर से ही लोग ऊर्ध्व में दीप को देख सकें ऐसा ऊंचा बांस लगाकर दीपदान करें। इस बांस के नवम भाग में एक पताका लटकायें। इसके शिर पर एक मोरपंख अथवा एक कलसी रखें। दीपपात्र अभ्रककरण्ड का प्रशस्त है। इस प्रकार का दीपदान विष्णु के लिये प्रीतिपद तथा पितरों का उद्धारक होता है आश्विन मास की संक्रान्ति अथवा एकादशी के दिन से इसे मूलोक्त "दामोदराय" से लेकर "नमोऽनन्ताय वेधसे" पर्यन्त के मन्त्र को पढ़कर स्थापित तथा प्रदान करें। आकाशदीप के समान पितृगण का उद्धारक अन्य कुछ भी नहीं है। हेलिक के दो पुत्र थे। उनमें एक पिशाच होकर भी आकाशदीप के पुण्यफल से दुर्लभ मोक्ष पा सका था। जो "नमः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो नमो धर्माय विष्णवे। नमो यमाय रुद्राया कान्तारपतये नमः" मन्त्र द्वारा आकाशदीप दान करते हैं, उनके नरकस्थ पितर भी उत्तमगति लाभ करते हैं।।१०३-११०।।

लक्ष्मीसन्ततिसिद्ध्यर्थमारोग्याय प्रदीपयेत्॥१११॥
कार्त्तिकेकृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पञ्चसु। तिथीषूक्तः पूर्वरात्रे नृणां नीराजनाविधिः॥११२॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु विशेषतः। कूटागारेषु चैत्येषु सभासु च नदीषु च॥११३॥
प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोलीनिष्कुटेषु च। मन्दुरासु विविक्तासुहस्तिशालासुचैवहि॥११४॥
प्रदोषसमये दीपान्दद्यादेवं मनोहरान्। कृतंयैः कार्त्तिके मासि दीपदानं विधानतः॥११५॥
दृश्यन्ते ये रत्नभाजस्तेऽत एव प्रकीर्तिताः। दीपदानासमर्थश्चेत्परदीपं तु रक्षयेत्॥११६॥

यह जो दीपदान कहा गया इसके प्रभाव से मनुष्य लक्ष्मी, सन्तति तथा आरोग्य लाभ करता है। कार्त्तिक कृष्णा द्वादशी से पांच तिथि तक राजा लोग दीपदान तथा पूर्व रात्रि में नीराजन करें। विशेषतः यह ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिदेवगण के देवभवन (मन्दिर में), सुरंगद्वार पर, चैत्य, सभा, नदी, प्राकार, उद्यान, वापी, ग्राम के अन्दर वाले पथ पर, गृहाराम, अश्वशाला, निर्जन स्थल तथा गजशाला पर प्रदोष काल में मनोहर आकाशदीप लगाये। सविधि कार्त्तिक मास में दीपदान करके मानव विविध धनरत्न के भागी हो जाते हैं। जो स्वयं दीपदान न कर सके वह अन्य के दीप की रक्षा करें।।१११-११६।।

योवेदाभ्यासिने दद्याद्वापार्थं तैलमादरात्। कोवा तस्य फलंवक्तुंभुवितिष्ठतिमानवः॥११७॥
दीपान्दद्याद्बहुविधान्कार्त्तिके विष्णुसन्निधौ।
कार्त्तिकेमासि सम्प्राप्ते गगने स्वच्छतारके॥११८॥
रात्रौलक्ष्मीःसमायाति द्रष्टुं भुवनकौतुकम्। यत्रयत्रचदीपान्सा पश्यत्यब्धिसमुद्भवा॥११९॥
तत्रतत्र रतिं कुर्यान्नाऽन्धकारे कदाचन। तस्माद्दीपःस्थापनीयःकार्तिकेमासिवैसदा॥१२०॥

लक्ष्मीरूपार्थिनां प्रोक्तं दीपदानंविशेषतः। देवाऽऽलयेनदीतीरे राजमार्गे विशेषतः॥१ २ १॥
निद्रास्थलेदीपदातातस्यश्रीःसर्वतोमुखी। दुर्बलस्याऽऽलयंवीक्ष्यदीपशून्यंतुयोददेत्॥१ २ २॥
विप्रस्यवाऽऽन्यवर्णस्यविष्णुलोकेमहीयते। कीटकण्टकसंकीर्णेदुर्गमे विषमस्थले॥१ २ ३॥
कुर्याद्यो दीपदानानि नरकं स न गच्छति। दद्याद्रात्रौ पञ्चनदे दीपं यो विधिपूर्वकम्॥१ २ ४॥

कार्त्तिक मास में जो मनुष्य सादर वेदाभ्यासी को तैल देता है एवं विष्णुमन्दिर में नाना प्रकार से दीपदान करता है, ऐसा कौन मनुष्य इस पृथिवी पर है जो उसके दानफल का वर्णन करने में सक्षम है? कार्त्तिक मास आने पर गगन में स्वच्छ तारा उदित होते हैं। तब लक्ष्मी देवी त्रिभुवन के कौतुक को देखने हेतु रात्रि में आती हैं। उसी समय विष्णुमन्दिर में अनेक दीपदान करें। क्योंकि सागर तनया रमादेवी जहां-जहां दीपक देखती हैं, उन सभी स्थानों में उनको प्रसन्नता होती है। वे अन्धकार वाले स्थान में कदापि नहीं जातीं। अतएव जो लक्ष्मी-श्री की कामना करते हैं, वे कार्त्तिक मास में दीपदान अवश्य करें। देवालय, नदीतीर, विशेषतः राजपथ, निद्रास्थांन में जो दीपदान करते हैं, उनको सर्वतोमुखी लक्ष्मी प्राप्त होती हैं। ब्राह्मण अथवा अन्य जाति के दरिद्रगण को दीपरहित देखकर जो उनको दीपदान करते हैं, वे विष्णुलोक प्राप्त करते हैं। कीट-कंटकयुक्त किंवा दुर्गन्धयुक्त विषम स्थान में जो दीपदान करते हैं, वे कदापि नरक नहीं जाते। पंचनद क्षेत्र में (पञ्चगंगा घाट, वाराणसी) दीपदान रात्रि में करें।।११७-१२४।।

तस्य वंशे प्रजायन्ते बालकाःकुलदीपकाः। पितृपक्षेऽन्नदानेनज्येष्ठाऽऽषाढेचवारिणा॥१ २ ५॥
कार्त्तिके तत्फलं तेषांपरदीपप्रबोधनात्। बोधनात्परदीपस्य वैष्णवानाञ्च सेवनात्॥१ २ ६॥
कार्त्तिके फलमाप्नोति राजसूयाऽश्वमेधयोः। पुराहरिकरोनाम द्विजःपापरतः सदा॥१ २ ७॥

उस व्यक्ति के वंश में उत्पन्न बालक कुलदीपक होते हैं। पितृपक्ष में अन्नदान तथा ज्येष्ठ एवं आषाढ़ में जलदान का जो फल है, वह फल कार्त्तिक में दीपदान अथवा दूसरे के दीप को प्रदीप्त बनाये रखने में मिल जाता है। कार्त्तिक में अन्य का दीप प्रदीपित रखना अथवा वैष्णवगण की सेवा करना, ये दो कार्य व्यक्ति को यथाक्रमेण बाजपेय और अश्वमेध यज्ञफल प्रदान करते हैं। पूर्वकाल में हरिकर नामक पापरत ब्राह्मण था।।१२५-१२७।।

कृतं द्यूतप्रसङ्गेन दीपदानं हि कार्त्तिके। तेनपुण्यप्रभावेण स्वर्गं प्राप द्विजोत्तमः॥१ २ ८॥
आकाशदीपदानेन पुरा वै धर्मनन्दनः। विमानवरमारुह्य विष्णुलोकं ययौ नृपः॥१ २ ९॥
यःकुर्यात्कार्त्तिकेविष्णोःपुरःकर्पूरदीपकम्।
प्रबोधिन्यांविशेषेणतस्यपुण्यंवदाम्यहम्॥१ ३ ०॥
कुले तस्य प्रसूता ये पुरुषास्तेहरिप्रियाः। क्रीडित्वासुचिरं कालमन्तेमुक्तिंव्रजन्तिच॥१ ३ १॥
दीपको ज्वलते यस्य दिवा रात्रौ हरेर्गृहे। एकादश्यां विशेषेणसयातिहरिमन्दिरम्॥१ ३ २॥
लुब्धकोऽपि चतुर्दश्यां दीपंदत्त्वाशिवालये।
भक्त्याविनापरेलिङ्गेशिवलोकंजगामसः ॥१ ३ ३॥

गोपः कश्चिदमावास्यां दीपं प्रज्वाल्य शार्ङ्गिणः।
मुहुर्जयजयेत्युक्त्या स च राजेश्वरोऽभवत्।।१३४।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे दीपदानमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

वह ब्राह्मण जूआ खेलने के कारण पापरत हो गया था, तथापि उसने कार्त्तिक में दीपदान करके उस पुण्य के प्रभाव से ब्राह्मणों में श्रेष्ठत्व लाभ किया तथा स्वर्ग गमन किया। पूर्वकाल में आकाशदीप प्रदान करके विदर्भ देशवासी राजा धर्मतनय विमानारूढ़ होकर विष्णुलोक गये। जो कार्त्तिक मास में विष्णु के समीप उज्वल शिखा वाले कपूर दीप का दान करते हैं, उनका पुण्यफल सुनो। उनके वंश में उत्पन्न मनुष्य हरि को प्रिय होते हैं तथा दीर्घकाल तक संसार में सुखपूर्वक क्रीड़ारत रहकर अन्त में मुक्त हो जाते हैं। उनके द्वारा प्रदत्त दीप हरिमन्दिर में विशेषतः एकादशी के समय दिन-रात प्रज्वलित रहता है। वे वैकुण्ठधाम प्राप्त करते हैं। व्याध ने शिवालय में चतुर्दशी के दिन दीपदान किया तथा लिंग के प्रति भक्तिविहीन होने पर भी उसने शिवलोक में स्थान प्राप्त किया। एक गोप ने भी बारम्बार "हरि की जय हो" कहते हुये दीपदान करके राज्यैश्वर्य प्राप्त किया।।१२८-१३४।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।।

अष्टमोऽध्यायः

तुलसी माहात्म्य, हरिमेघ-सुमेघ आख्यान

नारद उवाच

भूयः कथय तृप्तिर्हि नास्ति मे कमलासन!। त्वद्वागमृतपानेन तृषा भूयः प्रवर्धते।।१।।

नारद कहते हैं—हे कमलासन! आपके वाक्यामृत पान से मेरी पिपासा निवृत्त नहीं हो रही है, परन्तु पुनः-पुनः तृष्णा बढ़ती जा रही है। अतएव आप पुनः हरिकथा कहिये।।१।।

ब्रह्मोवाच

प्रातः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कार्त्तिकेविष्णुतत्परः। देवंदामोदरंपूज्यकोमलैस्तुलसीदलैः।
स तु मोक्षमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा।।२।।
भक्त्या विरहितोयस्तुसुवर्णादिभिरर्चयेत्। तस्यपूजांनगृह्णातिनाऽत्रकार्याविचारणा।।३।।
सर्वेषामपि वर्णानां भक्तिरेषा परा स्तुता। भक्त्याविरहितंकर्मनविष्णोःप्रियकारणम्।।४।।

भक्त्या सम्पूजितो नित्यं तुलस्यास्तु दलार्धतः। स्वयं प्रत्यक्षमायाति भगवान्हरिरीश्वरः॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—विष्णुभक्ति में लगा मनुष्य कार्त्तिक मास में प्रातः स्नान से शुद्ध होकर कमल एवं तुलसीपत्र से देव दामोदर की पूजा करके मोक्ष प्राप्त करता है। इस सम्बन्ध में कोई विचार अथवा विवाद नहीं करना चाहिये। भक्तिरहित मनुष्य सुवर्णादि से भले ही पूजन करें तथापि भगवान् वह पूजन ग्रहण नहीं करते। सभी जातियों में एकमात्र भक्ति ही प्रधानरूप से अवलम्बनीय होती है। भक्तिहीन क्रिया से विष्णु प्रसन्न नहीं होते। भक्तिभाव से आधे तुलसी दल से ही पूजा करके मनुष्य शीघ्र वैकुण्ठ प्राप्त करता है। चोलराजा ने भक्ति से सम्यक् प्रकार से पूजा करके सत्वर रूप से वैकुण्ठ गमन किया था। भक्तिभाव से पूजित श्रीहरि स्वयं प्रत्यक्षरूपेण दर्शन देते हैं।।२-५।।

विष्णुदासः पुराभक्त्या तुलसीपूजनेनच। विष्णुलोकंगतःशीघ्रं चोलोगौणत्वमागतः॥६॥

तुलस्याः शृणु महात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्द्धनम्।
यत्पुरा विष्णुना प्रोक्तं रमायै तद्वदाम्यहम्॥७॥

पूर्वकाल में विष्णुदास ने भक्तिभाव से तुलसीदल से ही नारायण की पूजा करके वैकुण्ठ गमन किया था। चोलराज ने भक्तिपूर्वक तुलसीदल से नारायण का पूजन करके गणत्व लाभ किया था। हे नारद! पापनाशक, पुण्यवर्द्धक तुलसी माहात्म्य को सुनो। हरि ने पूर्वकाल में लक्ष्मी से इस तुलसी माहात्म्य को कहा था। वही मैं तुमसे कह रहा हूं।।६-७।।

सम्प्राप्ते कार्त्तिकेमासि तुलस्याःपूजनं हरेः। येकुर्वन्तिनराभक्त्यातेयान्तिपरमं पदम्॥८॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तुलस्याः कोमलैर्दलैः। पूजनीयो महाभक्त्यासर्वक्लेशविनाशनः॥९॥
रोपिता तुलसी यावत्कुरुते मूलविस्तरम्। तावद्युगसहस्त्राणिब्रह्मलोके महीयते॥१०॥
तुलसीपत्रसंयुक्तजले स्नानं चरेद्यदि। सर्वपापविनिर्मुक्तो मोदते विष्णुमन्दिरे॥११॥
वृन्दावनं च कुरुते रोपणार्थं महामुने!। तावतैव विमुक्ताऽघो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥१२॥
तुलसीकाननं ब्रह्मन्गृहे यस्याऽवतिष्ठते। तद्गृहं तीर्थभूतं तु न यान्ति यमकिङ्कराः॥१३॥
सर्वपापहरं पुण्यं कामदं तुलसीवनम्। रोपयन्तिनराःश्रेष्ठास्तेनपश्यन्तिनभास्करिम्॥१४॥
तुलसीकाष्ठसंयुक्तं गन्धं यो धारयेन्नरः। तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणं तथैव च॥१५॥
तुलसीविपिनच्छाया यत्र चैव भवेद्द्विज। तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यंपितॄणां तृप्तिहेतवे॥१६॥

यन्मुखे तुलसीपत्रं कर्णे शिरसि दृश्यते।
यमस्तं नेक्षितुं शक्तः किमु दूता भयङ्कराः॥१७॥

कार्त्तिक मास समागत होने पर जो भक्तिपूर्वक तुलसी तथा विष्णु की पूजा करते हैं, उनको परमपद मिल जाता है। अतएव सर्वप्रयत्न से कमलदल से अत्यन्त भक्तिपूर्वक विष्णुपूजन करें। इससे समस्त क्लेशसमूह नष्ट होते हैं। लगाये गये तुलसी पादप की जड़ जहां तक फैलती है, तुलसी लगाने वाला उतने सहस्त्रयुग पर्यन्त ब्रह्मलोक में निवास करता है। मनुष्य तुलसीपत्र युक्त जल में स्नान करके सर्वपापरहित होकर विष्णुलोक गमन

करता है। हे महामुनि! जो विपुल तुलसी कानन का निर्माण करते हैं, वे उस पुण्य के कारण ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। हे ब्रह्मन्! जिसके गृह में तुलसीकानन विराजित है, उसका गृह तीर्थ है तथा वहां यमदूतगण का आगमन नहीं होता। जो सर्वपापहारी कामद पुण्यप्रद तुलसी कानन का रोपण तथा निर्माण करते हैं, वे श्रेष्ठ मनुष्य यम के मुख का दर्शन नहीं करते। जो गन्धयुक्त तुलसी काष्ठ धारण करते हैं, यदि वे पाप भी करते हैं, तथापि पाप उनका स्पर्श नहीं करता।

हे द्विज! जहां तुलसी पादप की छाया विद्यमान रहती है, वहीं पितरों की तृप्ति हेतु श्राद्ध करें। जिसका मुख-मस्तक तथा कर्ण तुलसीदल से युक्त है, यम भी उसकी ओर नहीं देख सकते। यमदूतगण की तो बात ही क्या?।।८-१७।।

तुलस्या महिमां यस्तु शृणुयान्नित्यमादृतः।
सर्वपापविमुक्तात्मा ब्रह्मलोकं स गच्छति॥१८॥

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। तुलस्या विषये ब्रह्मञ्छवणात्पापनाशनम्॥१९॥

जो सदैव आदरपूर्वक तुलसी माहात्म्य का श्रवण करते हैं, वे सर्वकलुषरहित होकर ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। हे ब्रह्मन्! तुलसी का माहात्म्य तो ऐसा है, जिसके लिये एक पुरातन इतिहास उदाहरणार्थ कहा गया है। इसको सुनने से पापों का ढेर भी नष्टप्रायः हो जाता है।।१८-१९।।

पुरा काश्मीरदेशे तु ब्राह्मणौ सम्बभूवतुः। हरिमेधसुमेधाख्यौविष्णुभक्तिपरायणौ॥२०॥
सर्वभूतदयायुक्तौ सर्वतत्त्वार्थवेदिनौ। कदाचित्तौ द्विजवरौ तीर्थयात्रापरायणौ॥२१॥
गच्छन्तावेकतो विप्रौ कान्तारे श्रमविह्वलौ। तुलसीकाननं तत्र ददर्शतुररिन्दमौ॥२२॥

तयोः समेधास्तद्दृष्ट्वा तुलसीकाननं महत्।
प्रदक्षिणीकृत्यतदा ववन्दे भक्तिसंयुतः॥२३॥

दृष्ट्वैतद्धरिमेधास्तु उवाच परया मुदा। ज्ञातुं तुलस्या माहात्म्यं तत्फलञ्चपुनः पुनः॥२४॥

पूर्वकाल में काश्मीर देश में विष्णुभक्ति तत्पर सर्वतत्वार्थविद् सर्वभूतसमूह के प्रति दयार्द्र चित्त वाले हरिमेधा तथा सुमेधा नामक दो ब्राह्मण रहते थे। एक बार वे दोनों ब्राह्मणप्रवर तीर्थयात्रापरायण होकर एक मार्ग पर चले जा रहे थे। वे मार्गश्रम से विह्वल हो गये। तभी इन ब्राह्मणद्वय ने मार्ग में एक तुलसी कानन देखा। सुमेधा ने इस तुलसी कानन को देखकर सश्रद्ध होकर भक्ति के साथ उसे प्रणाम किया तथा प्रदक्षिणा किया। यह देखकर हर्षित होकर हरिमेधा कहने लगे कि मुझे तुलसी माहात्म्य तथा फल जानने की इच्छा हो रही है।।२०-२४।।

हरिमेधा उवाच

किमर्थं विप्रः! देवेषु तीर्थेषु च व्रतेषु च। स्थितेषु विप्रमुख्येषु प्रणामं कृतवानसि॥२५॥

हरिमेधा कहते हैं—हे विप्र! श्रेष्ठ देवता, तीर्थ तथा व्रतावस्थित ब्राह्मणों के रहते तुम तुलसी कानन को क्यों प्रणाम कर रहे हो?।।२५।।

सुमेधा उवाच

श्रृणु विप्र महाभाग! साधु वाक्यमुदीरितम्। आतपोबाधतेह्यावांगत्वैतद्वटसन्निधौ॥२६॥
तस्यच्छायां समाश्रित्य वक्ष्यामि ते यथार्थतः। एवमुक्तः सुमेधास्तु हरिमेधेन संयुतः॥२७॥
वटं जगाम धर्मज्ञो महत्कोटरसंयुतम्। तत्र विश्राम्य विप्रोऽसौ हरिमेधमुवाच ह॥२८॥
श्रूयतां विप्रशार्दूल! तुलस्यास्तूत्तमां कथाम्। परमेशप्रसादेन सञ्जाताया पयोनिधौ॥२९॥
पुरा दुर्वाससः शापाद्गतैश्वर्ये पुरन्दरे। ममन्थुः क्षीरजलधिं ब्रह्माद्याः ससुराऽसुराः॥३०॥
ऐरावतः कल्पतरुश्चन्द्रमाः कमला तथा। उच्चैःश्रवा कौस्तुभश्चतथाधन्वन्तरिर्हरिः॥३१॥
हरीतक्यादयश्चाऽपि दिव्या ओषधयस्तथा।
अजायन्त द्विजश्रेष्ठ! लोकश्रेयोविधायकाः॥३२॥
ततः पीयूषकलशमजरामरदायकम्। कराभ्यां कलशं विष्णुर्धारयन्सुतलं परम्।
अवेक्ष्य मनसा सद्यः परां निर्वृतिमाप ह॥३३॥
तस्मिन्पीयूषकलश आनन्दास्त्रोदबिन्दवः। व्यपतंस्तुलसी सद्यः समजायतमण्डला॥३४॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता॥३५॥
तत्रोत्पन्नां तथा लक्ष्मीं तुलसीं च ददुर्हरेः। देवा ब्रह्मादयस्ते हि जगृहे भगवान्हरिः॥३६॥
ततोऽतीव प्रियकरा तुलसी जगताम्पतेः॥३७॥

सुमेधा कहते हैं—"हे द्विज! सुनो! तुमने अत्युत्तम प्रश्न किया है। हम दोनों ही इस समय धूप से क्लेश पा रहे हैं। अतः चलो! हम दोनों समीपस्थ वट की छाया में बैठें, जहां मैं तुमसे तुलसी महिमा का यथायथ वर्णन करूंगा।" यह कहने के पश्चात् सुमेधा तथा हरिमेधा महाकोटरयुक्त वटवृक्ष के पास गये। वहां विश्राम करके सुमेधा ने हरिमेधा से कहा—"हे द्विजप्रवर! जो परमेश्वर की कृपा से सागरतट पर उत्पन्न होकर स्थित है, उस तुलसी की उत्तम कथा को सुनो। पूर्वकाल में दुर्वासा के कोप के कारण इन्द्र ने श्री रहित होकर ब्रह्मा आदि समस्त देवगण के साथ तथा दानवगण के साथ क्षीरसागर का मन्थन किया। हे द्विजप्रवर! तब मथित सागर से समस्त लोकों के लिये मंगलप्रद ऐरावत, कल्पवृक्ष, चन्द्र, कमला, उच्चैश्रवा, अश्व, कौस्तुभमणि, विष्णुरूपी धन्वन्तरी तथा हरीतकी आदि दिव्य औषधि उत्पन्न हो गयी। तदनन्तर अजरत्व-अमरत्व दायक अमृत कलस उत्थित हो गया। विष्णु ने उसे अपने करद्वय में उठाया तथा उसे देखकर परम निर्वृति पाया। हे द्विज! विष्णु के प्रसन्न होने पर उस गंभीर पीयूष कलस में उनके आनन्दाश्रु के गिरने के कारण तत्क्षण मण्डलाकार तुलसी उत्पन्न हो गयी। तब ब्रह्मा आदि देवता तथा असुरगण ने उस सर्वलक्षण युक्त सर्वाभरणभूषित तुलसी तथा कमला देवी को विष्णु के हाथों में अर्पित किया। भगवान् हरि ने भी उनको ग्रहण कर लिया।।२६-३७।।

सा तु देवगणैः सर्वैर्विष्णुवत्पूज्यते प्रिया। नारायणो जगत्त्रातातुलसीतस्यवल्लभा॥३८॥
तस्मात्तस्यानमस्कारो मया विप्र! कृतस्ततः। इत्येवं वदतस्तस्यसुमेधस्यमहात्मनः॥३९॥
आराददृश्यत महद्विमानं सूर्यवर्चसम्। तदानीं वटवृक्षस्तु पपात पुरतो मुने!॥४०॥

तथैव तस्माद्वृक्षाच्चपुरुषौद्वौविनिर्गतौ। द्योतयन्तौदिशःसर्वास्तेजसासूर्यसन्निभौ॥४१॥
प्रणामं चक्रतुस्तौ हि हरिमेधसुमेधयोः। हरिमेधसुमेधौ तौतौ दृष्ट्वा भयविह्वलौ॥४२॥
ऊचतुर्विस्मयाविष्टौ तावुभौ देवसन्निभौ॥४३॥

तब से देवगण ने तुलसी को विष्णुवत् पूजन किया। वह जगत्पति को अत्यन्त प्रिय हो गयीं। हे विप्र! नारायण समस्त जगत् के त्राणकर्त्ता हैं। तुलसी उनकी प्रिया है। इसीलिये मैं तुलसी को प्रणाम करता हूं। महात्मा सुमेधा के यह कहने पर पास में ही एक सूर्यवत् कान्तिवाला विमान दिखलाई पड़ा तथा वह वटवृक्ष तत्काल गिर गया। हे मुनिवर! तत्पश्चात् उस वटवृक्ष से सूर्य के समान दो दिव्य पुरुष अपने-अपने तेज से समस्त दिशाओं को समुद्भासित करके ब्राह्मण सुमेधा तथा हरिमेधा के पास आये तथा उनको प्रणाम किया। उनको देखकर सुमेधा तथा हरिमेधा भय से विह्वल होकर विस्मयपूर्वक उन दिव्य पुरुषद्वय से कहने लगे।।३८-४३।।

हरिमेधसुमेधसावूचतुः

युवांकौ देवसङ्काशौ भवन्तौ सर्वमङ्गलौ। मन्दारमालां तरुणांधारयन्तौतथाऽमरौ।
नमस्कार्यौ तथाऽऽवाभ्यां पूज्यौ च सुररूपिणौ॥४४॥
इत्युक्तौ ब्राह्मणाभ्यां तावूचतुर्वृक्षनिर्गतौ। युवामेव पिता माताआवयोश्चतथागुरुः।
बन्ध्वादयस्तथा चैव युवामेव न संशयः॥४५॥

हरिमेधा-सुमेधा कहते हैं—"आप दोनों देवकान्तियुक्त कौन हैं? आपको देखकर लगता है कि आप देवता हैं। आप देवरूप हैं। अतः आपको प्रणाम!" द्विजद्वय के यह कहने पर वटवृक्ष से निर्गत वे पुरुषद्वय कहने लगे—"आप लोग हमारे माता-पिता-गुरु तथा बान्धव आदि सब कुछ हैं। इसमें संशय नहीं है।" तदनन्तर उनमें से ज्येष्ठ पुरुष कहने लगा।।४४-४५।।

ज्येष्ठ उवाच

अहं तु देवलोकस्य आस्तीकोनाम नामतः॥४६॥
अप्सरोगणसम्वीतः कदाचिन्नन्दनं वनम्। क्रीडार्थमगमं चाऽद्रौ विषयासक्तचेतनः॥४७॥
रेभिरे देववनिता यथाकामं मया सह। मुक्तामल्लिकमाल्यानिनिपेतुस्तानियोषिताम्॥४८॥
तपतो रोमशस्यैव तद्दृष्ट्वा कुपितोमुनिः। योषितानांऽपराधोऽयंयासां वैपरतन्त्रता॥४९॥
अयमेव दुराचारः शापार्ह इति चाऽब्रवीत्। तवं ब्रह्मराक्षसो भूत्वा वटवृक्षेचरेतिमाम्॥५०॥
प्रसादितो मया सोऽथ विशापमपि दत्तवान्।
तुलसीपत्रमाहात्म्यं विष्णोर्नाम तथा द्विजात्॥५१॥
यदाश्रृणोषिसद्यस्त्वंविमुक्तिंयास्यसेपराम्। इतिशप्तस्तुमुनिनाचिरकालंसुदुःखितः॥५२॥
वसाम्यत्र वटे दैवाद्भवद्दर्शनतोध्रुवम्। मुक्तिर्जाता विप्रशापाद्द्वितीयस्य कथां श्रृणु॥५३॥
अयं मुनिवरः पूर्वं गुरुशुश्रूषणे रतः। गुरोराज्ञामनादृत्य ब्रह्मराक्षसतां गतः॥५४॥

युष्मत्प्रसादादधुना ब्रह्मशापाद्विमोचितः। तीर्थयात्राफलंचैवयुवाभ्यामिहसाधितम्।।५५।।
उत्तरोत्तरपुण्यानि वर्धन्ते च दिनेदिने। इत्युक्त्वा तौ मुनिवरौ प्रणम्यच पुनः पुनः।।५६।।
तावनुज्ञाप्य तौ धाम जग्मतुः परया मुदा। ततस्तौ तीर्थयात्रार्थं परमौ मुनिपुङ्गवौ।।५७।।
शंसन्तौ तुलसीं पुण्यां जग्मतुर्मुनिपुङ्गव!। एवंनारदमाहात्म्यंतुलस्याःकोऽनुवर्णयेत्।।५८।।
तस्मान्नारदमासेऽस्मिन्कार्त्तिकेहरितुष्टिदे। कर्तव्यातुलसीपूजानाऽत्रकार्याविचारणा।।५९।।
एवमङ्गव्रतान्येव प्रोक्तानि मुनिसत्तम!। उपाङ्गानि प्रवक्ष्यामिबालखिल्योदितानिच।।६०।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे तुलसीमाहात्म्यवर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः।।८।।

ज्येष्ठ पुरुष कहता है—"हम देवलोक वासी हैं। मेरा नाम आस्तीक है। मैं एक बार विषयासक्त होकर अप्सराओं से घिरकर पर्वतस्थ नन्दनकानन में क्रीड़ार्थ आया। तब देवस्त्रीगण ने मुझ पर मुक्ता एवं मल्लिका माला फेंक-फेंक कर मेरा अनेक बार आलिंगन भी किया। ऋषि लोमश वहां तपःश्चरण तत्पर थे। वे हमारा व्यवहार देखकर कुपित हो गये। उन्होंने कहा—"यह नारियों का अपराध नहीं है, क्योंकि वे तो सदा पराधीन रहती हैं। यह आस्तीक ही दुराचारी तथा शापयोग्य है।" लोमश ऋषि ने यह कहकर मुझे शाप दिया—"तुम ब्रह्मराक्षस होकर वटतरु में निवास करो।" तदनन्तर मैंने विविध प्रकार से विनय द्वारा ऋषि को प्रसन्न किया, तब उन्होंने शापमोक्षणकारी यह वचन कहा कि "जब तुम ब्राह्मण से तुलसी का माहात्म्य तथा विष्णुनाम श्रवण करोगे, तब तुम शापमुक्त होकर परमगति लाभ करोगे। मैं इस प्रकार से अभिशप्त होकर दीर्घकाल से यहां निवास कर रहा हूं। आज दैवयोग से आप लोगों का दर्शन लाभ करने से मैं मुक्त हो गया। यह तो मेरा प्रसंग है अब मेरे साथी इस द्वितीय पुरुष का वृत्तान्त सुनें। यह पूर्वकाल में एक श्रेष्ठ मुनि थे। ये सदा गुरुसेवा परायण थे। एक बार दैवात् गुरु का आदेश पालन न करने के कारण ब्रह्मराक्षस हो गये। इनको भी आपकी कृपा से ब्रह्मशाप से मुक्ति मिल गयी। आपको तो तीर्थयात्रा का फल यहीं मिल गया तथापि आपका पुण्य नित्य उत्तरोत्तर बढ़े।" तदनन्तर वे दोनों दिव्य पुरुष इन ब्राह्मणों को बारम्बार प्रणामोपरान्त प्रसन्न चित्त से स्वधाम चले गये। हे नारद! तुलसी के माहात्म्य को कौन कह सकता है? हे वत्स नारद! हरि को प्रसन्नता प्रदाता इस कार्त्तिक मास में बिना अन्य विचार किये तुलसी पूजन कर्त्तव्य रूप है। हे मुनिप्रवर! इस प्रकार विष्णु के अंगरूप सभी व्रतों को कहा। अब बालखिल्य मुनिगण कथित उपाङ्गरूप व्रतों को कहता हूं।।४६-६०।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

नवमोऽध्यायः

वत्सद्वादशी, यम त्रयोदशी, नरकचतुर्दशी, दीपावली कृत्य वर्णन, कौमोदिनी माहात्म्य वर्णन

बालखिल्या ऊचुः

कृष्णः प्रोवाचधर्मायद्वादशींवत्ससञ्ज्ञिताम्। गोधूलिकालसंयुक्ताद्वादशीवत्सपूजने॥१॥
वत्सपूजावटे चैव कर्तव्याप्रथमेऽहनि। सवत्सांतुल्यवर्णांचशालिनींगांपयस्विनीम्।
चन्दनादिभिरालिप्य पुष्पमालाभिर्चयेत्॥२॥
तद्दिने तैलपक्वं च स्थालिपक्वं युधिष्ठिर। गोक्षीरं गोघृतं चैवदधिक्षीरं चवर्जयेत्॥३॥
दिनान्ते सूर्यबिम्बार्धादुभयत्र घटीदलम्। ततो नीराजनंकार्व्यंनिरीक्षेच्चशुभाऽशुभम्॥४॥

बालखिल्यगण कहते हैं—कृष्ण ने धर्म से वत्सद्वादशी का वर्णन किया था। गोधूलि काल में जब द्वादशीयुक्त हो तब वत्सपूजन करें। प्रथम दिन वट तरु की वत्सरपूजा करनी चाहिये। तदनन्तर जिस गौ का शान्त स्वभाव हो तथा बछड़ा तथा गौ एक ही वर्ण के हों, उस गौ का पूजन चन्दनादि लिप्त करके तथा पुष्पमाला से करें। हे युधिष्ठिर! इस वत्सद्वादशी व्रत के दिन तेल में पका तथा हांडी में पका द्रव्य, गोदुग्ध, गोघृत, गोदधि तथा खीर का त्याग करना चाहिये। तत्पश्चात् दिन का अवसान होने पर अर्द्धस्तिमित सूर्यमण्डल के दो घटी पूर्व अथवा पश्चात् नीराजन करके शुभाशुभ वक्ष्यमाण क्रमानुसार निरीक्षण करना चाहिये।।१-४।।

नानादीपान्प्रकल्प्याऽऽदौ स्वर्णपात्रदिसंस्थितान्।
नीराजयेद्दीपपूर्वं निरीक्षेत शुभाऽशुभम्॥५॥
लापयित्वा सर्वदीपानुत्तराभिमुखान्न्यसेत्।
मुख्या दीपा नव प्रोक्ता अन्यानपि च कल्पयेत्॥६॥
ज्वाला चेद्दक्षिणासंस्था सतेजस्का शिखान्विता।
स्थिरा चेत्सौख्यदा प्रोक्ता विपरीता तु दुःखदा॥७॥
कार्त्तिके कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषुपञ्चसु। तिथिषूक्तःपूर्वरात्रे नृणां नीराजनाविधिः॥८॥
पक्षं संसूचयत्यादिर्द्वितीयोमासमेव च। तृतीय ऋतुमेवेह चतुर्थस्त्वयनं तथा।
वर्षं तु पञ्चमो दीपः शुभाऽशुभं विनिर्णयेत्॥९॥
सूर्यांशसम्भवा दीपा अन्धकारविनाशकाः।
त्रिकाले मां दीपयन्तु दिशन्तु च शुभाऽशुभम्॥१०॥
अभिमन्त्र्य च मन्त्रेण ततो नीराजयेत्क्रमात्॥११॥
आदौ देवांस्ततो विप्रान्हस्तिनश्च तुरङ्गमान्।
ज्येष्ठाञ्छेष्ठाघञ्जन्यांश्च मातृमुख्याश्च योषितः॥१२॥

ततो नीराजितान्दीपान्स्वस्वस्थानेषु विन्यसेत्।
रूक्षैर्लक्ष्मीविनाशः स्याच्छ्वेतैरन्नक्षयो भवेत्।
अतिरक्तेषु युद्धानि मृत्यु कृष्णाशिखेषु च॥१३॥

वक्ष्यमाण क्रम यह है—पहले स्वर्णपात्र में नाना दीप जलाकर तथा उन दीपों को उत्तराभिमुखीन करके दान करें तथा नीराजन करते-करते शुभाशुभ निरीक्षण करना चाहिये। इस दीपमाला में अनेक दीप रहते हैं किन्तु उनमें नौ को प्रधान कहा गया है। इन सब दीपों की ज्वाला यदि दक्षिण की ओर जाये तथा तेज युक्तस्थिर शिखाकार लक्षित होने लगे, तब उसे सुखद जाने। जब यह विपरीत जाने लगे तब यह दुःखद है। कार्त्तिकमासीय कृष्णा एकादशी से पांच दिन तक रात्रि के पूर्वार्द्ध में नीराजन करना चाहिये। पहले दीप द्वारा सूचित शुभाशुभ काल एक पक्ष में प्रकट होता है। द्वितीय दीप द्वारा सूचित शुभाशुभ एक मास में, तृतीय दीप का दो मास में, चतुर्थ दीप द्वारा सूचित शुभाशुभ छः मास में, पंचम दीप द्वारा सूचित शुभाशुभ एक वर्षकाल में विदित होता है। नीराजनार्थ—

"सूर्यांशसम्भवा दीपो अन्धकार विनाशकाः। त्रिकाले मां दीपयन्तु दिशन्तु च शुभाशुभम्।।"

इस मन्त्र से दीप को अभिमंत्रित करके यथाक्रमेण देवता, विप्र, हाथी तथा अश्वगण की तथा ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, कनिष्ठ तथा मातृस्थानीय स्त्रीगण का नीराजन करके तदनन्तर अपने-अपने स्थानों पर नीराजित दीपों को स्थापित करना चाहिये। दीप की रुक्ष शिखा हो तब सम्पत्ति क्षय, श्वेत शिखा हो तब अन्नविनाश, अतिरुक्ष होने पर युद्ध तथा कृष्णशिखा होने पर मृत्यु होती है।।५-१३।।

एकाङ्गीनामगोपाला तयैतच्चव्रतं कृतम्। धनधान्यसमायुक्ता जाता वर्षत्रयेण सा॥१४॥
तस्माद्गोपूजनंकार्यं द्वादश्यां कार्त्तिकस्यतु। एतद्गोव्रतमाहात्म्यंश्रुत्वा कुर्वन्तियेनराः॥१५॥
तेगोव्रतप्रभावेणनगोभिर्विच्युताभुवि। गोऽपराधःकृतोयःस्यात्सव्रताद्विलयम्व्रजेत्॥१६॥

पूर्व में एकांगी नामक गोपाङ्गना इस व्रत द्वारा तीन वर्ष में विपुल धन्यधान्य सम्पन्ना हो गयी थी। इस हेतु कार्त्तिक मासीय कृष्णाद्वादशी को गोपूजा अवश्य करनी चाहिये। जो लोग गोव्रत माहात्म्य का श्रवण करते हैं तथा इस व्रत का आचरण करते हैं, इस व्रत के प्रभाव से पृथिवी पर वे कदापि गौरहित नहीं रहते। यदि उन्होंने गौ के प्रति कोई अपराध किया हो वह अपराध भी तत्क्षण विलीन हो जाता है।।१४-१६।।

बालखिल्या ऊचुः

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यांमासिचाऽऽश्वयुजे तथा। दीपोत्सवसमीपे तु व्रतमेतत्समाचरेत्॥१७॥
प्रातः स्नात्वात्रयोदश्यांकृत्वावैदन्तधावनम्। त्रिरात्रनियमं कृत्वागोविन्देभक्तितत्परः॥१८॥
कार्यएतद्व्रतस्यान्ते तथागोवर्द्धनोत्सवः। त्रिमुहूर्ताऽधिकाग्राह्यापरवेधोनदोषभाक्॥१९॥
आश्विनस्याऽसितेपक्षे त्रयोदश्यांनिशामुखे। यमदीपं बलिंदद्यादपमृत्युर्विनश्यति॥२०॥
पुराहेमनकस्यैव बालकश्चाऽपमृत्युतः। मुक्तोऽभूदाश्विनेकृष्णत्रयोदश्यां दयावशात्॥२१॥

बालखिल्यगण कहते हैं—आश्विन कृष्ण चतुर्दशी के दिन जो दीपोत्सव किया जाता है, यह गोव्रत

वहीं करना चाहिये। पूर्वदिन त्रयोदशी के समय दन्तधावन तथा प्रातःस्नानोपरान्त गोविन्द के प्रति एकान्त भक्ति सम्पन्न होकर त्रिरात्र विधानानुसार यह व्रत करके अन्त में गोवर्द्धन उत्सव करें। अगले दिन यदि तीन मुहूर्त्तपर्यन्त त्रयोदशी हो, तब अगले दिन यह करे क्योंकि यहां पर परवेध दोषावह नहीं होता। अकालमृत्यु विनाशार्थ आश्विन कृष्णा त्रयोदशी के दिन सन्ध्याकाल में यम के उद्देश्य से दीप प्रदान करें। पूर्वकाल में एक बार हेमनक नामक व्यक्ति का पुत्र अश्विनीकृष्ण त्रयोदशी के दिन दीपदान द्वारा यम के अनुग्रह से अपमृत्यु का निवारण हो जाने से जीवनयुक्त हो गया था।।१७-२१।।

दूता ऊचुः

यथानजीवितादुभ्रश्येदीदृशेतु महोत्सवे। तथोपायं ब्रूहि यम! कृपां कृत्वाऽस्मदग्रतः॥२२॥

यमदूतगण कहते हैं—हे यमदेव! जो करने से व्यक्ति जीवन से रहित नहीं होता, कृपया अनुग्रहपूर्वक ऐसे महोत्सव का उपाय कहिये।।२२।।

यम उवाच

आश्विनस्याऽसितेपक्षेत्रयोदश्यांनिशामुखे। प्रतिवर्षंतु यो दद्याद्गृहद्वारेसुदीपकम्॥२३॥
मन्त्रेणाऽनेन भो दूताः समानेयःसनोत्सवे। प्राप्तेऽपमृत्यावपिचशासनं क्रियतां मम॥२४॥
मृत्युनापाशदण्डाभ्यांकालेनच मया सह। त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजःप्रीयतामिति॥२५॥
मन्त्रेणाऽनेनयोदीपं द्वारदेशे प्रयच्छति। उत्सवे चाऽपमृत्योश्च भयन्तस्य न जायते॥२६॥

यम कहते हैं—हे यमदूतों! आश्विन मास की कृष्णपक्षीय त्रयोदशी के दिन एक दीपदानोत्सव कहा गया है। जो मानव प्रत्येक वर्ष इस उत्सव सन्ध्या के समय—

"मृत्युना पाशदण्डाभ्यां कालेन च मया सह। त्रयोदश्यां दीपदानात् सूर्यजः प्रियतामिति।।"

जो इस मन्त्र से गृहद्वार पर उत्तम दीप प्रदान करता है, उसे यमभय नहीं होता। उस व्यक्ति की अपमृत्यु आने पर भी तुम लोग कदापि उसे न लाना। तुम सब मेरे इस आदेश का पालन करना।।२३-२६।।

बालखिल्या ऊचुः

पूर्वविद्धचतुर्दश्यामाश्विनस्य सितेतरे। पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात्प्रयत्नतः॥२७॥
अरुणोदयतोऽन्यत्ररिक्तायांस्नातियोनरः। तस्याऽब्दिकभवोधर्मोनश्यत्येवनसंशयः॥२८॥
तथाकृष्णचतुर्दश्यामाश्विनेऽर्कोदयेसुराः। यामिन्याःपश्चिमेयामेतैलाभ्यंङ्गोविशिष्यते॥२९॥
यदा चतुर्दशीनस्याद्द्विदिने चेद्विधूदये। दिनद्वये भवेच्चाऽपि तदा पूर्वैव गृह्यते॥३०॥
बलात्काराद्धठाद्वाऽपिशिष्टत्वान्नकरोतिचेत्। तैलाभ्यङ्गं चतुर्दश्यांरौरवं नरकं व्रजेत्॥३१॥
तैलेलक्ष्मीमीर्जलेगङ्गादीपावल्याश्चतुर्दशीम्।
प्रातःस्नानंहि यः कुर्याद्यमलोकंनपश्यति॥३२॥

बालखिल्यगण कहते हैं—आश्विन मासीय कृष्णपक्षीय पूर्वविद्धा चतुर्दशी काल में प्रत्यूष के समय यत्नपूर्वक स्नान करें। जो मानव एकमात्र अरुणोदय के अतिरिक्त अन्यकाल में चतुर्दशी के समय स्नान करता

उसके एक वर्ष में किये पापों का नाश हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। हे सुरगण! आश्विन कृष्णा चतुर्दशी सूर्योदय तथा रात्रि के शेष याम में (अंतिम चारदण्ड में) तैल आदि लगाना निषिद्ध हैं। जब चतुर्दशी में दो दिनों तक चन्द्रोदय काल न मिले, तब दो दिन यह होने पर पूर्व की ही तिथि ग्राह्य है। बलपूर्वक हो अथवा शिष्टता से हो, अथवा हठ से हो, चतुर्दशी के दिन तेल माशिल करने वाला रौरव नरगामी होता है। चतुर्दशी के दिन तैल लगाकर स्नान करने वाले का लक्ष्मी त्याग कर देती हैं। वे दीपान्विता चतुर्दशी के दिन गंगा जल में निवास करती हैं। अतः इस दिन प्रातः स्नान करने वाला मानव कदापि यमलोक नहीं देखता।।२७-३२।।

अपामार्गमधोतुम्वीं प्रपुन्नाडमथाऽपरम्। भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै॥३३॥
वारत्रयं त्रिवारञ्च पठित्वा मन्त्रमुत्तमम्॥३४॥
शीतलोष्ण समायुक्त सकण्टकदलान्वित!। हर पापमपामार्ग! भ्राम्यमाणः पुनः पुनः।
अपामार्गं प्रमुन्नाडं भ्रामयेच्छिरसोपरि॥३५॥

मनुष्य नरकभय निवारणार्थ चतुर्दशी के दिन स्नान काल में पहले अपमार्ग, तदनन्तर लौकी तदनन्तर प्रपुन्नाड़ को मस्तक पर घुमाये तब स्नान करें। घुमाते समय नौ बार "शीतलोष्ण समायुक्त" इत्यादि पढ़ें। जो मन्त्र मूल में अंकित है।।३३-३५।।

स्नात्वाऽऽर्द्रवाससादद्याद्दीपकंमृत्युपुत्रयोः। शुनकौ श्यामशवलौ भ्रातरौयमसेवका।
तुष्टौ स्यातां चतुर्दश्यां दीपदानेन मृत्युजौ॥३६॥
इष्टबन्धुजनैः सार्द्धमेतत्स्नानं समाचरेत्। स्नानाङ्गतर्पणं कृत्वा यमं सन्तर्पयेत्ततः॥३७॥
यमाय धर्मराजाय मृत्यवेचाऽन्तकायच। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥३८॥
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने। वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय ते नमः॥३९॥
चतुर्दशैतेमन्त्राःस्युःप्रत्येकञ्चनमोऽन्वितः। एकैकेनतिलैर्मिश्रान्दद्यात्त्रीनुदकाञ्जलीन्॥४०॥
यज्ञोपवीतिना कार्यं प्राचीनावीतिनाऽथवा।
देवत्वञ्च पितृत्वञ्च यमस्याऽस्ति द्विरूपता॥४१॥

स्नान के अनन्तर आर्द्र वस्त्र से ही मृत्युपुत्र श्याम-शबल को दीप प्रदान करें। उस समय का मन्त्र है—
"शुनकौ श्यामशबलौ भ्रातरौ यमसेवका। तुष्टौ स्यातां चतुर्दश्यां दीपदानेन मृत्युजौ।।"
यह स्नान इष्ट-बन्धु-बान्धवों के साथ करना चाहिये। तत्पश्चात् स्नानाङ्ग तर्पण करके यमाय इत्यादि चतुर्दश नाम मन्त्रों द्वारा यमतर्पण करें। यह चतुर्दशनाम श्लोक ३८ तथा ३९ मूल में अंकित हैं। वे नाम हैं— यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दघ्न, नील, परमेष्टि, वृकोदर, चित्र तथा चित्रगुप्त। इन प्रत्येक नाम के साथ नमः लगाये। एक-एक नाम से जलांजलि को तिल मिश्रित करके तीन-तीन जलांजलि देनी चाहिये। यमतर्पण में यज्ञोपवीती अथवा प्राचीनावीती, दोनों ही विहित हैं। इसका कारण है कि यम में देवत्व तथा पितृत्व दोनों ही हैं।।३६-४१।।

जीवत्पिताऽपि कुर्वीत तर्पणंयमभीष्मयोः। नरकायप्रदातव्योदीपः सम्पूज्यदेवताः॥४२॥
अत्रैव लक्ष्मीकामस्य विधिः स्नाने मयोच्यते। इषे भूतेच दर्शेचकार्त्तिके प्रथमे दिने॥४३॥

यदा स्नाति तदाऽभ्यङ्गस्नानं कुर्याद्विधूदये।
ऊर्ज्जशुक्लद्वितीयायां तिथौ च स्वातियुग्मगे॥४४॥
मानवो मङ्गलस्नायीनैवलक्ष्याावियुज्यते। दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावलिः स्मृता॥४५॥
इन्दुक्षयेऽपिसङ्क्रान्तौरवौपातेदिनक्षये। अत्राऽभ्यङ्गेन दोषाय प्रातःपापाऽपनुत्तये॥४६॥

जिसके पिता जीवित हैं, वह व्यक्ति यम तथा भीष्म तर्पण तथा देवताओं की पूजा करके नरकासुर के लिये दीप प्रदान करें। अब लक्ष्मीकामी व्यक्ति की स्नानविधि कहता हूं। लक्ष्मीकामी मानव आश्विन शुक्ला चतुर्दशी, अमावस्या तथा कार्तिक के प्रथम दिन तिल तैल लगाकर स्नान करें। स्वातीनक्षत्रयुता कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया को स्नान करना मनुष्यों के लिये मंगलप्रद है। इस दिन स्नान करने वाला मानव कभी भी लक्ष्मीरहित नहीं होता। इस दिन दीपनीराजन तथा दीपावली प्रदान करें। कार्त्तिक मास की अमावस्या, संक्रान्ति, रविवार तथा व्यतिपात योग में प्रातः स्नान में तैलाभ्यङ्ग दोषावह नहीं है, परन्तु इससे पाप नष्ट हो जाता है।।४२-४६।।

माषपत्रस्य शाकम्वै भुक्त्वा तस्मिन्दिनेनरः। प्रेताख्यायांचतुर्दश्यांसर्वपापैःप्रमुच्यते॥४७॥
इषासितचतुर्दश्यामिन्दुक्षयतिथावपि। दर्शादौ स्वातिसंयुक्ते तदा दीपावलिर्भवेत्॥४८॥
कुर्यात्सँल्लग्नमेतच्च दीपोत्सवदिनत्रयम्। महाराजोबलिः प्रोक्तस्तुष्टेन हरिणा तथा॥४९॥
वरं याचस्व भद्रन्ते यद्यन्मनसि वर्तते। इति विष्णुवचः श्रुत्वा बलिर्वचनमब्रवीत्॥५०॥
आत्मार्थं किं याचनीयं सर्वं दत्तंमयातथा। लोकार्थं याचयिष्यामि शक्तश्चेद्देहितच्चमे॥५१॥
मयाऽद्य ते धरा दत्ता वामनच्छद्मरूपिणे।
त्रिभिः पदैस्त्रिदिवसैःसा चाऽऽक्रान्ता यतस्त्वया॥५२॥
तस्माद्भूमितले राज्यमस्तु घस्त्रत्रये हरेः॥५३॥
मद्राज्ये ये दीपदानं भुवि कुर्वन्ति मानवाः। तेषांगृहे तवस्त्रीयं सदातिष्ठतुसुस्थिरा॥५४॥
मम राज्ये गृहे येषामन्धकारः पतिष्यति। लक्ष्मीसन्तानान्धकारः सदापततुतद्गृहे॥५५॥
चतुर्दश्याश्च ये दीपान्नरकाय ददन्ति च। तेषां पितृगणाः सर्वे नरके न वसन्ति च॥५६॥
बलिराज्यं समासाद्ययैर्नदीपावलिः कृता। तेषां गृहे कथं दीपाः प्रज्वलिष्यन्तिकेशव॥५७॥
बलिराज्येतुयेलोकाः शोकाऽनुत्साहकारिणः। तेषां गृहेसदाशोकःपतेदितिनसंशयः॥५८॥
चतुर्दशीत्रये राज्यं बलेरस्त्विति याचयेत्। पुरावामनरूपेण प्रार्थयित्वा धरामिमाम्॥५९॥
ददावतिथयेन्द्राय बलिं पातालवासिनम्। दत्तं दैत्यपतेरित्थं हरिणा तद्दिनत्रयम्।
तस्मान्महोत्सवं चाऽत्र सर्वथैव हि कारयेत्॥६०॥

प्रेतचतुर्दशी के दिन मानव माषपत्र शाक का भोजन करके सर्वपाप विनिर्मुक्त हो जाता है। आश्विनमासीय कृष्ण चतुर्दशी, अमावस्या, विशेषतः स्वाती नक्षत्र युत अमावस्या के दिन दीपमाला दान करना कर्त्तव्य है। इन तीन दिन दीपोत्सव करना चाहिये। वामनरूपी श्रीहरि ने बलि से प्रसन्न होकर उससे कहा था—"हे बलि! तुम्हारा मंगल हो। इच्छित वर मांगो।" विष्णु का वाक्य सुनकर बलि ने कहा—"मैं अपने लिये क्या कामना करूं?

मैंने तो अपना सब कुछ आपको प्रदान कर दिया। अब मैं त्रैलोक्य की हितकामनार्थ वर मांगता हूं। हे हरि! आप छद्मवामनरूपी होकर मेरे पास आये। मैंने आपको सम्पूर्ण पृथिवी अर्पित कर दिया। आपने भी तीन दिन में अपने तीन पग द्वारा त्रिलोक माप लिया। हे हरे! अब मुझे यह वर दीजिये कि पृथिवी पर मानव इन तीन दिन मेरा शासन माने। हे केशव! इन तीन दिन जो सब लोग पृथिवी पर दीपदान करेंगे उनके गृह में आप अपनी पत्नी लक्ष्मीदेवी के साथ स्थिर होकर निवास करिये। मेरे राज्य में (३ दिन) जिनके घर में अन्धकार रहेगा, अलक्ष्मी रूपी अन्धकार से उनका गृह विकृत हो जाये। चतुर्दशी के दिन जो नरकासुर के उद्देश्य से दीप प्रदान करता है, उसके पितृगण नरक में नहीं जायें। बलिराज्य में रहकर जो दीपश्रेणी दान नहीं करता, हे केशव! उनके गृह में कैसे प्रकाश रहेगा। बलिराज्यवासी लोगों में शोक तथा अनुत्साह करने वाले मनुष्य के गृह में सतत् शोक रहेगा। इसमें संशय नहीं है। हे भगवान्! भूतादि (प्राणीगण) पर इन चतुर्दशीत्रय के दिन मेरा अधिकार रहे। यही मेरा प्रार्थित वर है।" पूर्वकाल में वामन की प्रार्थना पर बलि ने उनको त्रैलोक्य प्रदान किया था। तब वामन ने इन्द्र को त्रैलोक्य प्रदान करके बलि को पाताल में भेजा तथा बलि की प्रार्थना के अनुसार पुनः बलि को इन तीन दिन पृथिवी पर राज्याधिकार दिया। इसलिये इन तीन दिन दीपमहोत्सव अवश्य करना चाहिये।।४७-६०।।

महारात्रिः समुत्पन्ना चतुर्दश्यांमुनीश्वराः। अतस्तदुत्सवः कार्यःशक्तिपूजापरायणैः।।६१।।
बलिराज्यंसमासाद्ययक्षगन्धर्वकिन्नराः। औषध्यश्च पिशाचाश्चमन्त्राश्च मणयस्तथा।।६२।।
सर्व एव प्रहृष्यन्ति नृत्यन्तिचनिशामुखे। तत्तन्मंत्राश्चसिद्ध्यन्तिबलिराज्येनसंशयः।।६३।।

हे मुनीश्वरों! इस चतुर्दशी के समय महारात्रि में देवी प्रादुर्भूत हुई हैं। अतः शक्तिपूजापरायण लोग इस दिन दीपोत्सव अवश्य करें। बलिराज्यस्थित यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, औषधि समूह, पिशाचगण, मन्त्र, मणियां आदि सभी चतुर्दशी की सन्ध्या के समय प्रसन्न अन्तःकरण से नृत्य करते हैं। बलिराज्य के इस दिन सभी मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है। यह निःसंशय है।।६१-६३।।

बलिराज्यं समासाद्य यथा लोकाः सुहर्षिताः। तद्दिनमध्ये तु लोकाःस्युर्हर्षिता भृशम्।।६४।।
तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः। उल्काहस्तानराःकुर्युःपितॄणांमार्गदर्शनम्।।६५।।
नरकस्थास्तुये प्रेतास्ते मार्गं तु व्रतात्सदा। पश्यन्त्येवनसन्देहःकार्योऽत्रमुनिपुङ्गवैः।।६६।।
आश्विनेमासिभूतादितिथयःकीर्तितास्त्रयः। दीपदानादिकार्येषुग्राह्यामध्याह्नकालिकाः।।६७।।
यदि स्युः सङ्गवादर्वागेताश्च तिथयस्त्रयः। दीपदानादिकार्येषु कर्तव्याः पूर्वसंयुताः।।६८।।

जैसे बलिराज्य में निवास करने वाले सभी सुखी होते हैं, पूर्वोक्त तीन दिन में सभी तद्रूप सुखी रहते हैं। कार्त्तिक चतुर्दशी तथा अमावस्या के प्रदोषकाल में उल्काहस्त (हाथों में दीपक लिये) मनुष्य पितृगण को मार्ग प्रदर्शित करते हैं। हे मुनिप्रवरगण! नरकस्थ पितृगण इस उल्कादान व्रत द्वारा पथ देखते हैं। इसमें संदेह नहीं है। आश्विन मास में जो तीन तिथियां कही गयी हैं, दीपदानादि कार्य उसके मध्याह्न काल तक ग्राह्य है। यदि संगव काल के पूर्व ही इन तिथित्रय की स्थिति हो तब दीपदानादि कार्य पूर्व संयुक्त तिथि पर ही करें।।६४-६८।।

ऋषय ऊचुः

कौमोदिन्यास्तु माहात्म्यं प्रष्टुमिच्छामहे द्विजाः।
तस्मिन्दिने तु किं भोज्यं कस्य पूजां तु कारयेत्॥६९॥
किमर्थं क्रियते सा तु तस्या का देवता भवेत्। किं चतत्रभवेद्देयंकिंनदेयं विशेषतः॥७०॥
प्रहर्षःकोऽत्रनिर्दिष्टः क्रीडातत्रप्रकीर्तिता। दीपावल्याःफलं सर्वं वदन्तु ऋषिसत्तमाः॥७१॥

ऋषिगण कहते हैं—हे द्विजगण! लक्ष्मी की महिमा जानने की हमारी अभिलाषा हो रही है। इन लक्ष्मीवास में क्या भोजन करें तथा किसकी पूजा करनी चाहिये? किसलिये इस क्रिया को अनुष्ठित करते हैं? इसका देवता कौन है? क्या दान देना चाहिये? किस दान का विशेष फल है? इसमें कौन सी क्रीड़ा करनी चाहिये? दीपावली का क्या फल है, यह सब कहिये।।६९-७१।।

बालखिल्या ऊचुः

ततःप्रभातसमयेत्वमायांतुमुनीश्वराः। स्नात्वादेवान्पितॄन्भक्त्यासम्पूज्याऽथप्रणम्यच॥७२॥
कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः। दिवातत्र न भोक्तव्यमृतेबालातुराज्जनात्॥७३॥
ततःप्रदोषसमयेपूजयेदिन्दिरांशुभाम्। कुर्यान्नानाविधैर्वस्त्रैःस्वच्छंलक्ष्म्याश्चमण्डपम्॥७४॥
नानापुण्यैःपल्लवैश्चचित्रैश्चाऽपिविचित्रितम्। तत्रसम्पूजयेल्लक्ष्मींदेवांश्चाऽपिप्रपूजयेत्॥७५॥
सम्पूज्यादेवनार्योऽपिबहुभिश्चोपचारकैः। पादसम्वाहनंकुर्याल्लक्ष्म्यादीनान्तुभक्तितः॥७६॥

बालखिल्यगण कहते हैं—हे मुनीश्वरगण! अमावस्या के दिन प्रभात स्नान, भक्तियुक्त होकर देव-पितृगण की पूजा, प्रणाम तथा दधिक्षीरादि द्वारा पार्वणश्राद्ध करें। दिन में भोजन न करें तथापि बालक तथा आतुर व्यक्ति भोजन कर सकते हैं। प्रदोषकाल में विविध शोभन पुष्प तथा पल्लव द्वारा अतीव विचित्र रूप से लक्ष्मी की पूजा करनी चाहिये तथा नाना वस्त्र एवं अलंकार द्वारा निर्मल रूप से उनकी वेशभूषा सज्जित करें। इस पूजा में देवता तथा देवनारीसमूह की भी नाना उपचारों द्वारा अर्चना करनी चाहिये। तदनन्तर भक्तिपूर्वक लक्ष्मी आदि पूजित देवदेवीगण का चरण संवाहन करना चाहिये।।७२-७६।।

अस्मिन्नहनि सर्वेऽपि विष्णुना मोचिताः पुरा।
बलिकारागृहाद्देवा लक्ष्मीश्चाऽपि विमोचिता॥७७॥
लक्ष्म्यासार्द्धंततोदेवाजग्मुःक्षीरोदधौपुनः। प्रसुप्ता बहुकालं ते सुखंतस्मान्मुनीश्वराः॥७८॥
रचनीयाः सूत्रगर्भाः पर्यङ्काश्च सुतूलिकाः दुग्धफेनोपमैर्वस्त्रैरास्तृताश्च यथादिशम्॥७९॥
स्थापयेत्तान्सुराँल्लक्ष्मींवेदघोषसमन्वितः। लक्ष्मीदैत्यभयान्मुक्तासुखंसुप्ताऽम्बुजोदरे॥८०॥
अतोऽत्रविधिवत्कार्यातुष्ट्यै तु सुखसुप्तिका। तदह्निपद्मशय्यांयःपद्मासौख्यविवृद्धये॥८१॥

पूर्वकाल में एक बार सभी देवी-देवता बलि के कारागृह में अवरुद्ध थे। विष्णु ने लक्ष्मी के साथ इस दिन उन सबको मुक्त किया था। देवता मुक्त होकर लक्ष्मी के साथ क्षीरसागर के निकट पहुंचे। तदनन्तर लक्ष्मी देवी ने दीर्घकाल के पश्चात् इस दिन सुखपूर्वक शयन किया। अतएव हे मुनीश्वरगण! इस दिन उपाधान के

साथ दुग्धफेन की तरह वस्त्रों से आवृत अनेक पर्यंक बनाये तथा उन पर वेदध्वनि के साथ देवताओं तथा लक्ष्मी को स्थापित करें। उस समय लक्ष्मी भी दैत्यभय से मुक्त होकर पद्मगर्भ में सुखपूर्वक शयन करने लगीं। अतएव इस दिन यथाविधि-लक्ष्मी के हितार्थ तथा उनकी प्रसन्नता हेतु सुखशयन के योग्य शय्यादान करना चाहिये। इस दिन व्यक्ति लक्ष्मी की प्रसन्नता हेतु पद्मशय्या बनायें।।७७-८१।।

कुर्यात्तस्य गृहं मुक्त्वा तत्पद्मा क्वाऽपि न व्रजेत्।
न कुर्वन्ति नरा इत्थं लक्ष्म्या ये सुखसुप्तिकाम्।।८२।।
धनचिन्ताविहीनास्ते कथंरात्रौस्वपन्तिहि। तस्मात्सर्वप्रयत्नेनलक्ष्मींसम्पूजयेन्नरः।।८३।।
सतुदारिद्र्यनिर्मुक्तःस्वजातौस्यात्प्रतिष्ठतः। जातिपत्रलवङ्गैलात्वक्कर्पूरसमन्वितम्।।८४।।
पाचयित्वा गव्यदुग्धं सितां दत्त्वा यथोचिताम्।
लड्डुकांस्तस्य कुर्वीत तांश्च लक्ष्म्यै समर्पयेत्।।८५।।
अन्यच्चतुर्विधंभक्ष्यं दद्याच्छ्रीःप्रीयतामिति।
अप्रबुद्धेहरौपूर्वं स्त्रीभिर्लक्ष्मींप्रबोधयेत्।।८६।।
प्रबोधसमये लक्ष्मींबोधयित्वाभुनक्तिया। पुमान्वा वत्सरं यावल्लक्ष्मीस्तंनैवमुञ्चति।।८७।।
अभयं प्राप्य विप्रेभ्यो विष्णुभीताः सुरद्विषः।
क्षीराब्धौ तुष्टुवुर्ज्ञात्वा सुप्तां पद्माश्रितां श्रियम्।।८८।।
त्वं ज्योतिः श्रीरवीन्द्वग्निविद्युत्सौवर्णतारकाः।
सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्दीपज्योतिः स्थिते नमः।।८९।।
यालक्ष्मीर्दिवसेपुण्येदीपावल्याञ्चभूतले। गवांगोष्ठे तु कार्त्तिक्यांसालक्ष्मीर्वरदामम।।९०।।

यह शय्या देवी को प्रसन्न करती है तथा देवी उसके गृह का कदापि त्याग नहीं करती। जो मनुष्य लक्ष्मी के लिये इस प्रकार की सुखशयनशय्या नहीं बनाता, वह धनरत्नहीन हो जाता है। ऐसा व्यक्ति कैसे सुखपूर्वक शयन कर सकेगा? अतएव मानव सर्वप्रयत्न से लक्ष्मीपूजन करे तथा यह करने से वह मनुष्य अपने समाज में सुप्रतिष्ठ हो जाता है। जावित्री का फल तथा पत्र, लौंग, इलायची का छिलका तथा कर्पूर मिलाये। उसमें यथोचित रूप से शर्करा मिलाकर गोदुग्ध में पाक करके उसका लड्डू बनाना चाहिये। यह लक्ष्मी को प्रदान करें तथा "लक्ष्मीदेवी प्रसन्न हों" इस प्रार्थना के साथ अन्य चतुर्विध भक्ष्य भी प्रदान करना चाहिये। विष्णु प्रबोधन एकादशी के पहले ही स्त्रियां लक्ष्मी को जगायें। यदि स्त्री किंवा पुरुष विष्णुप्रबोधन के पूर्व ही लक्ष्मी को प्रबोधित करके भोजन करते हैं, तब एक वर्ष तक लक्ष्मी उस व्यक्ति का गृह त्याग नहीं करतीं। विष्णु से भयभीत असुरगण भी विप्रों से अभयदान पाकर जब यह जान गये कि कमलादेवी क्षीरोद सागर के तीर पर कमलशय्या पर शयन कर रही हैं, तब वे वहां जाकर लक्ष्मी का स्तव करने लगे। हे द्विजगण! पूजा में मूलोक्त श्लोक ८९, तथा ९० पढ़ें जो "या लक्ष्मी" से "वरदामम" पर्यन्त है।।८२-९०।।

दीपदानंततःकुर्यात्प्रदोषेचतथोल्मुकम्। भ्रामयेत्स्वस्यशिरसिसर्वाऽरिष्टनिवारणम्।।९१।।

तदनन्तर प्रदोषकाल में दीपदानोपरान्त एक ज्वलन्त काष्ठ मस्तक पर घुमाकर समस्त अरिष्टों का शमन करें।।९१।।

दीपवृक्षास्तथा कार्याः शक्त्या देवगृहादिषु। चतुष्पथे श्मशानेव नदीपर्वतवेश्मसु॥९२॥
वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु चत्वरेषु गृहेषुच। वस्त्रैः पुष्पैः शोभितव्याराजमार्गस्य भूमयः॥९३॥
सर्वं पुर मलङ्कृत्य प्रदोषे तदनन्तरम्।
ब्राह्मणान्भोजयित्वाऽऽदौ सम्भोज्यचबुभूक्षितान्॥९४॥
अलङ्कृतेन भोक्तव्यं नववस्त्रोपशोभिना। ततोऽपराह्णसमये घोषयेन्नगरं नृपः॥९५॥
अथराज्यंबलेर्लोकायथेच्छंक्रीड्यतामिति। यथेच्छं क्रीड्यतांबालाइत्याज्ञाप्यनृपेणतु॥९६॥
तेभ्यो दद्यात्क्रीडनकं ततः पश्येच्छुभाशुभम्। बलिराज्ये प्रकर्तव्यंद्यन्मनसि वर्तते॥९७॥
जीवहिंसा सुरापानमगम्यागमनं तथा। चौर्यं विश्वासघातश्च पञ्चैतानि मुनीश्वराः!।
बलिराज्ये तु नरकद्वाराण्युक्तानि सन्त्यजेत्॥९८॥
ततोऽर्द्धरात्रसमये स्वयं राजा व्रजेत्पुरम्। अवलोकयितुं रम्यं पद्भ्यामेव शनैः शनैः।
बलिराज्यप्रमोदञ्च दृष्ट्वा स्वगृहमाव्रजेत्॥९९॥

तत्पश्चात् शक्ति के अनुसार देवगृहद्वार, चतुष्पथ, श्मशान, नदी, गृह, पर्वतालय, वृक्षमूल, गोष्ठ, चत्वर तथा गृह स्थान में आधारयुक्त दीपदान करें। राजपथस्थ स्थानों को वस्त्र तथा पुष्प द्वारा सजाये तथा समस्त पुर को अलंकृत करके तदनन्तर पहले ब्राह्मण भोजन कराकर क्षुधार्त्त लोगों को भोजन करायें। तदनन्तर दिव्य वस्त्र तथा अलंकार से भूषित होकर स्वयं भोजन करें। तत्पश्चात् अपराह्न के समय नृपति यह घोषणा करें कि "अब बलिराज्यवासी स्त्री तथा पुरुषगण यथेच्छ क्रीड़ा करें।" तत्पश्चात् राजा उनको यथोचित क्रीड़ासामग्री प्रदान करके शुभाशुभ संदर्शन करें। हे मुनीश्वरगण! नृपति यह भी आदेश प्रदान करें कि "बलिराज्यवासी मानवगण जीवहिंसा, सुरापान, अगम्यागमन, चौर्य, विश्वासघातकता रूप नरकद्वाररूप कार्यों को त्याग दें। क्रीड़ा आदि यथेच्छ रूप से करें।" तदनन्तर अर्द्धरात्रि के समय राजा स्वयं सभी रम्य क्रीड़ाओं का अवलोकन करने हेतु पैदल धीरे-धीरे पुर में भ्रमण करें। वह बलिराज्य का यह सब आनन्द देखकर पुनः अपने प्रासाद में लौट आये।।९२-९९।।

एवं गते निशीथे च जने निद्रार्द्धलोचने। एवं नगरनारीभिः शूर्पडिण्डिमवादनैः।
निष्कास्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहाऽङ्गणात्॥१००॥
दण्डैकरजनीयोगे दर्शःस्यात्तु परेऽहनि। तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिका॥१०१॥
ये वैष्णवाऽवैष्णवाश्चबलिराज्योत्सवंनराः। नकुर्वन्तिवृथातेषांधर्माःस्युर्नात्रसंशयः॥१०२॥
रात्रौजागणं कुर्यात्पुराणपठनादिभिः। द्यूतेन वा हरेरग्रे गीतया वा तथैव च॥१०३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादेवत्सद्वादशीयमत्रयोदशीनरकचतुर्दशी दीपावलीकृत्यवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

इस प्रकार से कीड़ासक्त पुरुषगण रात्रिकाल में जब निद्रा से ऊंघने लगें तब नरनारीगण शूर्प (सूप)

पीटें तथा डिंडिमवाद्य करके अलक्ष्मी को गृह तथा आंगन से निकाल बाहर करें। अगले दिन जब रात्रि के साथ एकदण्ड अमावस्या का योग हो, तब पूर्वदिन के बाद अगले दिन यह सुखरात्रि होती है। वैष्णव-अवैष्णव चाहे जो हो, यदि बलिराज्य में उत्सव नहीं मनाता, उसका धर्म वृथा है। इसमें संशय नहीं है। हरि के समक्ष पुराण पाठ, द्यूतक्रीड़ा तथा गायन द्वारा रात्रि जागरण करें।।१००-१०३।।

।।नवम अध्याय समाप्त।।

दशमोऽध्यायः

कार्त्तिक दीपावली, शुक्लप्रतिपदा माहात्म्य, मार्गपालीपूजन, कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदा माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

प्रतिपद्यथ चाऽभ्यङ्गं कृत्वानीराजनं ततः। सुवेषः सत्कथागीतैर्दानैश्च दिवसंनयेत्।।१।।
शङ्करस्तु पुरा द्यूतं ससर्ज सुमनोहरम्। कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेऽहनि सत्यवत्।।२।।
बलिराज्यदिनस्याऽपि माहात्म्यं शृणुतत्त्वतः। स्नातव्यंतिलतैले न नरैर्नारीभिरेवच।।३।।
यदि मोहान्न कुर्वीत स यातियमसादनम्। पुरा कृतयुगस्यादौ दानवेन्द्रोबलिर्महान्।।४।।
तेन दत्तावामनायाभूमिःस्वमस्तकान्विता। तदानीं भगवान्साक्षात्तुष्टोबलिमुवाचह।।५।।
कार्त्तिकेमासिशुक्लायांप्रतिपद्यांयतोभवान्। भूमिंमेदत्तवान्भक्त्यातेनतुष्टोऽस्मितेऽनघ।।६।।
वरंददामि ते राजन्नित्युक्त्वाऽदाद्वरं तदा। त्वन्नाम्नैवभवेद्राजन्कार्त्तिकीप्रतिपत्तिथिः।।७।।
एतस्यां ये करिष्यन्ति तैलस्नानादिकार्चनम्। तदक्षयं भवेद्राजन्नात्रकार्याविचारणा।।८।।
तदाप्रभृतिलोकेऽस्मिन्प्रसिद्धा प्रतिपत्तिथिः। प्रतिपत्पूर्वविद्धानो कर्तव्यातुकथञ्चन।।९।।
तत्राभ्यङ्गं न कुर्वीत अन्यथामृतिमाप्नुयात्। प्रतिपद्यां यदा दर्शो मुहूर्तप्रमितोभवेत्।।१०।।
माङ्गल्यंतद्दिनेचेत्स्याद्वित्तादितस्यनश्यति। बलेश्चप्रतिपद्दर्शाद्यदिविद्धं भविष्यति।।११।।
तस्यां यद्यथ चाऽऽर्त्तिक्यं नारी मोहात्करिष्यति।
नारीणां तत्र वैधव्यं प्रजानां मरणं ध्रुवम्।।१२।।

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर प्रतिपदा के दिन अभ्यङ्ग तथा नीराजन करके सुन्दर वेश धारण करें। सत्कथा, गीत तथा दानादि द्वारा दिन को व्यतीत करना चाहिये। पूर्वकाल में शंकर ने कार्त्तिक प्रतिपद के दिन मनोहर सत्ययुक्त द्यूतक्रीड़ा का सृजन किया था। अब बलिराज्य के इस द्यूतक्रीड़ा दिवस के माहात्म्य को यथायथ

श्रवण करो। उस दिन नरनारीगण तिल तैल लगाकर स्नान करें। यदि मोहवश कोई यह नहीं करता, तब उसे यमालय जाना पड़ता है। पूर्वकाल में सत्ययुग के प्रारंभ में बलवान बलि का प्रादुर्भाव हुआ था। बलि ने भूमि तथा अपना मस्तक वामनरूपी हरि को प्रदान किया था। तब साक्षात् भगवान् वामन ने बलि के प्रति तुष्ट होकर यह वर दिया—"हे अनघ! तुमने कार्त्तिक मास की शुक्ल प्रतिपदा के दिन भक्ति के साथ मुझे भूमिदान किया है। इसलिये मैं तुम्हारे प्रति सन्तुष्ट हो गया। हे राजन्! मैं तुमको वर प्रदान करूंगा।" हरि का वचन सुनकर बलि ने वर मांगा तब हरि ने वर देते हुये बलि से कहा—हे राजन्! तुम्हारे नाम से कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन जो तैल स्नान तथा अर्चना आदि करते हैं, वह अक्षय हो जायेगा। इसमें किसी विचार की आवश्यकता नहीं है।" हे नारद! तभी से त्रैलोक्य में यह प्रतिपदा प्रसिद्ध हो गई। इस प्रतिपदा तिथि को कभी की पूर्वविद्धाग्रहण न करें। अथवा पूर्वविद्धा प्रतिपदा के दिन तैलाभ्यङ्गादि न करें। जो इसके विपरीत कार्य करता है, वह मृत्युमुख में पतित हो जाता है। प्रतिपदा के दिन जब मुहूर्त्तमात्र अमावस्या का योग रहता है, तब इस प्रतिपदा में माङ्गल्य कार्य हेतु अनुष्ठान करने से वित्त नष्ट हो जाता है। अमावस्या विद्ध बलि प्रतिपदा तिथि में मोहवशात् यदि नारी आर्त्तव (ऋतुकाल) में कामक्रीड़ा करती है, तब उसे पुत्रनाश एवं वैधव्य मिलेगा, इसमें संशय नहीं है।।१-१२।।

अविद्धा प्रतिपच्चेत्स्यान्मुहूर्तमपरेऽहनि। उत्सवादिककृत्येषुसैव प्रोक्ता मनीषिभिः।।१३।।
प्रतिपत्स्वल्पमात्राऽपियदिनस्यात्परेऽहनि। पूर्वविद्धातदाकार्याकृतानोदोषभाग्भवेत्।।१४।।
तद्दिने गृहमध्ये तु कुर्यान्मूर्तिं तदाङ्गणे। गोमयेन च तत्राऽपि दधितत्पुरतः क्षिपेत्।।१५।।
आर्तिक्यं तत्र संस्थाप्यएवंकुर्याद्विधानतः। अभ्यङ्गं ये न कुर्वन्तितस्यांतुमुनिपुङ्गव!।।१६।।
न माङ्गल्यं भवेत्तेषां यावत्स्याद्वत्सरं ध्रुवम्। योयादृशेनरूपेणतस्यांतिष्ठेच्छुभेदिने।।१७।।
आवर्षं तद्भवेत्तस्य तस्मान्मङ्गलमाचरेत्।
यदीच्छेत्स्वशुभान्भोगान्भोक्तुं दिव्यान्मनोहरान्।।१८।।
कुरुदीपोत्सवं रम्यं त्रयोदश्यादिकेषु च। शङ्करश्च भवानी च क्रीडयाद्यूतमास्थिते।।१९।।

मनीषीगण का मत है कि यदि अविद्धा प्रतिपदा का अगले दिन मुहूर्त्त मात्र भी स्पर्श होता है, तब उपवासादि कार्य हेतु वह प्रशस्त है। यदि पर दिन (अगले दिन) अल्पमात्र भी प्रतिपदा न हो तब पूर्वविद्धा प्रतिपदा में कार्य करने से दोष नहीं होता। परन्तु इस दिन ही गृह में मूर्त्ति रखकर आंगन को गोबर से लिप्त करके उसके समक्ष दधि निक्षेप करें तथा वहां आर्त्तिक्य स्थापित करके यथाविधि पूजा आदि करें। हे मुनिपुङ्गव! इस प्रतिपदा के दिन जो अभ्यङ्ग नहीं लगाते पुनः प्रतिपदातिथि आने तक एक वर्ष यावत् उनका अमंगल होता है। इसमें सन्देह नहीं है। इस शुभ प्रतिपदा के दिन शुभ किंवा अशुभ जिस किसी कार्य में व्यक्ति लगा रहेगा, एक वत्सर पर्यन्त उसका शुभ-अशुभ फल उस कार्य के ही अनुरूप होगा। अतः इस दिन शुभ कार्य ही करना चाहिये। हे द्विज! यदि मनुष्य अपने लिये सुशोभन दिव्य मनोहर भोगों की कामना करता है तब त्रयोदशी आदि तिथियों को दीपोत्सव करें। पूर्वकाल में शंकर तथा पार्वती ने भी प्रतिपदा के दिन द्यूतक्रीड़ा किया था।।१३-१९।।

गौर्या जित्वा पुरा शम्भुर्नग्नो द्यूते विसर्जितः।
अतोऽर्थं शङ्करो दुःखी गौरी नित्यं सुखस्थिता।।२०।।

द्यूतं निषिद्धं सर्वत्र हित्वाप्रतिपदंबुधाः। प्रथमं विजयोयस्यतस्यसम्वत्सरं सुखम्।।२१।।
भवान्याऽभ्यर्थितालक्ष्मीर्धेनुरूपेणसंस्थिता। प्रातर्गोवर्द्धनःपूज्योद्यूतंरात्रौसमाचरेत्।।२२।।
भूषणीयास्तदा गावो वर्ज्या वहनदोहनात्।।२३।।

उस द्यूतक्रीड़ा में गौरी ने जय प्राप्त किया था तथा शंकर पराजित एवं विवस्त्र होकर वहां से चले गये। केवल यही नहीं, इस प्रतिपदा की जय-पराजय में गौरी ने सुख प्राप्त किया तथा शंकर विविध दुःखभागी हो गये। पण्डितों ने सर्वत्र द्यूतक्रीड़ा का निषेध किया है, तथापि प्रतिपदा के दिन वह निषिद्ध नहीं है। इस दिन जो व्यक्ति पहले विजयलाभ करता है, पूर्ण एक वर्ष तक वह सुखी रहता है। भवानी के आवाहन से रमा (लक्ष्मी) धेनुरूपेण अविर्भूता हो गयीं। अतः प्रातः गोपूजा के उपरान्त रात्रि में द्यूतक्रीड़ा करें। इस दिन गौओं को नाना भूषण से भूषित करें तथा वाहन का कार्य बैल आदि से लेना तथा गोदोहन करना वर्जित है।।२०-२३।।

गोवर्द्धन! धराऽऽधार! गोकुलत्राणकारक!।
विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय! गवां कोटिप्रदो भव।।२४।।
यालक्ष्मीर्लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता। घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु।।२५।।
अग्रतः सन्तु मे गावोगावो मे सन्तु पृष्ठतः। गावोमेहृदयेसन्तुगवांमध्ये वसाम्यहम्।।२६।।

तदनन्तर गोवर्द्धन पर्वत का पूजन मूलोक्त श्लोक २४ से २६ तक के श्लोक से करें। इति श्री गोवर्द्धन पूजा।।२४-२६।।

इति गोवर्द्धनपूजा

सद्भावेनैव सन्तोष्य देवान्सत्पुरुषान्नरान्। इतरेषामन्नपानैर्वाक्यदानेन पण्डितान्।।२७।।
वस्त्रैस्ताम्बूलधूपैश्च पुष्पकर्पूरकङ्कुमैः। भक्ष्यैरुच्चावचैर्भोज्यैरन्तः पुनरिवासिनः।।२८।।
ग्राम्यान्वृषभदानैश्च सामन्तान्नृपतिर्धनैः। पदातिजनसङ्घांश्च ग्रवेयैः कटकैः शुभैः।
स्वनामाङ्कैश्च तान्राजा तोषयेत्सज्जनान्पृथक्।।२९।।
यथार्थं तोषयित्वा तु ततो मल्लान्नरांस्तथा। वृषभान्महिषांश्चैव युध्यमानान्परैः सह।।३०।।
राज्ञस्तथैवयोधांश्चपदातीन्समलङ्कृतान्। मञ्चाऽऽरूढः स्वयंपश्येन्नटनर्तकचारणान्।।३१।।

गोवर्द्धनपूजा के उपरान्त यह समापन करके देवता तथा साधु पुरुषों के प्रति सद्भाव प्रदर्शन करें। अन्य लोगों को अन्न प्रदान करें। पण्डित का अच्छे वाक्यों से सम्मान करें। अन्तःपुर वासीगण को वस्त्र, ताम्बूल, धूप, पुष्प, कुंकुम, कर्पूर तथा अन्य भक्ष्य भोज्य प्रदान करें। ग्राम्यसामन्तगण को वृषभ प्रदान करें। राजाओं को धनदान, पदातिसंघ को अपना नाम अंकित ग्रीवाभूषण तथा शोभित कटक प्रदान करें तथा सन्तुष्ट करें। राजा इस प्रकार से सज्जनों को अलग-अलग यथायथ रूप से सन्तुष्ट करे। तत्पश्चात् परस्परतः कुश्ती लड़ रहे मल्ल, वृषभ, महिष तथा अन्यान्य योद्धाओं, राजाओं को तथा उनके पदातिगण को सन्तुष्ट करें। स्वयं मंच पर बैठकर नट-नर्तक तथा चारणों का अवलोकन करें।।२७-३१।।

युद्धापयेद्वासयेच्च गोमहिष्यादिकञ्च यत्। वत्सानाकर्षयेद्गोभिरुक्तिप्रत्युक्तिवादनात्।।३२।।

ततोऽपराह्णसमयेपूर्वस्यां दिशि सुव्रत!। मार्गपालीं प्रबध्नाति दुर्गस्तम्भेऽथ पादपे॥३३॥
कुशकाशमयींदिव्यांलम्बकैर्बहुभिःप्रिये। वाक्षयित्वागजानश्वान्मार्गपाल्यास्तलेनयेत्।
गावो वृषांश्च महिषान्महिषीर्घण्टकोत्कटान्।
कृतहोमैर्द्विजेन्द्रैस्तु बध्नीयान्मार्गपालिकाम्॥३४॥
नमस्कारं ततः कुर्यान्मन्त्रेणानेनसुव्रत!। मार्गपालि! नमस्तुभ्यं सर्वलोकसुखप्रदे!॥३५॥
तले तव सुखेनाश्वा गजा गावश्च सन्तु मे॥३६॥
मार्गपालीतले पुत्र! यान्ति गावो महावृषाः।
राजानो राजपुत्राश्च ब्राहमणाश्च विशेषतः॥३७॥
मार्गपालीं समुल्लङ्घ्य नीरुजः सुखिनो हि ते। कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौदैत्यपतेर्बलेः॥३८॥
पूजां कुर्यात्ततः साक्षाद्भूमौ मण्डलके कृते। बलिमालिख्यदैत्येन्द्रंवर्णकैःपञ्चरङ्गकैः॥३९॥
सर्वाभरणसम्पूर्णं विन्ध्यावलिसमन्वितम्। कूष्माण्डमयजम्भोरुमधुदानवसम्वृतम्॥४०॥
सम्पूर्णं कृष्टवदनं किरीटोत्कटकुण्डलम्। द्विभुजं दैत्यराजानं कारयित्वा स्वकेपुनः॥४१॥
गृहस्यमध्येशालायांविशालायांततोऽर्वयेत्। मातृभ्रातृजनैःसार्द्धंसन्तुष्टोबन्धुभिःसह॥४२॥

तदनन्तर गौ-महिषगण को लाकर युद्धभूमि में खड़ा करें। पशुनायकगण उनके बछड़ों को दल से बाहर करके इन सब गौ-महिषों का युद्ध करायें। तदनन्तर अपराह्नकाल में पूर्वदिक् स्थित दुर्गस्तम्भ में तथा मनोहर महीरुह में कुशकाशमयी दिव्य सुदीर्घ मार्गपाली बांधे। हे सुव्रत! होम करने वाले द्विजगण ही मार्गपाली बांधे। हे सुव्रत! तदनन्तर गज-अश्व-गौ-वृष-महिष तथा बृहत् कुंभों को इस मार्गपाली के नीचे लायें तथा "मार्गपालि नमस्तुभ्यं सर्वलोक सुखप्रदे। तले तव सुखेनाश्वा गजा गावश्च सन्तु मे" इस मन्त्र से मार्ग पाली को प्रणाम करें। हे पुत्र! गो, महावृष, राजा, राजकुमार, ब्राह्मणगण मार्गपाली के नीचे जाये। वे मार्गपाली का लंघन करके निरोग तथा सुखी रहते हैं। यह सब कार्य सम्पन्न करके रात्रि में दैत्यपति बलि की पूजा करें। द्विजप्रवरगण पञ्चवर्ण से भूमि पर मण्डलांकन करके उसमें साक्षात् बलि की मूर्त्ति का अंकन करें। यह मूर्त्ति अलंकारों से भूषित हो तथा साथ में बलिपत्नी विन्ध्यावलि का भी अंकन रहे। कूष्माण्ड, भय, जम्भ, उरु तथा मधु नामक दानव बलि की मूर्त्ति को घेरे हों। मूर्त्ति प्रसन्नवदन, कुण्डलयुक्त कर्णवाली किरीट भूषित मस्तक युक्त हों। यह बलि की मूर्त्ति दो बाहुवाली रहे। इस बलिराज की प्रतिमा को गृहशाला में अथवा बाहर स्थापित करके माता, भ्राता, बन्धुओं के साथ प्रसन्न मन से पूजा करनी चाहिये।।३२-४२।।

कमलैः कुमुदैः पुष्पैः कह्लारैरक्तकोत्पलैः। गन्धपुष्पान्ननैवेद्यैःसक्षीरैगुडपायसैः॥४३॥
मद्यमांससुरालेह्यचोष्यभक्ष्योपहारकैः। मन्त्रेणाऽनेन राजेन्द्रः समन्त्री सपुरोहितः।
पूजां करिष्यते यो वै सौख्यं स्यात्तस्य वत्सरम्॥४४॥
बलिराज! नमस्तुभ्यं विरोचनसुत! प्रभो!। भविष्येन्द्र! सुराराते! पूजेयंप्रतिगृह्यताम्॥४५॥
एवम्पूजाविधानेन रात्रौ जागरणं ततः। कारयेद्वै क्षणं रात्रौ नटनृत्यकथानकैः॥४६॥

लोकश्चाऽपि गृहस्याऽन्ते सपर्या शुक्लतन्दुलैः।
संस्थाप्य बलिराजानं फलैः पुष्पैः प्रपूजयेत्॥४७॥

जो राजागण मन्त्री तथा पुरोहित के साथ चन्दन, कमल, कुमुद, कल्हार तथा रक्तोत्पल पुष्प से, अन्न-नैवेद्य, क्षीरयुक्त गुड़-पायस द्वारा मद्य, मांस प्रभृति लेह्य द्रव्यों से तथा चोष्य एवं भक्ष्य उपहार से बलिराज की पूजा करते हैं, उनको एकवर्ष पर्यन्त विपुल सुख मिलता है। पूजा मन्त्र मूलोक्त श्लोक ४५ पढ़कर पूजा करें। तदनन्तर राजा द्वारा इस विधानानुसार पूजा में समाहित होने पर अन्य लोग रात्रि जागरण करें। तदनन्तर इस विधान के अनुसार पूजा सम्पन्न करें। अन्यान्य लोग रात्रि जागरण करें। रात्रि में कुछ समय तक नट, नृत्य तथा अन्य विविध विषयों के कथनोपकथन सुनकर रात्रि व्यतीत करें। तब गृह में शय्या के ऊपर श्वेत तण्डुल से बलि मूर्त्ति बनाकर फल-पुष्प द्वारा पुनः पूजा करनी चाहिये।।४३-४७।।

बलिमुद्दिश्य वै तत्रकार्यं सर्वञ्च सुव्रत!। यानि यान्यक्षयाण्याहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः॥४८॥
यदत्र दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु। तदक्षयं भवेत्सर्वंविष्णोःप्रीतिकरंशुभम्॥४९॥
रात्रौ ये नकरिष्यन्ति तव पूजां बले नराः। तेषांचश्रोत्रियोधर्मःसर्वस्त्वामुपतिष्ठतु॥५०॥
विष्णुना च स्वयं वत्स! तुष्टेन बलये पुनः। उपकारकरं दत्तमसुराणां महोत्सवम्॥५१॥
एकमेवमहोरात्रं वर्षेवर्षे च कार्त्तिके। दत्तं दानवराजस्य आदर्शमिव भूतले॥५२॥

हे सुव्रत! तत्वदर्शी मुनिगण कहते हैं—बलि के उद्देश्य से इस दिन जो सब कार्य अनुष्ठित किया जाता है, वह सब अक्षय हो जाता है। इस दिन अल्प अथवा अधिक, जो कुछ दान दिया जाता है, वह सब अक्षय, विष्णु को प्रीति देने वाला तथा शुभ होता है। हे वत्स! पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने स्वयं बलि के प्रति प्रसन्न होकर कहा था—"हे वत्स! जो विप्रगण कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन रात्रि में तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे, उनका समस्त श्रोत्रियधर्म तुम्हारा आश्रय ग्रहण करेगा।" विष्णु ने बलि के प्रति प्रसन्न होकर दैत्यों के लिये महा उपकार करने वाला यह महोत्सव निश्चित किया था। प्रतिवर्ष कार्त्तिक प्रतिपदा के दिन अहोरात्र इस व्रतानुष्ठान को करना चाहिये। बलि के प्रति भगवान् द्वारा जो यह वर रूपी कृपा की गयी है, यह भूतल पर आदर्श रूप है। इसमें संदेह नहीं है।।४८-५२।।

यः करोति नृपो राज्येतस्यव्याधिभयंकुतः। सुभिक्षं क्षेममारोग्यंतस्यसम्पदनुत्तमा॥५३॥
नीरुजश्च जनाः सर्वे सर्वोपद्रववर्जिताः॥५४॥
कौमुदी क्रियते यस्माद्भावं कर्तुं महीतले। यो यादृशेनभावेनतिष्ठत्यस्यां च सुव्रत!।
हर्षदुःखादिभावेन तस्य वर्षं प्रयाति हि॥५५॥
रुदिते रोदितं वर्षं प्रहृष्टे तु प्रहर्षितम्। भुक्तौभोग्यंभवेद्वर्षंस्वस्थे स्वस्थं भविष्यति॥५६॥
वैष्णवी दानवी चेयं तिथिः प्रोक्ता च कार्त्तिके॥५७॥
दीपोत्सवं जनितसर्वजनप्रमोदं कुर्वन्ति ये शुभतया बलिराजपूजाम्।
दानोपभोगसुखबुद्धिमतां कुलानां हर्षं प्रयाति सकलं प्रमुदा च वर्षम्॥५८॥

जो राजा अपने राज्य में दीपोत्सव करके पृथिवी को ज्योत्स्नामय करता है, उस राज्य में व्याधिभय कैसे

होगा? वहां सदा सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्य, अत्युत्तम सम्पत्ति विद्यमान रहती है तथा वहां प्रजाजन निरोग एवं सर्वव्याधि रहित हो जाते हैं। हे सुव्रत नारद! जो मानव इस प्रतिपदा के दिन हर्ष-दुःख आदि जिस किसी भाव में रहते हैं, उनको उस वर्ष पर्यन्त उसी भाव में व्यतीत करना पड़ता है। जो इस दिन रुदन करता है, वह समग्र वर्ष पर्यन्त रोदन करेगा। जो हर्षित अवस्था में रहेगा, वह प्रसन्न रहेगा। जो भोजन करके तृप्त तथा स्वस्थ रहेगा, वह वर्ष पर्यन्त स्वस्थ रहेगा। कार्त्तिक मास की इस तिथि को वैष्णवी दानवी तिथि कहा गया है। इस दिन दीपोत्सव द्वारा सर्वविध आनन्द लाभ होता है। जो शुभ चाहने वाले व्यक्ति इस उत्सव का अनुष्ठान करते हैं, वे बुद्धिमान लोग नाना भोगों से मुदित रहते हैं। उनका समस्त कुल उस वर्ष प्रमुदित रहता है।।५३-५८।।

बलिपूजां विधायैवं पश्चाद्गोक्रीडनं चरेत्।।५९।।
गवां क्रीडादिनेयत्ररात्रौदृश्येतचन्द्रमाः। सोमोराजापशून्हन्तिसुरभीपूज्यकांस्तथा।।६०।।
प्रतिपद्दर्शसंयोगे क्रीडनं तु गवाम्मतम्। परविद्धासु यः कुर्यात्पुत्रदारधनक्षयः।।६१।।

इस प्रकार से राजा बलि के पूजनोपरान्त गो क्रीड़ा को करना चाहिये। गो क्रीडा के दिन रात में चन्द्रदर्शन होने पर सोमराजा पशु तथा गौ पूजक का नाश करते हैं। (उस दिन चन्द्रमा न देखें)। इसलिये जब अमावस्या युक्त प्रतिपदा हो, तभी गो क्रीडा का आयोजन करें। जो मानव परविद्धा प्रतिपदा काल में गो क्रीड़ा का आचरण करता है उसके पुत्र-पत्नी का तथा धन का क्षय होता है।।५९-६१।।

अलङ्कार्यास्तदागावो गोग्रासादिभिरर्चिताः। गीतवादित्रनिर्घोषैर्नयेन्नगरबाह्यतः।
आनीय च ततः पश्चात्कुर्यान्नीराजनाविधिम्।।६२।।
अथ चेत्प्रतिपत्स्वल्पा नारी नीराजनं चरेत्।
द्वितीयायां ततः कुर्यात्सायं मङ्गलमालिकाः।।६३।।
एवं नीराजनं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते। प्रतिपत्पूर्वविद्धैव यष्टिकाकर्षणे भवेत्।।६४।।
कुशकाशमयीं कुर्याद्यष्टिकां सुदृढां नवाम्। देवद्वारे नृपद्वारेऽथवाऽऽनेया चतुष्पथे।।६५।।
तामेकतो राजपुत्रा हीनवर्णास्तथैकतः। गृहीत्वा कर्षयेयुस्ते यथासारंमुहुर्मुहुः।।६६।।
समसङ्ख्याद्वयोःकार्यासर्वेऽपिबलवत्तराः। जयोऽत्रहीनजातीनांजयोराज्ञस्तुवत्सरम्।।६७।।
उभयोः पृष्ठतः कार्या रेखातत्कर्षकोपरि। रेखान्ते यो नयेत्तस्यजयोभवतिनाऽन्यथा।।६८।।
जयचिह्नमिदं राजा निदधीत प्रयत्नतः।।६९।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे कार्त्तिकशुक्लप्रतिपन्माहात्म्य वर्णनं नाम दशमोऽध्यायः।।१०।।

गो क्रीड़ार्थ गोगण को अलंकृत करे तथा गोग्रास आदि से उनकी पूजा करके विविध गीत तथा वाद्यघोष के साथ उनको नगर से बाहर लाकर नीराजना करनी चाहिये। यदि इस दिन प्रतिपदा अत्यल्प काल तक रहे, तब उस दिन मात्र नीराजन करके द्वितीया में सायंकाल के समय मंगलमालिकादि क्रिया सम्पन्न करनी चाहिये।

इस विधान से की गई नीराजन क्रिया से सभी पापों से मुक्ति मिलती है। यष्टिकार्षण में पूर्वविद्धा प्रतिपदा तिथि ही ग्राह्य है। यह यष्टिका नव कुश-काश द्वारा मजबूती से बनाकर देवद्वार, नृपद्वार किंवा नृपद्वार अथवा चतुष्पथ पर रखें। उसके एक ओर राजकुमार तथा दूसरी ओर हीन जाति के लोग पकड़ें। यष्टिका की सारवत्ता को देखकर एक ओर राजकुमारों तथा दूसरी ओर हीन जाति वालों की संख्या समान हो। सभी तुल्यबल हों। वे दोनों प्रकार के लोग उसे अपनी-अपनी ओर खींचें। दोनों दल के पीछे एक रेखा खींचनी चाहिये। जो यष्टिका खींचते हुये यह रेखा पार कर जाये, इस यष्टिकाकर्षण में वही विजयी माना जायेगा। राजा स्वयं पर्यवेक्षण करें। यष्टिकाकर्षण में राजकुमार वाले दल अथवा हीनजाति दल की जय-पराजय द्वारा ही एक वर्ष पर्यन्त के जय-पराजय की सूचना मिलेगी।।६२-६९।।

।।दशम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकादशोऽध्यायः

यमद्वितीया माहात्म्य, भगिनीगृह भोजन महत्व वर्णन

नारद उवाच

भगवन्प्रष्टुमिच्छामि त्वामहं विनयान्वितः। तद्व्रतं ब्रूहिमेमर्त्योमृत्युंयेननपश्यति।।१।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे भगवान्! मैं विनयावनत होकर जिज्ञासा करता हूं कि किस व्रत का आचरण करने पर मानव यम का दर्शन नहीं करता, वह कहिये।।१।।

ब्रह्मोवाच

यदि पृच्छसिविप्रेन्द्र! व्रतनामुत्तमं व्रतम्। व्रतं यमद्वितीयाख्यंशृणुत्वंमृत्युनाशनम्।।२।।
कार्त्तिके मासि शुक्लायांद्वितीयायां मुनीश्वर!। कर्तव्यंतद्विधानेनसर्वमृत्युनिवारणम्।।३।।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय द्वितीयायांमुनीश्वर!। मनसाचिन्तयेदात्महितंनैवाऽहितंस्मरेत्।।४।।
प्रातः स्नानं ततः कुर्याद्दन्तधावनपूर्वकम्। ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः।।५।।
कृतनित्यक्रियो हृष्टः कुण्डलाङ्गदभूषितः। औदुम्बरतरुं गत्वाकृत्वामण्डलमुत्तमम्।।६।।
पद्ममष्टदलं कृत्वा तस्मिनौदुम्बरे शुभे। विधिं विष्णुं च रुद्रं चवरदाञ्चसरस्वतीम्।।७।।
वीणापुस्तकसंयुक्तां पूजयेत्स्वस्थमानसः। चन्दनागरुकस्तूरीकुङ्कुमैर्द्विजसत्तम!।।८।।
पुष्पैर्धूपैश्चनैवेद्यैर्नारिकेलफलादिभिः। ततोमृत्युविनाशार्थं सालङ्कारां पयस्विनीम्।।९।।
विप्राय वेदविदुषे गां दद्याच्च सवत्सकाम्। अपमृत्युविनाशार्थं संसारार्णवतारकाम्।।१०।।
हेविप्र! तेत्विमांसौम्यां धेनुं सम्प्रददाम्यहम्। इतिमन्त्रेणगांदद्याद्विप्रायब्रह्मवादिने।।११।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्रेन्द्र! यदि तुम्हारी इस प्रकार की व्रतकथा सुनने की इच्छा है, तब तुम व्रत प्रवर मृत्युनाशक यमद्वितीया नामक व्रत के सम्बन्ध में श्रवण करो। हे मुनीश्वर! कार्त्तिकमास की शुक्ल द्वितीया के दिन सर्वमृत्युनाशक इस व्रतविधान को करना चाहिये। हे मुनिप्रवर! द्वितीया के दिन ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर मन ही मन आत्महित की चिन्ता करें। कदापि अहित चिन्तन न करें। हे द्विजप्रवर! तदनन्तर प्रातः दन्तधावन, स्नान, शुक्लवस्त्र धारण, शुक्लमाला धारण, सन्ध्यादि क्रिया, कर्ण में कुण्डल धारण तथा हाथों में अंगद धारण करके गूलर के वृक्ष के पास जाये। प्रसन्नतापूर्वक उस वृक्ष के नीचे अष्टदल कमल समन्वित एक मण्डल का निर्माण करें। स्थिर मन से उस वृक्ष में चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम, पुष्प, धूप, नैवेद्य तथा नारिकेल आदि नाना उपचारों से विधि-विष्णु-रुद्र तथा वीणापुस्तकहस्ता, वरदा सरस्वती की पूजा करनी चाहिये। तब मृत्यु विनाशार्थ सालङ्कारा दुग्धवती सवत्सा धेनु वेदज्ञ ब्राह्मण को इस मन्त्र से प्रदान करें। "हे विप्र! मैं अपमृत्यु निवारणार्थ संसारार्णव से पार करने वाली सौम्या धेनु आपको प्रदान करता हूं।।२-११।।

तदलाभे तु विप्राय भक्त्या दद्यादुपानहौ। ततःपूजांसमाप्याऽथभक्तिमान् पुरुषोत्तमे।।१२।।

ज्ञातिश्रेष्ठान्वयोवृद्धान्सम्यग्भक्त्याऽभिवादयेत्।
नानाविधैः फलै रम्यैस्तर्प्ययेत्स्वजनानपि।।१३।।

व्यक्ति यदि गोदान न कर सके, तब ब्राह्मण को पादुका दान करना चाहिये। तदनन्तर एवंविध पूजा समापन करके पुरुषोत्तम प्रभु के प्रति भक्तिमान होकर वयोवृद्ध श्रेष्ठज्ञातिजन का तथा आत्मीयजन का भक्तिपूर्वक अभिवादन करके नाना रम्य फल से उनकी तृप्ति करनी चाहिये।।१२-१३।।

ततःसोदरसम्पन्ना भगिनीयाभवेन्मुने!। तस्यागृहंसमागत्यसम्यग्भक्त्याऽभिवादयेत्।।१४।।

भगिनि! सुभगे! भद्रे त्वदङ्घ्रिसरसीरुहम्।
श्रेयसेऽथ नमस्कर्तुमागतोऽस्मि तवाऽऽलयम्।।१५।।
इत्युक्त्वा भगिनीं तां तु विष्णुबुद्ध्याऽभिवादयेत्।
तदा तु भगिनी श्रुत्वा भ्रातुवर्चनमुत्तमम्।।१६।।

भगिन्या भ्रातरं वाक्यंवक्तव्यंप्रतिनारद!। अद्यभ्रातरहंजातात्वत्तोधन्याऽस्मिमङ्गला।।१७।।
भोक्तव्यं तेऽद्य मद्गेहेस्वायुषेकुलदीपक!। कार्त्तिके शुक्लयक्षस्य द्वितीयायां सहोदर।।१८।।
यमोयमुनयापूर्वं भोजितःस्वगृहेऽर्चितः। अस्मिन्दिनेयमेनाऽपिनारकीयाश्चमोचिताः।
अपि बद्धाः कर्मपाशैः स्वेच्छया पर्यटन्ति ते।।१९।।

स्वसुर्नरो वेश्मनि यो न भुङ्क्ते यमद्वितीयादिनमत्र लब्ध्वा।
तम्पापिनं प्राप्य वयं सुहृष्टाः प्रभक्षयामोऽद्य च भक्ष्यहीनाः।।२०।।

हे मुनिवर! तत्पश्चात् जिसकी बहन है, वह भगिनी के घर जाकर कहे—"हे भगिनी सुभगे! भद्रे! मैं श्रेयप्राप्ति हेतु तुम्हारे चरण कमलों में प्रणाम करता हूं। मैं इसीलिये आया हूं।" इस प्रार्थना के साथ भक्तिपूर्वक उसमें विष्णु बुद्धि रखते हुये प्रणाम करें। तब बहन भी अपने भाई का यह वाक्य सुनकर कहे—"हे भ्राता! आज मैं तुम्हारे द्वारा धन्य तथा मंगलयुक्त हो गयी। हे कुलोज्वल! आयु वृद्धि हेतु तुम मेरे गृह में भोजन करो। हे

सहोदर! पूर्वकाल में कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया के दिन यम की बहन यमुना ने भ्राता यम का पूजन करके उनको भोजन कराया था।" यम भी इस दिन नारकीय लोगों को मुक्ति देते हैं तथा जो कर्मपाश में बंधे हैं तथा यमलोक में हैं, वे भी इच्छानुरूप विचरण करते हैं। यम द्वितीया के दिन जो मनुष्य बहन के घर जाकर भोजन नहीं करते, भक्ष्यहीन पाप उस पापी को लक्ष्य करके कहते हैं—।।१४-२०।।

इति पापा रटन्तीह ब्रह्महत्यादयस्तथा। तस्माद्भ्रातर्मद्गृहेतु भोजनं कुरु कार्त्तिके।।२१।।
शुक्लायां तु द्वितीयायां विश्रुतायांजगत्त्रये। अस्यांनिजगृहेपुत्र! भुज्यते न बुधैरपि।।२२।।
इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा भगिनीं पूजयेद्व्रती। प्रहर्षात्सुमहाभाग! वस्त्रालंकारभूषणैः।।२३।।
अग्रजामभिवन्द्याऽथ आशिषञ्च प्रगृह्यच।
सर्वा भगिन्यःसन्तोष्या वस्त्रालङ्कारदानतः।।२४।।
अभावे स्वस्य तु स्वसुः पितृव्या स्वपितुः स्वसा।
तस्या गृहं समागत्य कुर्याद्भोजनमादरात्।।२५।।
एवं यः कुरुतेपुत्र! द्वितीयां यमनामिकाम्। अपमृत्युविनिर्मुक्तः पुत्रपौत्रौदिभिर्वृतः।।२६।।
इह भुक्त्वा तु विपुलान्भोगानन्यान्यथेप्सितान्।
अन्ते मोक्षमवाप्नोति नान्यथा मद्वचो भवेत्।।२७।।
व्रतान्येतानि सर्वाणि दानानि विविधानि च।
गृहस्थस्यैव युज्यन्ते तस्याद्गार्हस्थ्यमाश्रयेत्।।२८।।
कथांयमद्वितीयाया व्रतस्थःशृणुयान्नरः। तस्यसर्वाणिपापानिनश्यन्तीत्याहमाधवः।।२९।।

पाप कहते हैं—"हम इसका प्रसन्नचित्त होकर भोजन करेंगे।" हे भ्राता! ब्रह्महत्यादि पाप यह कहते घूमते हैं। अतएव अब कार्त्तिक प्रतिपदा के दिन मेरे घर भोजन करो। विशेषतः त्रैलोक्य प्रसिद्ध कार्त्तिक शुक्ला प्रतिपदा काल में ज्ञानीजन कदापि अपने गृह भोजन नहीं करते।" हे पुत्र नारद! बहन के यह कहने पर व्रतधारी भ्राता "यही हो" कहकर प्रसन्न अन्तःकरण से वस्त्र एवं अलंकारादि द्वारा बहन को प्रसन्न करें। यदि सहोदरा भगिनी का अभाव हो तब पितृव्यजा अथवा पितृष्वसा के कन्या गृह जाकर आदर के साथ भोजन करना चाहिये। हे पुत्र! जो मानव इस द्वितीया व्रत का निर्वहन करता है, वह तथा उसके पुत्र-पौत्रादि अपमृत्यु ग्रसित नहीं होते। वह मानव इहकाल में विविध इच्छित भोग पाकर अन्त में मोक्षलाभ करता है। तुम निश्चित जान लो कि मेरा वचन कदापि अन्यथा नहीं होगा। यह सब व्रत एवं विविध दानादि गृहस्थों को ही फलप्रद होता है। अतएव गृहस्थाश्रम का ही अवलम्बन लेना चाहिये। "यमद्वितीया की व्रतकथा को सुनने वाला सर्वपापरहित हो जाता है।" यह माधव का कथन है।।२१-२९।।

सूत उवाच

कार्त्तिके च द्वितीयायां पूर्वाह्णे यममर्चयेत्। भानुजायां नरः स्नात्वायमलोकंनपश्यति।।३०।।
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु द्वितीयायांतु शौनक!। यमो यमुनयापूर्वंभोजितःस्वगृहेऽर्चितः।।३१।।

द्वितीयायां महोत्सर्गो नारकीयाश्च तर्पिताः।
पापेभ्यो विप्रयुक्तास्ते मुक्ताः सर्वे निबन्धनात्॥३२॥
अत्राऽऽशिताश्च सन्तुष्टाः स्थिताः सर्वे यदृच्छया।
तेषां महोत्सवो वृत्तो यमराष्ट्रसुखावहः॥३३॥

अतो यमद्वितीयेयं त्रिषुलोकेषु विश्रुता। तस्मान्निजगृहे विप्र! न भोक्तव्यंततोबुधैः॥३४॥
स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं बलवर्द्धनम्। ऊर्जे शुक्लद्वितीयायांपूजितस्तर्पितो यः॥३५॥
महिषासनमारूढो दण्डमुद्गरभृत्प्रभुः। वेष्टितः किङ्करैर्हृष्टैस्तस्मै याम्यात्मने नमः॥३६॥
यैर्भगिन्यःसुवासिन्योवस्त्रदानादितोषिताः। न तेषां वत्सरंयावत्कलहोनरिपोर्भयम्॥३७॥

सूत जी कहते हैं—कार्त्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन यमुना में स्नान करके पूर्वाह्न में यम की पूजा करने वाला कदापि यमलोक का दर्शन नहीं करता। हे शौनक! कार्त्तिक शुक्ला प्रतिपदा के दिन यमुना अपने गृह में यम का पूजन तथा यम को भोजन प्रदान करती है। इस द्वितीया के दिन नरक के नारकीय लोग भी तृप्त हो जाते हैं। वे इस दिन निष्पाप होकर बन्धनरहित हो जाते हैं। वे निष्पाप भी हो जाते हैं। यथेच्छ आहार-विहार करके मनुष्य सन्तुष्ट होता है। उसके उत्सव में यमराज सुखावह हो जाते हैं। हे विप्र! इसीलिये यह यमद्वितीया त्रैलोक्य विख्यात है। इसलिये इस दिन बुद्धिमान व्यक्ति अपने घर में भोजन नहीं करें। वे स्नेहपूर्वक बहन के हाथों से बने बलवर्द्धनकारी अन्न का भोजन करें। कार्त्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन महिषासन दण्ड-मुद्गरधारी प्रभु यम हृष्ट किन्नरों से घिरे हुये भगिनी यमुना से पूजित होते हैं। उन याम्यात्मा को प्रणाम! जो व्यक्ति सुवासिनी भगिनीगण को वस्त्रदान द्वारा सन्तुष्ट करता है, उसे एक वर्ष पर्यन्त कलह तथा शत्रु का भय नहीं रहता।।३०-३७।।

धन्यं यशस्यमायुष्यं धर्मकामार्थसाधनम्। व्याख्यातं सकलं पुत्र! सरहस्यंमयाऽनघ॥३८॥
यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः सम्भोजितः प्रतितिथौ स्वसृसौहृदेन॥३९॥
तस्मात्स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति प्राप्नोति वित्तशुभसम्पदमुत्तमां सः॥४०॥

हे निष्पाप! यह व्रत धन्य है। यह यशप्रद, आयुवर्द्धक तथा धर्म-काम-अर्थ साधनरूप है। हे पुत्र! मैंने यह सब रहस्य के साथ तुमसे कह दिया। इस तिथि के दिन यमुना ने भगिनी स्नेहपूर्वक यमराज को भोजन कराया था। जो प्रतिवर्ष कार्त्तिक द्वितीया तिथि पर बहन के हाथ का भोजन करते हैं, उनको शुभ उत्तम वित्त सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।।३८-४०।।

सूत उवाच

विशेषश्चाऽत्रसम्प्रोक्तोबालखिल्यैर्महर्षिभिः। तदहंसम्प्रवक्ष्यामिशृणुध्वंमुनिसत्तमाः॥४१॥

सूत कहते हैं— हे मुनिप्रवरगण! बालखिल्य महर्षिगण ने यह विषय विशेषरूप से कहा था। अब मैं उसे विशेष रूप से कहता हूं। आपलोग सुनें।।४१।।

बालखिल्या ऊचुः

कार्त्तिकस्यु सिते पक्षे द्वितीयायमसञ्ज्ञिता। तत्राऽपराह्णे कर्तव्यंसर्वथैवयमार्चनम्॥४२॥

प्रत्यहं यमुनाऽऽगत्य यमं सम्प्रार्थयत्पुरा। भ्रातर्मम गृहे याहि भोजनार्थं गणावृतः॥४३॥
अद्य श्वो वा परश्वो वा प्रत्यहं वदते यमः। कार्यव्याकुलचित्तानामवकाशो न जायते।
तदैकदा यमुनया बलात्कारान्निमन्त्रितः।
स गतः कार्त्तिके मासि द्वितीयायां मुनीश्वराः!॥४४॥
नारकीयजनान्मुक्त्वा गणैःसहरवेःसुतः।
कृताऽऽतिथ्योयमुनयानानापाकाःकृताःखग! ॥४५॥
कृताभ्यङ्गो यमुनया तैलैर्गन्धमनोहरैः। उद्वर्तनं लापयित्वा स्नापितः सूर्यनन्दनः॥४६॥
ततोऽलङ्कारकं दत्तं नाना वस्त्राणि चन्दनम्।
माल्यानि च प्रदत्तानि मञ्चोपरि उपाविशत्॥४७॥

बालखिल्य ऋषिगण कहते हैं—कार्त्तिक शुक्लाद्वितीया को यमद्वितीया कहा गया है। इस दिन अपराह्न में यमपूजन अवश्य करना चाहिये। पूर्वकाल में यमुना प्रतिवर्ष यम के पास आकर प्रार्थना करती थीं—"हे भ्राता! अपने गणों से आवृत होकर भोजनार्थ मेरे गृह आइये।" कार्य व्याकुलता के कारण अवकाश न मिल सकने के कारण यम को यमुना के यहां जाने का समय नहीं मिलता था। इसलिये वे कल अथवा परसों आने के लिये कहते रहते। हे मुनीश्वरगण! एक बार यमुना ने यम को बलपूर्वक निमन्त्रित किया। तब यमराज कार्त्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन बहन के घर आये तथा भोजन किया। सूर्यपुत्र यम नारकीय (नरकवासी) लोगों को मुक्त करके किन्नरों के साथ बहन के घर आये तथा यमुना का आतिथ्य ग्रहण किया। यमुना ने उनको विविध पक्वान्न भोजन कराया था। यमुना ने सूर्यपुत्र यम को अपने गृह आये देखकर उनको अभ्यङ्ग, उबटन लगवाकर स्नान कराया तथा विविध वस्त्र, अलंकार, चन्दन तथा माला प्रदान किया। तब यम विविध आभूषणों से भूषित होकर मंच पर आसीन हो गये।।४२-४७।।

पक्वान्नानि विचित्राणि कृत्वासास्वर्णभाजने। यमायाऽभोजयद्देवीयमुनाप्रीतमानसा॥४८॥
भुक्त्वा यमोऽपि भगिनीमलङ्कारैःसमर्चयत्। नानावस्त्रैस्ततःप्राह वरम्वरय भामिनि।
इति तद्वचनं श्रुत्वा यमुना वाक्यमब्रवीत्॥४९॥

यमुना ने स्वर्ण पात्रों में विविध विचित्र पक्वान्न लाकर प्रसन्न मन से यम को प्रेमपूर्वक भोजन कराया। यम ने भी भोजनोपरान्त विविध वस्त्र अलंकारों द्वारा भगिनी यमुना की अर्चना करके कहा—"हे भगिनी! वर मांगो!" यमुना के यम का यह वाक्य सुनकर कहा।।४८-४९।।

यमुनोवाच

प्रतिवर्षं समागच्छ भोजनार्थं तु मद्गृहे॥५०॥
अद्यसर्वे मोचनीयाःपापिनोनरकाद्यम!। येऽद्यैवभगिनीहस्तात्करिष्यन्तिचभोजनम्।
तेषां सौख्यं प्रदेहि त्वमेतदेव वृणोम्यहम्॥५१॥

यमुना कहती हैं—हे यम! प्रतिवर्ष कार्त्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन भोजनार्थ मेरे गृह आकर उस दिन

नारकीय लोगों को नरक से मुक्त करो तथा उस दिन जो लोग बहन के हाथों का भोजन करें उनको सुख प्रदान करना, यही वर मांगती हूं।।५०-५१।।

यम उवाच

यमुनायां तु यः स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः।।५२।।
भुङ्क्ते च भगिनीगेहे भगिनीं पूजयेदपि। कदाचिदपि मद्द्वारंन स पश्यतिभानुजे!।।५३।।
वीरेशैशानदिग्भागेयमतीर्थम्प्रकीर्तितम्। तत्रस्नात्वाच विधिवत्सन्तर्प्यपितृदेवताः।।५४।।
पठेदेतानि नामानिआमध्याह्नंनरोत्तमः। सूर्यस्याऽभिमुखोमौनीहृतचित्तःस्थिरासनः।।५५।।
यमो निहन्ता पितृधर्मराजो वैवस्वतो दण्डधरश्च कालः।
भूताधिपो दत्तकृतानुसारी कृतान्तमेतद्दशभिर्जपन्ति।।५६।।
ततो यमेश्वरम्पूज्य भगिनीगृहमाव्रजेत्। मन्त्रेणाऽनेनच तया भोजितः पूर्वमादरात्।।५७।।
भ्रातस्तवानुजाताऽहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदंशुभम्।
प्रीतयेयमराजस्य यश्मुनाया विशेशतः।।५८।।
ततः सन्तोष्य भगिनीं वस्त्रालङ्करणादिभिः।
स्वप्नेऽपि यमलोकस्य भविष्यति न दर्शनम्।।५९।।

यमराज कहते हैं—"हे सूर्यपुत्री! जो मानव इस दिन यमुना में स्नान तथा पितरों एवं देवगण का तर्पण करके भगिनी के गृह में भोजन तथा भगिनी की पूजा करेंगे, उनको कभी भी यमद्वार दर्शन नहीं करना होगा।" वाराणसी के ईशानकोण में यमतीर्थ विद्यमान है। बुद्धिमान मनुष्य इस तीर्थ में यथाविधि स्नान, पितृतर्पण करके पूर्वमुख, मौनी, स्थिरासन तथा दृष्टचित्त होकर मध्याह्न कालपर्यन्त मूलोक्त श्लोक ५६ का पाठ करें। ये दस यम के नाम हैं। यथा—यम, निहन्ता, पितृ, धर्मराज, वैवस्वत, दण्डधर, काल, भूताधिप, दत्तकृतानुसारी, कृतान्त। इनका पाठ मध्याह्न तक करें। तत्पश्चात् यमेश्वर की पूजा करके बहन के घर जायें। तब बहन आदर सत्कार पूर्वक श्लोक ५८ को पढ़ें, जो मूल में लिखा है। तदनन्तर बहन अपने भ्राता को भोजन कराये। तब भ्राता अपनी बहन को वस्त्र-अलंकार द्वारा सन्तुष्ट करायें। यह कहने से स्वप्न में भी यमदर्शन नहीं होगा।।५२-५९।।

नृपैः कारागृहे ये च स्थापितामम वासरे। अवश्यं ते प्रेषणीया भोजनार्थं स्वसुर्गृहे।।६०।।
विमोक्तव्या मया पापानरकेभ्योऽद्यवासरे। येऽद्यबन्दींकरिष्यन्तितेताड्याममसर्वथा।।६१।।
कनीयसी स्वसा नास्तितदाज्येष्ठागृहम्व्रजेत्। तदभावेसपत्न्यायाःपितृव्यजागृहेततः।।६२।।
तदभावेमातृस्वसुर्मातुलस्याऽऽत्मजा तथा। सापत्नगोत्रसम्बन्धैः कल्पयेदथवाक्रमम्।।६३।।
सर्वाऽभावे माननीया भगिनीकाचिदेवहि। गोनद्याद्यथवातस्या अभावेसतिकारयेत्।।६४।।
तदभावेऽप्यरण्यानींकल्पयित्वासहोदराम्। अस्यांनिजगृहे देवि! नभोक्तव्यंकदाचन।।६५।।

"राजा भी कारागृह में बन्द अपराधियों को यमद्वितीया के दिन उनकी बहनों के यहां भोजनार्थ भेजें। इस दिन मैं भी पापीगण को नरक से मुक्त करूंगा। जो राजा इस दिन बन्दी को नहीं भेजता वह सर्वदा मेरे

द्वारा ताड़ित होगा। जिसकी छोटी बहन नहीं, वह बड़ी बहन के घर जाये। उसके अभाव में पतियुक्त पितृव्यजा के गृह में, उसका भी अभाव होने पर मातृष्वसा अथवा मामा की कन्या के यहां जायें। उसका भी अभाव होने पर ज्ञाति, गौण ज्ञाति, किंवा अन्य सम्पर्कित बहन के गृह जायें। इसका भी अभाव होने पर किसी को भी वहन मानकर उससे सम्पर्क करें। यह भी संभव न हो तब गौ अथवा नदी की वहनरूपेण भावना करें। उसका भी अभाव होने पर गहन अरण्य में भगिनी की भावना करके वहां जाना चाहिये तथापि हे देवी यमुना! कभी भी यमद्वितीया के दिन अपने गृह में भोजन न करें।''।।६०-६५।।

ये भुञ्जते दुराचारा नरके ते पतन्ति च। एवमुक्त्वा धर्मराजो ययौ संयमिनीं ततः।।६६।।
तस्मादृषिवराः सर्वे कार्त्तिकव्रतकारिणः। भुञ्जते भगिनीहस्तात्सत्यंसत्यंनसंशयः।।६७।।
यमद्वितीयां यः प्राप्य भगिनीगृहभोजनम्। न कुर्याद्वर्षजंपुण्यंनश्यतीतिरवेः श्रुतिः।।६८।।
यातुभोजयतेनारी भ्रातरं भ्रातृके तिथौ। अर्च्चयेच्चाऽपिताम्बूलैर्नसावैधव्यमाप्नुयात्।।६९।।
भ्रातुरायुःक्षयोनूनं न भवेत्तत्र कर्हिचित्। अपराह्णव्यापिनी सा द्वितीया भ्रातृभोजने।।७०।।
अज्ञानाद्यदि वा मोहान्नभुक्तंभगिनीगृहे। प्रवासिना ह्यभावाद्वा ज्वरितेनाऽथ बन्दिना।।७१।।
एतदाख्यानकंश्रुत्वाभोजनस्यफलम्भवेत्। कार्त्तिकेतुविशेषेण धात्रीछायांसमाश्रितः।।७२।।
भोजनं कुरुते यस्तु स वैकुण्ठमवाप्नुयात्।।७३।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे यमद्वितीयामाहात्म्यवर्णनं-
नामैकादशोऽध्यायः।।११।।

"जो दुराचारी इस दिन स्वगृह में भोजन करते हैं, वे नरक गमन करते हैं।'' धर्मराज यम यह कहकर अपनी पुरी चले गये। हे ऋषिवर! मैं सत्य कहता हूं, सत्य कहता हूं, सत्य कहता हूं कि इसीलिये कार्त्तिक व्रताचारी लोग यमद्वितीया के दिन बहन के हाथ का भोजन करते हैं। इसमें संशय नहीं है। जो यमद्वितीया के दिन बहन के घर भोजन नहीं करते उनका वर्षपर्यन्त का पुण्य नष्ट हो जाता है। यह रवि की श्रुति है। जो नारी भातृतिथि यमद्वितीया के दिन भाई को भोजन तथा ताम्बूल द्वारा भाई का सत्कार करती है, वह विधवा नहीं होती। उसका भाई भी अक्षय आयु लाभ करता है। भातृभोजनार्थ द्वितीया तिथि को अपराह्ण व्यापिनी ग्रहण करना चाहिये। जो मनुष्य अज्ञान अथवा मोह के करण विदेश वास अथवा अभाव के कारण किंवा जराग्रस्त अथवा बंदी होकर बहन के गृह में भोजन नहीं कर पाता, वह यदि इस यमद्वितीया उपाख्यान को सुनता है, तब उसे भोजन फल ही मिलेगा। कार्त्तिक मास में जो आंवले की छाया में भोजन करता है, उसे वैकुण्ठलोक की प्राप्ति होती है।।६६-७३।।

।।एकादश अध्याय समाप्त।।

द्वादशोऽध्यायः

धात्री (आंवला) माहात्म्य, धात्रीवृक्षपूजा माहात्म्य

शौनक उवाच

कार्त्तिकस्य च माहात्म्यं महत्पुण्यफलप्रदम्।
कदाः धात्री समुत्पन्ना कथं सा ख्यातिमागता॥१॥
कस्मादियंपवित्राचकस्मात्पापप्रणाशिनी। आमर्दकीकृताकेनकथयस्वाऽत्रविस्तरात्॥२॥

शौनक कहते हैं—कार्त्तिक का माहात्म्य तो महापुण्य फलप्रद है। हे सूत! किस समय आमलकी (आंवला) वृक्ष उत्पन्न हुआ, उसे क्यों प्रसिद्धि मिली तथा क्यों यह वृक्ष पवित्र माना गया? यह वृक्ष पापनाशक क्यों है तथा किसने इसे संगदोष जनित पापों का मर्दनकारी बनाया। सम्प्रति विस्तृत रूप से यह सब वर्णन करिये।।१-२।।

सूत उवाच

कथयामि द्विजश्रेष्ठ! यथावेयं हि पुण्यदा। ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यांधात्रीपूजांसमाचरेत्॥३॥
आमर्दकीमहावृक्षः सर्वपापप्रणाशनः। वैकुण्ठाख्यतर्दश्यां धात्रीछायां गतो नरः॥४॥
पूजयेत्तत्र देवेशं राधया सहितं हरिम्। प्रदक्षिणां ततः कुर्याच्छतमष्टोत्तरं तथा॥५॥
सुवर्णरजतैर्वापि फलैरामलकैस्तथा। शतमष्टोत्तरं कुर्यादेकैकेन प्रदक्षिणाम्॥६॥
साष्टाङ्गंप्रणतोभूत्वाप्रार्थयेत्परमेश्वरम्। धात्रीछायां समाश्रित्यशृणुयाच्चकथामिमाम्॥७॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्यथाशक्त्याचदक्षिणाम्। ब्राह्मणेषुच तुष्टेषु तुष्टोमोक्षप्रदोहरिः॥८॥

सूत जी कहते हैं—हे द्विजप्रवर! यह पुण्यदाता क्यों हो गया वह प्रसंग कहता हूं। कार्त्तिक मासीय शुक्लाचतुर्दशी को धात्री वृक्ष की पूजा करें। यह महान् वृक्ष संगदोषजनित पापों का मर्दन तथा अन्य पापों को नष्ट करता है। वैकुण्ठ चतुर्दशी के दिन मानव आवलें की छाया में जाकर वहां राधा के साथ विष्णु की पूजा करे तथा १०८ प्रदक्षिणा करे। स्वर्ण या रजत का आंवला एक-एक बार कर १०८ प्रदक्षिणा करे। तदनन्तर साष्टांग प्रणाम करके परमेश्वर हरि की प्रार्थना करके धात्री छाया में बैठकर कथा सुनने के पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराये तथा व्रत की दक्षिणा प्रदान करें। ब्राह्मण के सन्तुष्ट होने पर हरि भी सन्तुष्ट हो जाते हैं तथा मोक्ष प्रदान करते हैं।।३-८।।

अत्रतेकथयिष्यामिकथांपुण्यफलप्रदाम्। आमर्दकीफलं वक्तुं ब्रह्मा चाऽपि नपार्यते॥९॥
एकार्णवे पुरा जाते नष्टे स्थावरजङ्गमे। नष्टे देवासुरगणे प्रणष्टोरगराक्षसे॥१०॥
तत्र देवाधिदेवेशः परमात्मा सनातनः। जजाप ब्रह्म परममात्मनः परमाव्ययम्॥११॥
ततोऽस्य ब्रह्म जपतो निरगाच्छ्वसितम्पुरः। तद्दर्शनाऽनुरागेण नेत्राभ्यामगमज्जलम्॥१२॥

प्रेमाश्रुभरनिर्भिन्नो भूमौ बिन्दुः पपात सः।
तस्माद् बिन्दोः समुत्पन्नः स्वयं धात्रीनगो महान्॥१३॥
शाखाप्रशाखाबहुलः फलभारेण पीडितः। सर्वेषामेव वृक्षाणामादिरोहः प्रकीर्तितः॥१४॥
ब्रह्मा तमसृजत्पूर्वं तत्पश्चाच्चाऽसृजत्प्रजाः। देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगान्॥१५॥
असृजद्भगवान्देवो मानुषांश्च तथाऽमलान्। आजग्मुस्तत्र देवास्तेयत्रधात्रीहरिप्रिया॥१६॥
तां दृष्ट्वा ते महाभागाः परमं विस्मयंगताः। न जानीम इमं वृक्षं चिन्तयन्तो मुहुर्मुहुः॥१७॥

सम्प्रति यह पुण्यफलदायिनी कथा कहता हूं। ब्रह्मा भी आमलकी का वर्णन कर सकने में समर्थ नहीं हैं। पूर्वकाल में भूमण्डल में एकार्णव होने पर स्थावर, जंगम, देवता, असुर, उरग, राक्षसादि नष्ट हो गये। तब देवाधिदेवेश सनातन परमात्मा ब्रह्मा परम अव्यय ब्रह्म का मन्त्र जप कर रहे थे। वेदमन्त्र जप करते-करते सहसा परमात्मा महाविष्णु के निकट उनकी एक श्वास निर्गत हो गयी। यह देखकर महाविष्णु में अनुराग का जन्म हो गया। उनके नेत्रद्वय से प्रेमपूरित एक जलविन्दु भूपतित हो गया तथा उस विन्दु से महावृक्ष धात्री उत्पन्न हो गया। उसकी शाखा-प्रशाखायें फलभार से झुक गयीं। यह धात्री वृक्ष ही सर्वप्रथम आविर्भूत होने के कारण वृक्षों में सर्वोपरि है। भगवान् ब्रह्मा ने पूर्व में इसका सृजन किया था। तत्पश्चात् देव-दानव-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-पन्नग तथा अन्य निर्मल मानव आदि प्रजावर्ग को सृजित किया था। महाभाग देवगण ने हरिप्रिय धात्री वृक्ष के समीप जाकर उसका दर्शन किया तथा वे परम विस्मयापन्न हो गये कि हमने इसको कभी भी नहीं देखा था। देवगण बारम्बार यही विचार करने लगे।।९-१७।।

एवं चिन्तयतां तेषांवागुवाचाऽशरीरिणी। आमर्दकी नगोह्येष प्रवरो वैष्णवो यतः॥१८॥
अस्यवै स्मरणादेव लभेद्गोदानजम्फलम्। दर्शनाद्द्विगुणं पुण्यं त्रिगुणं भक्षणात्तथा॥१९॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सेव्या आमर्दकी सदा। सर्वपापहराप्रोक्ता वैष्णवीपापनाशिनी॥२०॥
तस्या मूलेस्थितोविष्णुस्तदूर्ध्वंचपितामहः। स्कन्धेचभगवान्रुद्रःसंस्थितःपरमेश्वरः॥२१॥
शाखासु सवितारश्च प्रशाखासुच देवताः। पर्णेषु देवताः सन्ति पुष्पेषु मरुतस्तथा॥२२॥
प्रजानां पतयः सर्वे फलेष्वेवं व्यवस्थिताः। सर्वदेवमयी ह्येषा धात्रीवै कथितामया॥२३॥
अतः सा पूजनीयाच सर्वकामार्थसिद्धये। एकदा नारदोयोगी ब्रह्मणः पुरतः स्थितः।
नमस्कृत्वा जगन्नाथं पप्रच्छाऽतीवविस्मितः॥२४॥

देवगण इसी प्रकार विचार कर ही रहे थे कि तभी एक आकाशवाणी सुनाई पड़ी "यह आमलकी वृक्ष है। यह वैष्णव वृक्ष है। अतः तरु समूह में सर्वश्रेष्ठ है। इसके स्मरण मात्र से गोदान जनित फल लाभ होता है। दर्शन से द्विगुणित तथा भक्षण से त्रिगुणित फल मिलता है। यह धात्री वैष्णवी, सर्वपापहारिणी है। अतः तुम लोग सर्वप्रयत्नपूर्वक इस धात्री वृक्ष की सतत् सेवा करो। इसके भूत में विष्णु, उससे ऊर्ध्व में पितामह ब्रह्मा तथा स्कन्ध में परमेश्वर रुद्रदेव संस्थित हैं। इसकी शाखाओं में द्वादश सूर्य, प्रशाखाओं तथा पत्तों में अन्य देवता, पुष्प में मरुद्गण और फलों में दक्ष आदि प्रजापति स्थित हैं। मैं कहता हूं कि यह धात्री सर्वदेवमयी है। अतः समस्त अर्थकाम सिद्धि हेतु यह सदा सेवनीय है। एक बार देवर्षि नारद ने जगन्नाथ ब्रह्मा के पास स्थित होकर प्रणाम किया तथा विस्मय के साथ यह प्रश्न पूछा।।१८-२४।।

श्रीनारद उवाच

यथा प्रियं सुतुलसीकाननं सर्वदा हरेः। तथा धात्रीवनंमासे कार्त्तिके श्रीहरिप्रियम्॥२५॥

नारद कहते हैं—जैसे तुलसी कानन सतत् विष्णुप्रिय है, उसी प्रकार से कार्त्तिक मास में क्या धात्री भी विष्णुप्रिय है? इस विषय के प्रति मेरे मन में तर्क उपस्थित हो रहा है!।।२५।।

ब्रह्मोवाच

धात्रीवनेहरेःपूजाधात्रीछायासुभोजनम्। कार्त्तिकेमासि यःकुर्यात्तस्यपापंविनश्यति॥२६॥

तीर्थानि मुनयो देवाः यज्ञाः सर्वेऽपि कार्त्तिके।
नित्यं धात्रीं समाश्रित्य तिष्ठन्त्यर्के तुलास्थिते॥२७॥
यत्किञ्चित्कुरुते पुण्यं धात्रीछायासु मानवः।
तत्कोटिगुणितं भूयान्नाऽत्रकार्या विचारणा॥२८॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्॥२९॥

अयोध्यानगरेकश्चिद्वैश्यश्चाऽऽसीद्द्विजोत्तम!। पुत्रदारविहीनश्चदैवाद्दारिद्र्यपीडितः॥३०॥
भिक्षया चोदराग्निं स शमयामास नारद!। कदाचिद्वणिजोवैश्योययाचेक्षुत्प्रपीडितः॥३१॥
भिक्षाप्तचणकान्गृह्य धात्रीछायामगात्किल। तत्रतान्भक्षयामास कार्त्तिकेमासि नारद॥३२॥
केचिदुर्वरितास्तेषु चणकास्तत्र नारद!। वैश्येन तेन दत्ताहि क्षुत्क्षामाय द्विजातये॥३३॥
तेन पुण्यप्रभावेणराजाऽऽसीद्धनिकःक्षितौ। तस्माद्दानंप्रकर्तव्यं कार्त्तिकेमासिसर्वदा॥३४॥
धात्रीवने मुनिश्रेष्ठ! सर्वकामार्थसिद्धये। धात्रीछायांसमाश्रित्यकार्त्तिकेचहरेःकथाम्।
यः श्रृणोति स पापेभ्यो मुच्यते द्विजसूनुवत्॥३५॥

ब्रह्मा कहते हैं—जो कार्त्तिक मास में धात्री कानन में हरिपूजन करते हैं तथा धात्री की छाया में भोजन करते हैं, उनका पापनाश हो जाता है। कार्त्तिक मास में सूर्य तुलाराशिस्थ होते हैं। तब समस्त तीर्थ, मुनिगण, देवता तथा सभी यज्ञ नित्य धात्री का आश्रय लेकर अवस्थान करते हैं। अतएव धात्री छाया में स्थित होकर मनुष्य जो कुछ पुण्य कार्य करता है, वह कोटिगुणित होता है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। हे द्विजोत्तम! इस विषय में विद्वान् लोग एक प्राचीन इतिहास का वर्णन उदाहरण के लिये देते हैं कि अयोध्या में एक वैश्य निवास करता था। यह वैश्य एक समय दैववशात् पुत्र-पुत्री विहीन होकर दरिद्रता के कारण अत्यन्त पीड़ित था। हे नारद! वह वैश्य भिक्षान्न द्वारा उदर की अग्नि को शान्त करने लगा। तदनन्तर एक बार वह क्षुधा से कातर वैश्य एक व्यक्ति से जो वणिक था, कुछ चना प्राप्त करके धात्री वृक्ष की छाया में बैठकर खाने के विचार से गया। हे नारद! उस समय कार्त्तिक मास था। तभी जब वैश्य कुछ चना निकाल कर उसे खाने के लिये प्रवृत्त हुआ, तभी दैवात् वहां एक भूखा ब्राह्मण आ पहुंचा! वैश्य ने उस क्षुधित ब्राह्मण को अपने द्वारा रखा गया समस्त चना दे दिया। हे नारद! उस चना दान के पुण्य प्रभाव से वह वैश्य पृथिवी का राजा हो गया। हे मुनिश्रेष्ठ! समस्त अर्थ तथा कामसिद्धि हेतु कार्त्तिक मास में धात्रीवृक्ष के नीच सतत् दान करना चाहिये। जो

मानव कार्त्तिक मास में धात्री की छाया में बैठकर हरिकथा सुनता है, वह द्विजपुत्र के समान समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।।२६-३५।।

नारद उवाच

कोऽभूद्द्विजसुतो ब्रह्मन्किम्पापं कृतवान्पुरा। तस्य जाताकथंमुक्तिरेतद्विस्तरतोवद।।३६।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आपने द्विजपुत्र का उल्लेख किया है। यह कौन है? इसने पूर्वकाल में क्या पाप किया था, कैसे उसकी मुक्ति हो सकी? विस्तृत रूप से कहिये।।३६।।

ब्रह्मोवाच

पुरा द्विजवरश्चासीत्कावेर्या उत्तरे तटे।।३७।।
देवशर्मेति विख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः। तस्य पुत्रो दुराचारस्तमाह च पिता हितम्।।३८।।
इदानीं कार्त्तिको मासो वर्तते हरिवल्लभः। तत्र स्नानञ्च दानञ्च व्रतानि नियमान्कुरु।।३९।।
तुलसीपुष्पसहितां कुरु पूजां हरेःसुत!। दीपदानञ्च विविधं नमस्कारं प्रदक्षिणाम्।।४०।।
एवं पितुर्वचःश्रुत्वापुत्रःक्रोधसमन्वितः। पितरं प्राह दुष्टात्माचलदोष्ठो विनिन्दयन्।।४१।।

ब्रह्मा कहते हैं—पूर्वकाल में कावेरी नदी के उत्तर तट पर देवशर्मा नामक प्रख्यात वेद-वेदाङ्ग परायण द्विजप्रवर निवास करते थे। एक बार द्विजश्रेष्ठ देवशर्मा ने अपने दुराचारी पुत्र से यह हितवाक्य कहा—"हे पुत्र! सम्प्रति हरिप्रिय कार्त्तिक मास आया है। इस समय स्नान-दान-व्रताचरण करो। हे पुत्र! इस पुण्य से कार्त्तिक मास में तुलसी तथा पुष्प से हरि पूजा, नाना दीपदान, नमस्कार तथा हरि की प्रदक्षिणा करो।" पिता का वाक्य सुनकर दुराचारी पुत्र के अधरोष्ठ क्रोध से कांपने लगे। दुष्टात्मा पुत्र ने पिता की निन्दा करके कहा।।३७-४१।।

पुत्र उवाच

नकरिष्याम्यहंतात! कार्त्तिके पुण्यसङ्ग्रहम्।
इति पुत्रवचः श्रुत्वासक्रोधः प्राहतंसुतम्।।४२।।
मूषको भवदुर्बुद्धे! वने वृक्षस्य कोटरे। इति शापभयाद्भीतो नत्वा पितरमब्रवीत्।।४३।।
दुर्योनेर्ममुक्तिः स्यात्कथंतद्वदमेगुरो!। इतिप्रसादितोविप्रः प्राहनिष्कृतिकारणम्।।४४।।
यदोर्ज्जव्रतजं पुण्यं शृणोषि हरिवल्लभम्। तदातेभवितामुक्तिस्तत्कथाश्रवणात्सुत!।।४५।।

पुत्र कहता है—हे तात! मैं कार्त्तिक मास में पुण्य संचय नहीं करूंगा।" पुत्र का कथन सुनकर पिता ने क्रोध में भरकर उससे कहा—"हे दुर्बुद्धि! मूषक बनकर तुम वनस्थ वृक्ष के कोटर में निवास करो।" जब पुत्र ने पिता का यह शाप सुना, तब वह भयभीत होकर उनको प्रणाम करके कहने लगा—"हे गुरो! इस निन्दित योनि से मेरा परित्राण किस प्रकार से होगा, वह कहिये।" पुत्र की प्रार्थना सुनकर पिता प्रसन्न हो गये तथा उसे मोक्ष के कारण का निर्देश देते हुये कहा—"हे पुत्र! जब तुम कार्त्तिक मास से सम्बन्धित पुण्य तथा हरिप्रिय व्रतकथा को सुनोगे, उस कथा श्रवण प्रभाव से तुम्हें मुक्ति प्राप्त होगी।।४२-४५।।

स पित्रा चैवमुक्तस्तु तत्क्षणान्मूषकोऽभवत्। बहुवर्षसहस्राणि गह्वरे विपिनेवसन्।।४६।।

एकदा कार्त्तिके मासि विश्वामित्रः सशिष्यकः।
स्नात्वा नद्यां हरिञ्चाऽर्च्य धात्रीछायां समाश्रितः॥४७॥
कथयामास माहात्म्यं शिष्येभ्योश्चोर्ज्जसम्भवम्।
तदा कश्चिद्दुराचारो व्याधोऽगान्मृगयां चरन्॥४८॥
दृष्ट्वा ऋषिगणान्हन्तुं कृतेच्छः प्राणिघातकः। तेषां दर्शनमात्रेण सुबुद्धिरभवत्तदा॥४९॥
अथोवाचद्विजान्नत्वाभ्रमद्भिःक्रियतेऽत्रकिम्।
तेनैवमुक्तोविप्रेन्द्रोविश्वामित्रस्तमब्रवीत्॥५०॥

पिता की बात समाप्त होते-होते वह पुत्र तत्क्षण मूषक हो गया तथा वह हजारों वर्ष पर्यन्त वनस्थ वृक्ष के कोटर में निवास करने लगा। तदनन्तर एक बार कार्तिक मास में शिष्यों के साथ महर्षि विश्वामित्र कावेरी नदी में स्नान तथा हरिपूजन के पश्चात् धात्री वृक्ष की छाया में बैठ कर शिष्यों से कार्तिक मास माहात्म्य कथा कहने लगे। तभी वहां एक प्राणीघातक व्याध मृगयार्थ आया तथा ऋषिगण को देखकर उनका वध करने हेतु विचार करने लगा। लेकिन उनको देखते ही व्याध में सुबुद्धि उत्पन्न हो गयी। वह ऋषिगण के समीप आया तथा उनको प्रणाम करके पूछने लगा—"आप लोग यहां क्या कर रहे हैं?" व्याध के द्वारा यह पूछे जाने पर विप्रेन्द्र विश्वामित्र उससे कहने लगे।।४६-५०।।

विश्वामित्र उवाच

सर्वेषामेव मासानां कार्त्तिकः श्रेष्ठ उच्यते। तस्मिन्यत्क्रियतेकर्म वर्धते वटबीजवत्॥५१॥
कार्त्तिके मासि यः कुयात्स्नानंदानञ्चपूजनम्।
विप्राणाम्भोजनञ्चैवतदक्षय्यफलंभवेत्॥५२॥
व्याधप्रयुक्तमाकर्ण्य धर्मञ्च ऋषिणा द्विजः। मौषकंदेहमुत्सृज्यदिव्यदेहोऽभवत्तदा॥५३॥

विश्वामित्र कहते हैं—"द्वादश मास समूह में कार्तिक मास श्रेष्ठ है। इस मास में जो कुछ भी किया जाता है, वह सब वटवृक्षवत् वर्द्धित होने लगता है। कार्तिक मास में जो मानव स्नान-दान-पूजा-ब्राह्मण भोजन आदि पुण्य करता है, वह उसके लिये अक्षयफल प्रदाता हो जाता है।" व्याध के द्वारा पूछे जाने पर विश्वामित्र ने जो सब धर्मकथा कही थी मूषिक देहधारी ब्राह्मणपुत्र ने वह सब वृक्ष कोटर में बैंठे हुये सुना। यह सुनते ही उसने मूषक देह त्याग दिया तथा दिव्य देहधारी हो गया।।५१-५३।।

विश्वामित्रंप्रणम्याऽथस्ववृत्तान्तंनिवेद्यच। अनुज्ञातोऽथऋषिणाविमानस्थोदिवंययौ॥५४॥
विस्मितो गाधिपुत्रस्तु व्याधश्चैव विशेषतः।
व्याधोऽप्यूर्जव्रतं कृत्वा जगाम हरिमन्दिरम्॥५५॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्त्तिकेकेशवाऽग्रतः। धात्रीछायांसमाश्रित्यकथाश्रवणमाचरेत्॥५६॥
मूषकोऽपि च दुर्योनेर्मुक्तऊर्जकथाश्रुतेः। शृणुयाच्छ्रावयेद्यो वामुक्तिभागीन संशयः।
धात्रीछायां समाश्रित्य वनभोजनमाचरेत्॥५७॥

आदौकृत्वातथास्नानमुदके वनसंस्थिते। कृत्वाकर्माणि नित्यानि माधवं पूजयेत्ततः॥५८॥
धात्रीछायां समाश्रित्य हरी भक्तिसमन्वितः।
शृणुयाच्च कथां दिव्यां मासमाहात्म्यशंसनीम्॥५९॥
ततस्तु ब्राह्मणान्भक्त्याभोजयेद्ब्रह्मवित्तमान्। ततोभुञ्जीतविप्रेन्द्रस्वयंहरिमनुस्मरन्॥६०॥

उस ब्राह्मणपुत्र ने ऋषि विश्वामित्र को प्रणाम करके उनसे अपना वृत्तान्त कहा। ऋषि से आज्ञा लेकर वह विमानारूढ़ होकर स्वर्ग चला गया। गाधिनन्दन विश्वामित्र यह घटना देखकर विस्मित हो गये। विशेष रूप से व्याध तो अत्यन्त विस्मयापन्न हो गया। तदनन्तर व्याध भी कार्त्तिक व्रत सम्पन्न करके विष्णुलोक चला गया। हे नारद! सर्वप्रयत्न से कार्त्तिक मास में आंवला वृक्ष की छाया में आश्रय लेकर केशव के समक्ष वन भोजन करें। हे विप्रेन्द्र! पहले वन के पास जल से स्नान तथा नित्यकर्मादि सम्पन्न करके धातृवृक्ष के निकट जाये तथा हरिभक्तियुक्त होकर माधव पूजन करें। तत्पश्चात् कार्त्तिक मास माहात्म्य सूचक दिव्य व्रतकथा सुनें। तदनन्तर भक्ति के साथ ब्रह्मवित्तम ब्राह्मणों को भोजन कराकर हरि-स्मरण करते-करते स्वयं भी भोजन ग्रहण करना चाहिये।।५४-६०।।

एवं कृतं व्रते विप्र कार्त्तिके हरिवल्लभे। यत्पापं नश्यतं पुत्र! सावधानमनाः शृणु॥६१॥
हरेर्नार्पितभोगाच्च भोजने सूर्यदर्शनात्। रजस्वलावाक्छ्रवणात्पापाद्भोजनके तथा॥६२॥
भोजनावसरे चान्यस्पर्शदोषस्तु यद्भवेत्। निषिद्धभोजनात्तस्माद्भोजनेचाऽन्नदूषणात्॥६३॥
शुद्धस्यापि तथा त्यागात्पुण्यकालेहरिप्रिये। एतैर्यत्साधितंपापंतत्सर्वंनश्यतिध्रुवम्॥६४॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धात्र्यां भोजनमाचरेत्॥६५॥
कार्त्तिके मासि वै विप्रो धात्रीमालां तु यो बहेत्।
तथैव तुलसीमालां तस्य पुण्यमनन्तकम्॥६६॥

हे विप्र! इस प्रकार हरिप्रिय कार्त्तिक व्रत सम्पन्न करने वाले व्यक्ति के पाप दूरीभूत हो जाते हैं। हे पुत्र! तुम सावधानी से सुनो! हरि को निवेदित किये बिना भोजन, सूर्योदय काल में भक्षण, रजस्वला से वार्त्ता, रजस्वला का अन्न भोजन, निषिद्ध अन्न भक्षण, दूषित अन्न भक्षण तथा हरप्रिय पुण्य शुद्धकाल का त्याग—यह सब करने से जो पाप संचित होता है, एकमात्र कार्त्तिक व्रताचरण से वह समस्त पाप दूर हो जाता है। अतः कार्त्तिक मास में सर्वप्रयत्न से आंवला के वृक्ष के नीचे भोजन करें। कार्त्तिक में जो द्विज तुलसीमाला अथवा धात्रीमाला पहनता है, उसका पुण्य अनन्त है।।६१-६६।।

धात्रीछायां समाश्रित्यदीपमालार्पणं नरः। करिष्यति विशेषेणतस्यपुण्यमनन्तकम्॥६७॥
राधादामोदरौ पूज्यौ तुलस्यधो विशेषतः। तुलस्यभावे कर्तव्यापूजाधात्रीतलेशुभा॥६८॥
धात्रीछायातले येन सकृद्भुक्तं तु कार्त्तिके। दम्पत्योर्भोजनं दत्तमनदोषात्प्रमुच्यते॥६९॥
सम्पूर्णेकार्त्तिकेयस्तुसम्पूज्यामलकींशुभाम्। राधादामोदरप्रीत्यैभोजयित्वाच दम्पती॥७०॥
पश्चात्स्वयं तु भुञ्जीत न श्रीस्तस्य क्षयं व्रजेत्॥७०॥

यः कश्चिद्वैष्णवो लोकेधत्तेधात्रीफलं मुने!। प्रियोभवतिदेवानांमनुष्यणांचकाकथा॥७१॥
धात्रीफलविलिप्ताङ्गो धात्रीफलसमन्वितः। धात्रीफलकृताहारो नरोनारायणोभवेत्॥७२॥
धात्रीफलानि यो नित्यं वहते करसम्पुटे। तस्यनारायणो देवो वरमिष्टं प्रयच्छति॥७३॥

जो मानव धात्री की छाया में आश्रय लेता है, विशेषतः वहां दीपमाला अर्पित करता है, उसके पुण्य की सीमा नहीं है। कार्त्तिक मास में तुलसी के नीचे विशेषतः राधा-दामोदर का पूजन करें। तुलसी का अभाव होने पर धात्री वृक्ष के नीचे ही पूजा करें। कार्त्तिक मास में जो कोई धात्री वृक्षतल में मात्र एक बार भी भोजन करते हैं, उसे ब्राह्मणदम्पत्ति को भोजन कराने का फललाभ होता है। जो सम्पूर्ण कार्त्तिक मास में सुशोभन आमलकी वृक्ष की पूजा करके राधा-दामोदर की प्रीति हेतु ब्राह्मण दम्पत्ति को भोजन कराने के उपरान्त स्वयं भोजन करते हैं, उनका कदापि लक्ष्मीक्षय नहीं होता। हे मुनिवर! (पृथ्वी) भूमितल में जो कोई वैष्णव आमलकी फल धारण करते हैं, वे देवगण को भी प्रिय हो जाते हैं। मनुष्यों को प्रिय होने की तो बात ही क्या? धात्रीफल का अंग में लेपन, अंगों पर धारण, धात्रीफल का आहार करने वाला व्यक्ति नारायण के अनुरूप हो जाता है। जो कोई धात्रीफल को करपुट में धारण करते हैं, नारायण उसे इच्छित वर प्रदान करते हैं।।६७-७३।।

श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्यादामलकैर्नरः। तुष्यत्यामलकैर्विष्णुरेकादश्यां विशेषतः॥७४॥
नवम्यां दर्शेसप्तम्यांसङ्क्रान्तौ रविवासरे। चन्द्रसूर्योपरागे चस्नानमामलकैस्त्यजेत्॥७५॥
धात्रीछायां समाश्रित्य कुर्व्यात्पिण्डं तु यो नरः।
प्रयान्ति पितरो मुक्तिं प्रसादान्माधवस्य तु॥७६॥
मूर्ध्निपाणौमुखेचैववाह्वोःकण्ठेतुयोनरः। धत्ते धात्रीफलं वत्स धात्रीफलविभूषितः॥७७॥
यावल्लुठति कण्ठस्था धात्रीमालानरस्य हि। तावत्तस्यशरीरेतुप्रीत्यालुठतिकेशवः॥७८॥

सम्पत्ति की कामना करने वाला व्यक्ति हरि का संतोष साधन करे तथा नवमी, अमावस्या, सप्तमी, संक्रान्ति, रविवार तथा चन्द्रसूर्य के उपराग काल में आंवले का वर्जन करना चाहिये। जो धात्रीवृक्ष के नीचे पिण्डदान करते हैं, माधव की कृपा से उसके पितर मुक्त हो जाते हैं। हे वत्स! जो मस्तक, करद्वय, मुख, बाहु-युगल तथा कण्ठ में आमलकी धारण करते हैं, उस मालाधारी व्यक्ति के कण्ठ की आमलकी माला शरीर में जहां-जहां लुण्ठित होती है, केशव उस व्यक्ति के प्रति प्रसन्न होकर उसके शरीर में वहीं-वहीं लोटते हैं।।७४-७८।।

धात्रीफलंचतुलसीमृत्तिकाद्वारकोद्भवा। सफलं जीवितं तस्य त्रितयं यस्यवेश्मनि॥७९॥
यावद्दिनानि वहते धात्रीमालां कलौ नरः। तावद्युगसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत्॥८०॥
मालायुग्मं वहेद्यस्तु धात्रीतुलसिसम्भवम्। यो नरःकण्ठदेशेतुकल्पकोटिंदिवंवसेत्॥८१॥
धात्रीछायां गतोयस्तु द्वादश्यांपूजयेद्धरिम्। तत्रैवभोजनंयस्तुब्राह्मणानांचकारयेत्॥८२॥
स्वयं च तत्र भुङ्क्ते यः सूपभक्षादिकं तथा। न तस्य पुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि॥८३॥
तुलस्याश्चैव धात्र्याश्च फलैः पत्रैर्हरिं यजेत्॥८४॥
तुलसी धात्रीयुक्ताहिसिक्तेसतिचकार्त्तिके। विलयंयान्तिपापानिब्रह्महत्यादिकानिच॥८५॥

धर्मदत्तो द्विजः पूर्वं यथा मुक्तिमवाप ह॥८६॥

धात्रीफल, तुलसी, द्वारका की मिट्टी—ये तीनों मुक्तिप्रदा हैं। ये तीनों जिसके घर में विद्यमान हैं, उसी मानव का जीवन सफल है। कलिकाल में मनुष्य जितने दिनों तक आमलकी माला धारण किये रहते हैं, उतने सहस्त्रयुग पर्यन्त उनको वैकुण्ठ में निवास मिलता है। जो व्यक्ति कण्ठ में धात्री तथा तुलसी की माला (ये दोनों) धारण करता है, वह करोड़ों कल्पपर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है। जो द्वादशी के दिन आंवले के वृक्ष के नीचे हरिपूजन करते हैं, सूप आदि भक्ष्य द्रव्यों से ब्राह्मणों को भोजन कराकर तब स्वयं भोजन ग्रहण करते हैं, उनका पुनर्जन्म शतकोटि कल्पपर्यन्त भी नहीं होता। जो कार्त्तिक मास में तुलसी तथा आंवले द्वारा हरिपूजन तथा तुलसी एवं आमलकी (आंवला) के वृक्ष का अभिषेक करते हैं, पूर्वकाल में धर्मदत्त ब्राह्मण की ही तरह उनका ब्रह्महत्या प्रभृति पाप नष्ट हो जाता है।।७९-८६।।

नारद उवाच

कार्त्तिके मासि सा सेव्या पूजनाया सदा नरैः।
चातुर्मास्ये न सेव्या सा इत्युक्तं भवता पुरा।
तत्स्मात्सर्वमशेषेण कथयस्व ममाऽग्रतः॥८७॥

देवर्षि नारद कहते हैं—आपने पहले कहा था कि कार्त्तिक में धात्री सदा सेव्य है तथा पूज्य है। चातुर्मास्य में सेव्या अथवा पूज्या नहीं है। इसलिये यह सब पूर्णता कहने की कृपा करिये।।८७।।

ब्रह्मोवाच

कार्त्तिकेमासिविप्रर्षे! शुक्लायादशमीशुभा। तद्दिनाऽऽरभ्यसासेव्यादैवेपित्र्येचकर्मणि।
दशम्यारभ्य तत्पत्रैः फलकैर्मधुसूदनम्॥८८॥
पूजयन्तिनरा ये वै ते वै वैकुण्ठगामिनः। समाप्ते कार्त्तिकव्रते वनभोजनमाचरेत्॥८९॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्रर्षि! कार्त्तिकमासीय शुभ शुक्ला दशमी से प्रारम्भ करके दैव तथा पितृकार्य में इस दशमी तिथि से ही धात्री के पत्ते तथा फल से मधुसूदन की पूजा करें। जो मानव एवंविध पूजन करते हैं, उनको वैकुण्ठवास मिलता है।

कार्त्तिक व्रत सम्पन्न हो जाने पर वन भोजन करें।।८८-८९।।

दशम्यांवाऽथद्वाद्श्यांपौर्णमास्यामथाऽपिवा। पञ्चम्यांवामहाभागवनभोजनमाचरेत्॥९०॥
सर्वोपस्करसंयुक्तो वृद्धबालैश्च संयुतः। वनं प्रवेशयेद्धीमान्धात्रीवृक्षैः सुशोभितम्॥९१॥
चूतैर्बकैस्तथाऽश्वत्थैः पिचुमन्दैः कदम्बकैः।
न्यग्रोधतिन्तिणीवृक्षैः समन्तात्परिशोभितम्॥९२॥
तत्रगतमहाप्राज्ञ पुण्याहं कारयेत्पुरा। वास्तुपीठं तथा पूज्यं धात्रीमूलेतुकारयेत्॥९३॥
वेदिकां चतुरस्त्राञ्च हस्तमात्रायतां शुभाम्। तथोपवेदिकां कृत्वा वेदिकाग्रेमहामते॥९४॥
उपवेशाय देवस्यह्यलं कार्यन्तु धातुभिः। वेदिकापश्चिमे भागे कारयेत्कुण्डमण्डपम्॥९५॥

मेखलात्रयसंयुक्तं पिप्पलच्छदसंयुतम्। हस्तमात्रायतं सौम्य एवं कुण्डंतु कारयेत्॥९६॥
पश्चात्स्नात्वाततोजप्त्वादेवपूजांसमाचरेत्। पश्चादग्निंसमाधायहोमंकुर्याद्यथाविधि॥९७॥
पायसाऽऽज्यगुडसूपपालाशसमिधा तथा। ग्रहाणाम्वास्तुदेवेभ्यश्चरुं कृत्वाप्रयत्नतः॥९८॥

हे महाभाग! यह वनभोजन भी दशमी, द्वादशी, पौर्णमासी अथवा पंचमी को करें। बुद्धिमान व्यक्ति बालकों तथा वृद्धों के साथ सम्मिलित होकर विविध उपचार द्वारा आम्र, बक, अश्वत्थ, पिचुमंद, कदम्ब, न्यग्रोध तथा तिन्तिडी वृक्ष से घिरे शोभायमान आमलकी वन में प्रवेश करें। हे महाप्रज्ञ! आमलकी वन में प्रवेश करके पहले पुण्याह वाचन करें। तदनन्तर धात्रीमूल में वास्तु पीठ की पूजा करें। हे महामति! तदनन्तर एक हाथ की चौकोर उत्तम वेदी बनाकर उसके समक्ष उपवेदी बनायें। देवता के उपवेशनार्थ उसे नाना विचित्र धातु से विभूषित करें। तदनन्तर वेदी के पश्चिम भाग में तीन मेखलाओं से युक्त पीपल के पत्ते से युक्त कुण्डमण्डप बनायें। हे सौम्य! कुण्ड एक हाथ का आयताकार हो। तदनन्तर स्नान एवं जप सम्पन्न करके के पश्चात् देवपूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अग्नि लाकर पायस, घृत, गुड़, मालपूआ तथा पलाश समिध् से यथाविधान होम करें। तब प्रयत्नपूर्वक वास्तु तथा नवग्रहों को चरु प्रदान करें।।९०-९८।।

धात्रीशान्तिस्तथाकान्तिर्मायाप्रकृतिरेवच। विष्णुपत्नीमहालक्ष्मीरमामाकमलातथा॥९९॥
इन्दिरालोकमाताचकल्याणी कमलातथा। सावित्रीचजगद्धात्रीगायत्रीसुधृतिस्तथा॥१००॥
अन्तज्ञा विश्वरूपाच सुकृपा ह्यब्धिसम्भवा। प्रधानदेवताभिस्तु रक्षाहोमं समारभेत्॥१०१॥
संसृष्टेति च मन्त्रेण ऋषभं मेति मन्त्रतः। अपूपं गुडसूपाभ्यां संयुतं जुहुयाद्धविः॥१०२॥
अष्टोत्तरशतं हुत्वामूलमन्त्रेणपायसम्। ततो ग्रहादिदेवांस्तु यथासङ्ख्येन होमयेत्॥१०३॥
धात्रीहोमे महाप्राज्ञ रक्षाहोमेतु पायसम्। ततःस्विष्टकृतं हुत्वा बलिदानं समाचरेत्॥१०४॥
इन्द्रादिलोकपालांश्च रक्षा पूज्याप्रयत्नतः। धात्रीवृक्षस्य सर्वत्र वेदिका संयुतस्यच॥१०५॥
सूपेन गुडमिश्रेणबलिं पश्चान्निवेदयेत्। देवि धात्रि! नमस्तुभ्यं गृहाण बलिमुत्तमम्॥१०६॥
मिश्रितं गुडसूपाभ्यां सर्वमङ्गलदायिनि!। पुत्रान्देहि महाप्राज्ञान्यशोदेहि शुभप्रदम्॥१०७॥

प्रज्ञां मेधाञ्च सौभाग्यं विष्णुभक्तिञ्च देहि मे।
नीरोगं कुरु मे नित्यं निष्पापं कुरु सर्वदा॥१०८॥

वर्चस्कंकुरु मां देवि! धनवन्तंतथकुरु। इतिताम्प्रार्थयेद्देवींप्रादक्षिण्याद्बलिन्यसेत्॥१०९॥

बलिप्रदानकालेतुयेकुर्वन्तिप्रदक्षिणिम् ।
ते यान्तिविष्णुसालोक्यं पितृभिःसार्द्धमेवच॥११०॥
ततः पूर्णाहुतिं कृत्वा होमशेषं समापयेत्॥१११॥

तदनन्तर धात्री, शान्ति, कान्ति, माया, प्रकृति, विष्णुपत्नी महालक्ष्मी, रमा, मा, इन्दिरा, लोकमाता, कल्याणी, कमला, सावित्री, जगद्धात्री, गायत्री, सुधृति, अन्तज्ञा, विश्वरूपा, सुकृपा, अद्धिसंभवा, इन प्रधान देवताओं को आहुति देनी चाहिये। तदनन्तर रक्षाहोम करें। तदनन्तर "संसृष्टा" इत्यादि मन्त्र एवं 'ऋषभं' इत्यादि

मन्त्र से गुड़ तथा सूपयुक्त अपूप से होम करें। तदनन्तर १०८ घृताहुति देकर मूलमन्त्र से पायस होम करें। तत्पश्चात् पायस द्वारा यथासंख्य नवग्रह एवं देवतागण का होम करना होगा। अर्थात् धात्रीहोम में नवग्रह हेतु तथा रक्षा होम में देवगण हेतु होम करें।

तदनन्तर स्विष्टिकृत होम करके बलि देनी चाहिये। धात्री वृक्ष के वेदिकायुक्त स्थान में सर्वत्र इन्द्रादि लोकपालों का पूजन करके प्रयत्नतः रक्षा पूजन करें। तदनन्तर गुड़मिश्रित सूप की बलि करके "देवी धात्री आपको प्रणाम है। उत्तम बलि ग्रहण करें। जो गुड़-सूप मिश्रित है। हे सर्वमंगलप्रदात्री! महाप्राज्ञ, पुत्र, यश तथा शुभ प्रदान करें। आप प्रज्ञा, मेधा, सौभाग्य, विष्णुभक्ति प्रदान करें। हे देवी! मुझे सदा निरोग तथा निष्पाप करें। मुझे वर्चस्वयुक्त तथा धनी बनायें।" यह प्रार्थना करके प्रदक्षिणा क्रम से बलि वस्तु प्रदान करना चाहिये। जो बलि प्रदान काल में देवी की प्रदक्षिणा करते हैं, वे अपने पितरों के साथ विष्णु सालोक्य लाभ करते हैं। तदनन्तर पूर्णाहुति प्रदान करके होम समाप्त करें।।९९-१११।।

धात्रीवृक्षस्य मूलस्थं मन्दस्मितरमापतिम्।
ये यान्ति विष्णुसायुज्यं ये पश्यन्तीह चक्षुषा।।११२।।
वैश्वदेवं ततः कृत्वा पूजयेद्वनदेवताः। गन्धाक्षतांस्ततो दत्त्वा विप्रेभ्यः पद्मसम्भव।।११३।।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयंभुञ्जीतबन्धुभिः ।
गृहम्प्रवेशयेत्पश्चाद्वृद्धान्बालादिकैः सह।।११४।।
ब्रह्मचारी भवेद्रात्रौ क्षितिशायी भवेत्ततः।
ग्रामस्थैश्च मिलित्वा च स्वयं वा कारयेद्बुधः।।११५।।
सर्वपापविमुक्त्यर्थं वनभोजनमुत्तमम्। कृत्वैवं सकलं कर्म कृष्णाय च समर्पयेत्।।११६।।
अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशंतस्य च। यत्फलं समवाप्नोति तत्फलम्वनभोजने।।११७।।

जो धात्रीवृक्ष के मूलस्थ तनिक हास्ययुक्त मुख वाले देव रमापति का अवलोकन करते हैं, उनको विष्णु का सायुज्य लाभ होता है। तदनन्तर वैश्वदेव क्रियानुष्ठान, वनदेवता पूजा करें तथा विप्रगण को चन्दन प्रदान करें। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन करायें और तब बन्धुओं के साथ स्वयं भोजन करके बालकों के साथ वृद्धजन को घर भेजे तथा स्वयं ब्रह्मचर्य पालन करके रात्रि में पृथिवी पर शयन करें। तत्पश्चात् पण्डित व्यक्ति ग्रामवासियों के साथ अथवा एकाकी ही पापनाशार्थ वन भोजन करे। यह समस्त कर्माचरण करने के अनन्तर श्रीकृष्ण को फल अर्पित कर देना चाहिये। वनभोजन से मानव सहस्र अश्वमेध तथा शत बाजपेय यज्ञफल लाभ करता है।।११२-११७।।

अतोधात्रीमहाभागपवित्रापापनाशनी। धात्रीचैवनृणां धात्री धात्रीवत्कुरुतेक्रियाम्।।११८।।
ददात्यायुः पयःपानात्स्नानाद्वैधर्मसञ्चयम्। अलक्ष्मीनाशनंस्नानमात्रैर्निर्वाणमाप्नुयात्।
विघ्नानि नैव जायन्ते धात्रीस्नानेन वै नृणाम्।।११९।।
तस्मात्त्वं कुरु विप्रेन्द्र! धात्रीस्नानं हि यत्नतः। प्रयास्यसिहरेर्द्धामदेवत्वम्प्राप्यनारद।।१२०।।
यत्रयत्र मुनिश्रेष्ठ धात्रीस्नानंसमाचरेत्। तीर्थेवाऽपि गृहेवाऽपि तत्रतत्र हरिःस्थितः।।१२१।।

धात्रीस्नानेन विप्रर्षे! यस्यास्थीनिकलेवरे। प्रक्षाल्यन्ते मुनिश्रेष्ठनसगर्भगृहम्वसेत्॥१२२॥

धात्रीजलेन विप्रेन्द्र! येषां केशाश्चरञ्जिताः।
ते नराःकेशवंयान्तिनाशयित्वाकलेर्मलम्॥१२३॥

धात्रीफलं महापुण्यं स्नानं पुण्यतमंस्मृतम्। पुण्यात्पुण्यतरंवत्सभक्षणे मुनिसत्तम॥१२४॥

न गङ्गा न गया काशी न वेणी न च पुष्करम्।
एकैव हि यथा पुण्या धात्री माधववासरे॥१२५॥
धात्रीस्नानं हरेर्नाम तथैवैकादशी सुत!।
गयाश्राद्धं तथा वत्स समानि मुनयोविदुः॥१२६॥

हे महाभाग! इसीलिये धात्री को अत्यन्त पवित्र कहा गया। धात्रीवृक्ष मनुष्यों के लिये धात्री स्वरूप है। धात्री ही मानव की धात्री का ही कार्य करता है। (धात्री-पालन करने वाली दाई)। धात्री के जल से स्नान करने से धर्मसंचय तथा धात्रीजल पीने से आयु लाभ होता है। धात्रीदान अलक्ष्मी नाशक है। धात्री जल के स्नानमात्र से मानव के विघ्न दूरीभूत हो जाते हैं तथा निर्वाणमुक्ति लाभ होता है। हे विप्रेन्द्र! अब तुम यत्नतः धात्रीदान करो। हे नारद! ऐसा करने से तुम देवत्व लाभ करोगे तथा वैकुण्ठ प्राप्त करोगे। हे मुनिवर! चाहे तीर्थ में अथवा गृह में, जहां कहीं भी धात्री स्नान का आचरण किया जायेगा, वहीं श्रीहरि का अधिष्ठान होता है।हे विप्रर्षि! धात्री स्थान से जिसके कलेवर की अस्थियां प्रक्षालित हो गयी हैं, उसे आगे गर्भवास नहीं करना होगा। हे मुनिवर, विप्रेन्द्र! धात्रीजल से जिसके केश रंजित हैं, वे कलि का कल्मष नष्ट करके केशव की प्राप्ति करते हैं। एकमात्र धात्री फल ही महापवित्र है। तदनन्तर धात्रीस्नान और भी पवित्र है। हे वत्स! धात्री भक्षण पवित्र से भी पवित्र है। गंगा, गया, काशी, वेणी, पुष्कर इन सबके समान हरिवासर योग्य एक मात्र धात्री ही है। हे पुत्र! धात्री स्नान, हरिनाम, एकादशी तथा गयाश्राद्ध को मुनिगण ने समान माना है।।११८-१२६।।

संस्पृशन्यस्तु वै धात्रीमहन्यहनि मानवः।
मुच्यते पातकैः सर्वैर्मनोवाक्कायसम्भवैः॥१२७॥

धात्रीफलैरमावास्यासप्तमीनवमीषुच। रविवारे च सङ्क्रान्तौ न स्नायान्मुनिसत्तम्॥१२८॥

यस्मिन्गृहेमुनिवरधात्रीतिष्ठति सर्वदा। तस्मिन्गृहेनगच्छन्ति प्रेतकूष्माण्डराक्षसाः॥१२९॥

धात्रीफलकृतां मालां कण्ठस्थां यो वहेन्नहि।
स वैष्णवो न विज्ञेयो विष्णोर्भक्तिपरो यदि॥१३०॥
न त्याज्या तुलसीमाला धात्रीमाला विशेषतः।
तथा पद्माक्षमालाऽपि धर्मकामार्थमीप्सुभिः॥१३१॥

यावद्दिनानि वहते धात्रीमालां कलौनरः। तावद्युगसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत्॥१३२॥

सर्वदेवमयी धात्री वासुदेवमनःप्रियाः। आरोपणीया सेव्या च पूजनीया सदानरैः॥१३३॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं धात्रीमाहात्म्यमुत्तमम्। श्रोतव्यञ्च सदा भक्तैश्चतुर्वर्गफलप्रदम्॥१३४॥

धात्रीछायां समाश्रित्य कार्त्तिकेऽन्नं भुनक्ति यः।
अन्नसंसर्गजम्पापमावर्षं तस्य नश्यति॥१३५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादेधात्रीमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः।।१२।।

जो मानव नित्य धात्री स्पर्श करता है, वह कार्य, मन, वाक्य द्वारा कृत पापों से मुक्त हो जाता है। हे मुनिप्रवर! अमावस्या, सप्तमी, नवमी, रविवार तथा संक्रान्ति के दिन धात्री स्नान न करें। हे मुनिवर! जिसके गृह में सतत् धात्री को रखा जाता है, प्रेत-कूष्माण्ड-राक्षस वहां प्रवेश नहीं करते। जो मानव धात्रीफल की माला धारण नहीं करता वह विष्णुभक्त होकर भी वैष्णव नहीं है। तुलसी माला कभी न त्यागे। धात्रीमाला का भी त्याग न करें। धर्म-काम-अर्थ चाहने वाला कमल माला कभी न त्यागे। कलिकाल में लोग जब तक धात्रीमाला धारण करते हैं, उतने सहस्रयुग पर्यन्त वे वैकुण्ठ में वास करते हैं। यह सर्वदेवमयी, वासुदेव प्रिय है। अतः सतत् धात्री पूजा तथा सेवा करें। इसे धारण करें। मैंने तुमसे समस्त उत्तम रूप धात्री महिमा कहा। भक्तगण इसे सतत् सुनें। यह चतुर्वर्गफलप्रद है। जो मानव कार्त्तिक में धात्री छाया का आश्रय लेकर भोजन करता है, उसके एक वर्ष में किये अन्न संसर्गज दोषों का नाश हो जाता है।।१२७-१३५।।

।।द्वादश अध्याय समाप्त।।

त्रयोदशोऽध्यायः

सत्यभामा का पूर्वजन्म प्रसंग, प्रयाग प्रशंसा, शंखासुर वृत्तान्त

सूत उवाच

श्रियः पतिमथामन्त्र्य गते देवर्षिसत्तमे। हर्षोफुल्लाऽऽनना सत्यावासुदेवमथाऽब्रवीत्॥१॥

सूत जी कहते हैं—तदनन्तर देवर्षि प्रवर नारद रमापति से वार्त्ता करके चले गये। तब हर्षोत्फुल्ल मुख वाली सत्यभामा वासुदेव से कहने लगीं।।१।।

सत्यभामोवाच

धन्याऽस्मिकृतकृत्याऽस्मिसफलंजीवितं मम। दानंव्रतंतपोवाऽपि किंनुपूर्वंकृतंमया॥२॥
येनाऽहं मर्त्यजादेवतवाङ्गार्द्धहराऽभवम्। भवान्तरे च किंशीलाकाचऽहंकस्यकन्यका।
तवाऽहं वल्लभा जाता तद्वदस्य ममाऽखिलम्॥३॥

सत्यभामा कहती हैं—मैं धन्य हूं। मैं कृतार्थ हूं। आज मेरा जीवन सफल हो गया। हे देव! मैंने ऐसा कौन-सा दान-व्रत-तप किया था जो मैं मानवी होकर भी आपकी अर्द्धाङ्गिनी हो गयी। जन्मान्तर में मैं किसकी कन्या थी तथा मेरा ऐसा कौन सा उत्तम चरित्र था जो मैं आपकी पत्नी हो गयी? यह सब कृपया कहिये।।२-३।।

श्रीकृष्ण उवाच

शृणुष्वैकमनाः कान्ते! यथा त्वं पूर्वजन्मनि॥४॥
पूण्यव्रतं कृतवतीतत्सर्वं कथयामि ते। आसीत्कृतयुगस्यान्ते मायापुर्यांद्विजोत्तमः॥५॥
आत्रेयो देवशर्मेति वेदवेदाङ्गपारगः। तस्यातिवयसश्चाऽऽसीन्नाम्ना गुणवतीसुता॥६॥
अपुत्रः स स्वशिष्याय चन्दनाम्ने ददौ सुताम्। तमेवपुत्रवन्मेने स च तंपितृवद्वशी॥७॥
तौ कदाचिद्वनं यातौ कुशेध्माहरणार्थिनौ। निहतौरक्षसातौ च कृतान्तसमरूपिणा॥८॥
स्वस्वपुण्यप्रभावेण विष्णुलोकंगताबुभौ। ततोगुणवतीश्रुत्वा रक्षसा निहतावुभौ॥९॥
पितृभर्तृजदुःखार्ता कारुण्यंपर्यदेवयत्। सा गृहोपस्करान्सर्वान्विक्रीयाशुचकर्मतत्॥१०॥
तयोश्चक्रेयथाशक्ति पारलौकींततःक्रियाम्। तस्मिन्नेव पुरे चक्रे वासंसामृतजीवनी॥११॥
व्रतद्वयंतया सम्यगाजन्ममरणात्कृतम्। एकादशीव्रतं सम्यक्सेवनं कार्त्तिकस्यच॥१२॥
इत्थं गुणवती सम्यक्प्रत्यब्दं व्रतिनी ह्यभूत्।
कदाचित्सरुजा साऽथ कृशाङ्गी ज्वरपीडिता॥१३॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे दयिते! तुमने पूर्वजन्म में जो पुण्यव्रत किया था, वह सब तुमसे कहता हूं। एकाग्र होकर सुनो। सत्ययुग के अवसान काल में मायापुरी में एक श्रेष्ठ द्विज निवास करते थे। उनका नाम था देवशर्मा। ये अत्रिगोत्रोत्पन्न थे। वृद्धदेव शर्मा को पुत्र सन्तान नहीं था। उसे गुणवती नामक एक कन्या मात्र थी। देवशर्मा ने अपने शिष्य चन्द्र को अपनी कन्या गुणवती अर्पित किया। वे चन्द्र को पुत्र के समान मानते थे। चन्द्र भी देवशर्मा को पितृवत् मानता था। एक बार चन्द्र तथा देवशर्मा कुश तथा काष्ठ लाने वन में गये। वहां वे दोनों यमरूपी राक्षस द्वारा मारे जाकर अपने-अपने पुण्य प्रभाव से विष्णुलोक चले गये। तब राक्षस के हाथों पिता तथा पति के निधन का समाचार सुनकर गुणवती अत्यन्त विलाप करने लगी। उसने घर के उपकरण आदि का विक्रय कर दिया। उस धन से गुणवती ने पिता तथा पति की श्राद्धादि पारलौकिक क्रिया का समापन करके जीवन्मुक्त के समान उसी पुर में ही निवास करने लगी। वह गुणवती जन्म से मरण पर्यन्त कार्तिक व्रत तथा एकदशी व्रत का सम्यक् आचरण करती रही थी। हे कान्ते! इस प्रकार प्रतिवर्ष सम्यक्तः व्रत करते रहते एक बार व्रतकाल में गुणवती ज्वर तथा रोग से आक्रान्त हो गयी। वह ज्वर पीड़ा से अत्यन्त कृश हो गयी।।४-१३।।

स्नातुं गङ्गां गताकान्तेकथंचिच्छनकैस्तदा। यावज्जलान्तरगताकम्पिताशीतपीडिता॥१४॥
तावत्साविह्वलाऽपश्यद्विमानं यतिमम्बरात्। अथसातद्विमानस्था वैकुण्ठभुवनंययौ॥१५॥
कार्त्तिकव्रतपुण्येन मत्सान्निध्यङ्ताभवत्। अथ ब्रह्मादिदेवानां यदा प्रार्थनया भुवम्॥१६॥

आगतोऽहंगणाः सर्वे यातास्तेऽपिमयासह। एते हि यादवाःसर्वे मद्गणाएवभामिनि॥१७॥

पिता ते देवशर्माऽभूत्सत्राजिदभिधो ह्ययम्।
यश्चन्द्रनामा सोऽक्रूरस्त्वं सा गुणवती शुभा॥१८॥

वह गंगा स्नानार्थ अतिकष्ट पूर्वक धीरे-धीरे जा रही थी। शीतपीड़िता गुणवती जब जल के निकट पहुंची तब वह कांपते-कांपते विह्वल हो गयी। तब उसने आकाश से आते दिव्य विमान को देखा। तदनन्तर गुणवती (मृत होकर) कार्त्तिक व्रत के पुण्य प्रभाव से उस विमान पर आरोहण करके वैकुण्ठ लोक चली गयी। तदनन्तर ब्रह्मादि देवगण की प्रार्थना से जब मैं पृथिवी पर (आविर्भूत) आया, तब मेरे सभी गण भी मेरे साथ आ गये थे। हे भामिनी! ये यादव ही मेरे गण हैं। तुम्हारे पिता देवशर्मा इस समय सत्राजित् रूप से आविर्भूत हुये। यह जो अक्रूर है, यही तुम्हारा पूर्वस्वामी चन्द्र है। तुम ही गुणवती हो।।१४-१८।।

कार्त्तिकव्रतपुण्येन बहुमत्प्रीतिदायिनी। मद्द्वारि यत्त्वयापूर्वं तुलसीवाटिका कृता॥१९॥
तस्मादयं कल्पवृक्षस्तवाङ्गणगतः शुभे!। आजन्ममरणात्पूर्वं यत्कृतंकार्त्तिकव्रतम्।
कदाचिदपि तेन त्वं मद्वियोगं न यास्यसि॥२०॥

तुमने पूर्वजन्म में महापुण्यप्रद कार्त्तिक व्रत करके मेरी अत्यन्त प्रसन्नता वर्द्धित किया था। तुमने मेरे मन्दिर के समक्ष तुलसीकानन स्थापित किया था। इसीलिये तुम अपने आंगन में कल्पवृक्ष देख रही हो। हे प्रिये! तुमने जन्म से मरण तक कार्त्तिक व्रत किया था। इसलिये तुम कदापि मुझसे अलग नहीं रहोगी।।१९-२०।।

सत्योवाच

मासानां तु कथं नाम स मासः कार्त्तिको वरः।
प्रियस्ते देवदेवेश! कारणं तत्र कथ्यताम्॥२१॥

सत्या कहती हैं—हे देवदेवेश! सभी मास में से यह कार्त्तिक क्यों श्रेष्ठ है, किसलिये कार्त्तिक मास आपको प्रिय है? इसका कारण कहिये।।२१।।

श्रीकृष्ण उवाच

साधु पृष्टं त्वया कान्ते शृणुष्वैकाग्रमानसा॥२२॥
पृथोर्वैन्यस्य! सम्वादं महर्षेर्नारदस्य च। एवमेव पुरापृष्टो नारदः पृथुनाऽब्रवीत्॥२३॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे दयिते! तुमने उत्तम प्रश्न किया है। अब एकाग्र होकर सुनो। देवर्षि नारद ने यह सब वेणनन्दन पृथुराज से कहा था। तुमने जैसा प्रश्न किया है, वही प्रश्न पूर्वकाल में देवर्षि नारद से पृथुराज ने किया था। पृथु का प्रश्न सुनकर नारद कहने लगे।।२२-२३।।

नारद उवाच

शङ्खनामाऽभवत्पूर्वमसुरः सागरात्मजः। इन्द्रादिलोकपालानाधिकाराञ्जहार ह॥२४॥
सुवर्णाद्रिगुहादुर्गसंस्थितास्त्रिदशादयः। तद्वीक्षयाम्बभूवुस्ते तदादैत्यो व्यचारयत्॥२५॥

हृताधिकारास्त्रिदशा मया यद्यपि निर्जिताः।
लक्ष्यन्ते बलयुक्तास्ते करणीयं मयाऽत्र किम्।।२६।।
ज्ञातं तत्तु मया देवा वेदमन्त्रबलान्विताः। तान्हरिष्ये ततः सर्वे वलहीना भवन्तिवैं।।२७।।
इति मत्वा ततो दैत्यो विष्णुमालक्ष्य निद्रितम्।
सत्यलोकाज्जहाराऽऽशु वेदानादिस्वयम्भुवः।।२८।।
नीतास्तु तेन ते वेदोस्तद्भयात्तेनिराक्रमन्। तोयानि विविशूर्यज्ञमन्त्रबीजसमन्विताः।।२९।।
तान्मार्गमाणःशङ्खोऽपिसमुद्रान्तर्गतोभ्रमन्। नददर्श तदादैत्यः क्वचिदेकत्रसंस्थितान्।
अथ देवैः स्तुतो विष्णुर्बोधितस्तानुवाचह।।३०।।

देवर्षि नारद कहते हैं—पूर्वकाल में सागर पुत्र शंखासुर ने इन्द्रादि लोकपालों के अधिकार का हरण किया था, तब देवगण ने स्वर्गपर्वत की दुर्गम गुहाओं में शरण लिया। दैत्य शंखासुर ने मन ही मन विचार किया कि यद्यपि मैंने देवगण का राज्य अधिकृत कर लिया है तथा सम्प्रति देवता मेरे द्वारा जीत लिये गये हैं, तथापि देवता तो बली जैसे परिलक्षित हो रहे हैं! अतः अब मेरा क्या कर्त्तव्य है? मैं सोचता हूं कि वेदमन्त्रों से देवगण बली हो रहे हैं। इसलिये वेदों का अपहरण करने से वे बलहीन हो जायेंगे। शंख दैत्य ने यह विचार करके देखा कि विष्णु निद्रित हैं। वेदहरण का यह उत्तम योग है। तब शंखदैत्य सत्यलोक गया तथा उसने ब्रह्मा के पास से वेद का हरण कर लिया। तब से यज्ञ, मन्त्र तथा बीज सम्पन्न वेद दैत्य के हाथों से निकलकर भीतावस्था में सागर जल में प्रविष्ट हो गये। असुर शंख भी वेदों के अन्वेषणार्थ सागर जल में प्रविष्ट हो गया तथा वे वेद नाना स्थानों में विक्षित हो गये थे। असुर शंख ने अनेक प्रकार से प्रयास करके भी वेदों का सन्धान नहीं पाया। उधर देवताओं द्वारा जगाये जाकर तथा स्तुत होकर विष्णु देवगण से कहने लगे।।२४-३०।।

विष्णुरुवाच

वरदोऽहं सुरगणा! गीतवाद्यादिमङ्गलैः।।३१।।
ऊर्जस्य शुक्लैकादश्यां भवद्भिः प्रतिबोधितः।
अतश्चैषा तिथिर्मान्या साऽतीव प्रीतिदा मम।।३२।।
वेदा शङ्खहताःसर्वेतिष्ठन्त्युदकसंस्थिताः। तानानयाम्यहं देवा हत्वा सागरनन्दनम्।।३३।।

विष्णु कहते हैं—"हे देवताओं! तुम सबने कार्तिक मासीय शुक्ला एकादशी के दिन मंगलप्रद गीत वाद्यादि द्वारा मुझे प्रबोधित किया है। इसलिये यह तिथि मुझे अतीव प्रीतिप्रद तथा मान्य है। तुम सब वर मांगो। शंखासुर ने वेदों का हरण किया है। वे सब वेद अब सागर में स्थित हैं। हे देवगण! मैं अभी सागरपुत्र शंखासुर का वध करके सभी वेदों को ले आता हूं।।"।।३१-३३।।

अद्यप्रभृति वेदास्तु मन्त्रबीजसमन्विताः। प्रत्यब्दंकार्त्तिकेमासिविश्रमन्त्वप्सुसर्वदा।।३४।।
कालेऽस्मिन्येप्रकुर्वन्तिप्रातःस्नानंनरोत्तमाः। तेसर्वेयज्ञाऽवभृथैःसुस्नाताःस्युर्नसंशयः।।३५।।
अद्यप्रभृत्यहमपि भवामि जलमध्यगः। भवन्तोऽपि मया सार्द्धमायान्तु समुनीश्वराः।।३६।।

कार्त्तिकव्रतिनां चेन्द्र! रक्षा कार्या त्वया सदा।
इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः शफरीतुल्यरूपधृक्।
खात्पपात जले विन्ध्यवासिनः कस्य पश्यतः॥३७॥
हत्वा शङ्खासुरं विष्णुर्बदरीवनमागमत्। तत्राऽहूय ऋषीन्सर्वानिदमाज्ञापयत्प्रभुः॥३८॥

"आज से मन्त्रबीज युक्त वेद प्रतिवर्ष कार्तिक मास में जल में विश्राम करें। जो श्रेष्ठ मानव इस कार्तिक मास में यथाकाल जल में स्नान करेंगे, उनको यज्ञ के अवभृथ स्नान का फल प्राप्त होगा। इसमें संशय नहीं है। आज से मैं भी इस दिन जल में निवास करूंगा। तुम सब लोग मुनियों के साथ होकर मेरा अनुगमन करो। हे चन्द्रमा! तुम सतत् कार्तिक मास के व्रताचारी लोगों की रक्षा करो।" यह कहकर भगवान् विष्णु ने विन्ध्यवासी ब्रह्मा के सामने ही शफरी मत्स्य का रूप धारण किया तथा उन्होंने आकाश से जल में जाकर शंखासुर का वध किया। तदनन्तर वे शीघ्र बदरीवन आ गये। वहां आकर प्रभु विष्णु ऋषियों से कहने लगे।।३४-३८।।

विष्णुरुवाच

जलान्तरविशीर्णास्तान्यूयंवेदान्प्रमार्गथ। आनयध्वंचत्वरिताः सागरस्यजलान्तरात्।
तावत्प्रयागं तिष्ठामि देवतागणसंयुतः॥३९॥

विष्णु कहते हैं—हे ऋषिगण! सभी वेद जल में रहने के कारण अत्यन्त विशीर्ण हो गये। आप सभी शीघ्रता से जल में प्रवेश करिये तथा वेदों का अन्वेषण करके ले आईये। जब तक आप वापस नहीं आते, तब तक मैं देवगण के साथ प्रयाग में रहूंगा।।३९।।

नारद उवाच

ततस्तैस्सर्वमुनिभिस्तपोबलसमन्वितैः॥४०॥
उद्धृताश्च सबीजास्ते वेदायज्ञसमन्विताः। तेषु यावन्मितंयेनलब्धंतावद्धितस्यतत्॥४१॥
स स एव ऋषिर्जातस्तत्तत्प्रभृतिपार्थिव!। अथ सर्वेऽपि सङ्गम्य प्रयागं मुनयोययुः॥४२॥
विष्णवे सविधात्रे ते लब्धान्वेदान्यवेदयन्।
लब्ध्वा वेदान्समग्रांस्तु ब्रह्मा हर्षसमन्वितः॥४३॥
अजयद्वाजिमेधेन देवर्षिगणसंयुतः। यज्ञान्ते देवताः सर्वे विज्ञप्तिं चक्रुरञ्जसा॥४४॥

देवर्षि नारद कहते हैं—तत्पश्चात् विष्णु के आदेश से तपःबल समन्वित मुनिगण ने यज्ञ तथा मन्त्रबीज सम्पन्न वेदों का सागर से उद्धार किया। उस समय इतःस्ततः विक्षिप्त वेदों को जिस ऋषि ने जितना पाया, वही उसका अपना हो गया। तब से ही वेदसम्पत्ति के अधिकारानुसार ऋषिगण भी प्रथित हो गये। तदनन्तर ऋषिगण एक साथ होकर प्रयाग गये। वहां विष्णु के पास जाकर उनसे प्राप्त वेद का विवरण कहा। तब समग्र वेदों का लाभ करके प्रसन्नमना ब्रह्मा ने देवर्षिगण के साथ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया। यज्ञ समाप्त होने पर देवगण पुनः शीघ्रता से विष्णु के पास आकर कहने लगे।।४०-४४।।

देवा ऊचुः

देवदेवजगन्नाथ! विज्ञप्तिं शृणुनः प्रभो। हर्षकालोऽयमस्माकं तस्मात्त्वं वरदो भव॥४५॥

स्थानेऽस्मिन्द्रुहिणो वेदान्नष्टान्प्राप पुनस्त्वयम्।
यज्ञभागान्वयं प्राप्तास्त्वत्प्रसादाद्रमापते!।।४६।।
स्थानमेतद्धि न श्रेष्ठंपृथिव्यांपुण्यवर्धनम्। भुक्तिमुक्तिप्रदंचाऽस्तुप्रसादाद्भवतः सदा।।४७।।
कालोऽप्ययं महापुण्यो ब्रह्मघ्नाऽऽदिविशुद्धिकृत्।
दत्ताऽक्षयकरश्चास्तु वरमेवं ददस्व नः।।४८।।

देवता कहते हैं—हे देवदेव! आप समस्त जगत् के नाथ हैं। हे प्रभो! हमारा निवेदन सुनें। हमारे आनन्द का दिन आ गया है। अब आप वर प्रदान करिये। हे रमापति! आपकी कृपा से ब्रह्मा को समस्त वेदों की प्राप्ति हो गयी है। हम सबने भी अपने-अपने यज्ञभाग प्राप्त कर लिया। हमने जो अपना-अपना यज्ञभाग प्राप्त किया है, वह युक्तियुक्त है। हे प्रभो! आपकी कृपा से हमारा यह स्थान पुण्यवर्द्धन है। यह पृथिवी में श्रेष्ठ है। यह भुक्ति-मुक्तिप्रद, ब्रह्महत्यादि पाप से विशुद्धि देने वाला, दान के अक्षय फल का जनक तथा महापुण्यप्रद हो जाये। आप हमें यही वर प्रदान करें।।४५-४८।।

विष्णुरुवाच

ममाप्येतद्वृतं देवा यद्भवद्भिरुदाहृतम्। तथास्तु सुलभं त्वेतद्ब्रह्मक्षेत्रमितिप्रथम्।।४९।।
सूर्यवंशोद्भवो राजा गङ्गामत्रानयिष्यति। सासूर्यकन्ययाचाऽत्रकालिन्द्यायोगमेष्यति।।५०।।
यूयं च सर्वे ब्रह्माद्यानिवसन्तु मयासह। तीर्थराजेति विख्यातं तीर्थमेतद्भविष्यति।।५१।।
सर्वपापानि नश्यन्ति तीर्थराजस्य दर्शनात्। सूर्ये मकरगे प्राप्ते स्नायिनां पापनाशनः।।५२।।
कालोऽप्येषमहापुण्यफलदोऽस्तुसदानृणाम्। सालोक्यादिफलंस्नानैर्माघेमकरगेरवौ।।५३।।

श्रीविष्णु कहते हैं—हे देवताओं! आप जो प्रार्थना कर रहे हैं, यह मैं अवश्य प्रदान करूंगा। यह स्थान ब्रह्मक्षेत्र के नाम से जाना जायेगा। सूर्यवंश में जन्मे राजा भगीरथ यहां गंगा को लायेंगे। सूर्यपुत्री यमुना यहीं गंगा से संगम करेंगी। आप लोग ब्रह्मा के साथ मेरे साथ इसी स्थान में निवास करिये। यह सभी तीर्थों में से प्रमुख रहेगा। इस तीर्थराज के दर्शन से प्राणियों के पापपुंजरूप का ध्वंस होगा। माघमास में इस तीर्थ में स्नान करने वाले के पाप विनष्ट होंगे।

यह तीर्थ कालान्तर में मानवगण के लिये महापुण्य फलप्रद होगा। माघमास में मनुष्य यहां तीर्थस्नान करके मेरा सालोक्यादि फल लाभ करेगा।।४९-५३।।

नारद उवाच

एवं देवान्देवदेवस्तदुक्त्वा तत्रैवाऽन्तर्धानमागात्सवेधाः।
देवः सर्वेऽप्यंशकैस्तेऽप्यतिष्ठंश्चान्तर्धानं प्रापुरिन्द्रादयस्ते।।५४।।
कार्त्तिकेतुलसीमूलेयोऽर्चयेद्धरिमीश्वरम्। भुक्त्वेहनिखिलान्भोगानन्तेविष्णुपुरंव्रजेत्।।५५।।

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे सत्यभामापूर्वजन्मवृत्तान्तकथनपूर्वकप्रयागतीर्थ प्रशंसाप्रसङ्गवर्णनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

देवर्षि नारद कहते हैं—भगवान् विष्णु इस प्रकार देवगण से कह कर ब्रह्मा के साथ अन्तर्हित् हो गये। तब इन्द्रादि देवगण भी वहां अपने-अपने अंश रक्षित करके अन्तर्हित् हो गये। जो मनुष्य कार्त्तिक मास में तुलसी मूल में भक्ति के साथ श्रीहरि की पूजा करते हैं, वे पृथिवी पर समस्त भोगों को भोगकर अंत में विष्णुलोक गमन करते हैं।।५४।।

।।त्रयोदश अध्याय समाप्त।।

चतुर्दशोऽध्यायः

जलंधर की उत्पत्ति का वर्णन

पृथुरुवाच

यत्त्वया कथितंब्रह्मन्व्रतमूर्जस्यविस्तरात्। तत्रयातुलसीमूलेविष्णोःपूजात्वयोदिता।।१।।
तेनाऽहं प्रष्टुमिच्छामि माहात्म्यं तुलसीभवम्।
कथं साऽतिप्रिया तस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः।।२।।
कथमेषासमुत्पन्ना कस्मिन्स्थाने च नारदः। एवं ब्रूहिसमासेन सर्वज्ञोऽसि मतो मम।।३।।

राजा पृथु कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आपने कार्त्तिक व्रत तथा तुलसी मूल में विष्णु पूजा का वर्णन विस्तारपूर्वक कहा। अब तुलसी माहात्म्य के सम्बन्ध में मेरी जिज्ञासा है कि तुलसी देवदेव शार्ङ्गधर विष्णु को कैसे इतनी प्रिय हैं? हे नारद! किस स्थान पर कैसे तुलसी का जन्म हुआ? आप सर्वज्ञ हैं। अतः संक्षेप में इन सब विषय का वर्णन करिये।।१-३।।

नारद उवाच

शृणुराजन्नवहितो माहात्म्यं तुलसीभवम्। सेतिहासंपुरावृत्तंतत्सर्वं कथयामि ते।।४।।
पुरा शक्रः शिवंद्रष्टुमगात्कैलासपर्वतम्। सर्वदेवैः परिवृतो ह्यप्सरोगणसेवितः।।५।।
यावद्गतः शिवगृहं तावत्तत्र स दृष्टवान्। पुरुषंभीमकर्माणं दंष्ट्रांऽऽननविभीषणम्।।६।।
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भोः क्व गतो जगदीश्वरः। एवंपुनःपुनः पृष्टःसतदानोक्तवान्नृप!।।७।।
ततः क्रुद्धो वज्रपाणिस्तं निर्भर्त्स्य वचोऽब्रवीत्।
रे मया पृच्छ्यमनोऽपि नोत्तरं दत्तवानसि।।८।।
अतस्त्वांहन्मिवज्रेणकस्तेत्राताऽस्तिदुर्मते। इत्युदीर्यततोवज्रीवज्रेणाऽभ्यहनद्दृढम्।।९।।
तेनाऽस्यकण्ठो नीलत्वमगाद्वज्रं चभस्मताम्। ततो रुद्रः प्रजज्वाल तेजसाप्रदहन्निव।।१०।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे राजन्! अवहित चित्त से तुलसी का माहात्म्य सुनिये। इस विषय में एक प्राचीन इतिहास आपसे कहता हूं। पूर्वकाल में सभी देवगण के साथ अप्सराओं से सेवित इन्द्र शंकर के दर्शनार्थ कैलास आये। वे शिवगृह तक पहुंचे थे कि तभी वहां भीषण दाढ़ वाले वीभत्सवदन एक पुरुष को देखकर उससे पूछा "तुम कौन हो? जगदीश्वर कहां गये हैं? हे राजन्! इन्द्र के बारम्बार पूछने पर भी उस पुरुष ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब इन्द्र क्रोधित हो गये तथा उन्होंने वज्र उठाकर उस पुरुष की भर्त्सना करते हुये कहा—"हे दुर्मुख! मैं बारम्बार तुमसे पूछ रहा हूं, तथापि तुम कोई उत्तर नहीं दे रहे हो। इसलिये मैं वज्र से तुम्हारा वध करूंगा। देखता हूं कि कौन तुम्हारी रक्षा करेगा।" इन्द्र ने यह गर्वपूर्ण वाक्य कहा तथा वज्र का दृढ़ प्रहार उस पुरुष पर किया, तथापि इस वज्र प्रहार से उसकी कोई हानि नहीं हो सकी, केवल उसका कण्ठ नीलवर्ण हो गया था। लेकिन इन्द्र का वज्र तत्क्षण भस्म हो गया। इसी के अनन्तर रुद्र अपने तेज द्वारा मानो सब कुछ दग्ध करते प्रत्यक्ष हो गये।।४-१०।।

दृष्ट्वा बृहस्पतिस्तूर्णं कृताञ्जलिपुटोऽभवत्। इन्द्रं च दण्डवद्भूमौकृत्वास्तोतुंप्रचक्रमे।।११।।

यह देखकर देवगुरु बृहस्पति ने शीघ्रतापूर्वक इन्द्र को भूमि पर दण्डवत् मुद्रा में गिरने का आदेश दिया। बृहस्पति स्वयं बद्धाञ्जलि होकर (हाथ जोड़कर) स्तव करने लगे।।११।।

बृहस्पतिरुवाच

नमोदेवाधिपतये त्र्यम्बकाय कपर्दिने। त्रिपुरघ्नाय शर्वाय नमोऽन्धकनिषूदिने।।१२।।
विरूपायाऽतिरूपाय बहुरूपाय शम्भवे। यज्ञविध्वंसकर्त्रे च यज्ञानां फलदायिने।।१३।।
कालान्तकाय कालाय कालभोगिधराय च। नमो ब्रह्मशिरोहन्त्रे ब्राह्मणायनमोनमः।।१४।।

बृहस्पति कहते हैं—हे कपर्दिन्! आप देवों के अधिपति हैं। हे त्रिनयन! आपने त्रिपुर का ध्वंस किया था। अन्धकासुर आप द्वारा विमर्दित हुआ था। हे शर्व! आपको प्रणाम! आप विरूप, अतिरूप, बहुरूप हैं। हे शम्भु! आपने दक्षयज्ञ विध्वंस किया था। आप यज्ञों का फल प्रदान करते हैं। आप काल के भी अन्तक रूप हैं। कालसर्प आपका आभूषण है। हे काल! आपको प्रणाम! आपने ब्रह्मा के शिर को नष्ट किया था। हे ब्राह्मण! आपको प्रणाम!।१२-१४।।

नारद उवाच

एवं स्तुतस्तदा शम्भूर्धिषणेन जगाद तम्। संहरन्नयनज्वालां त्रिलोकीदहनक्षमाम्।।१५।।
वरं वरय भो ब्रह्मन्प्रीतः स्तुत्याऽनया तव। इन्द्रस्यजीवदानेनजीवेति त्वं प्रथांव्रज।।१६।।

नारद कहते हैं—बृहस्पति द्वारा स्तुत होकर भगवान् शंकर ने त्रैलोक्य का दहन कर सकने में सक्षम अपनी नयनाग्नि को शान्त करके कहा—"हे ब्रह्मन्! मैं आपके इस प्रकार के स्तुति वाक्य से प्रसन्न हो गया। सम्प्रति वर मांगिये। इन्द्र को जीवन दान दिलाकर आप 'जीव' नाम से प्रख्यात हो जायें।।१५-१६।।

बृहस्पतिरुवाच

यदि तुष्टोऽसि देव! तु पाहीन्द्रं शरणागतम्। अग्निरेष शमं यातु भालनेत्रसमुद्भवः।।१७।।

बृहस्पति कहते हैं—हे देव! यदि आप प्रसन्न हैं, तब शरणागत इन्द्र की रक्षा करिये। आप अपने भालस्थ नेत्र से समुद्भूत अग्नि को शान्त करिये।।१७।।

ईश्वर उवाच

पुनः प्रवेशमायाति भालनेत्रे कथं शिखी। एनं त्यक्ष्याम्यहंदूरे यथेन्द्रं नैव पीडयेत्।।१८।।

ईश्वर शिव कहते हैं—यदि मैं इस नयनाग्नि को एकबारगी शान्त करता हूं, तब यह अग्नि मेरे तृतीय नेत्र में पुनः कैसे आयेगी? अतएव मैं इसे एक बारगी प्रशमित न करके इस प्रकार से इसका दूर से त्याग करूंगा, जिससे इन्द्र को कोई पीड़ा न हो।।१८।।

नारद उवाच

इत्युक्त्वा तं करेधृत्वाप्राक्षिपल्लवणार्णवे। सोऽपतत्सिन्धुगङ्गायाः सागरस्यचसङ्गमे।।१९।।
तावत्स बालरूपत्वमगात्तत्र रुरोद च। रुदतस्तस्य शब्देन प्राकम्पद्धरणी मुहुः।।२०।।
स्वर्गाद्याः सत्यलोकान्तास्तत्स्वनाद् बधिरीकृताः।
श्रुत्वा ब्रह्मा ययौ तत्र किमेतदिति विस्मितः।।२१।।
तावत्समुद्रस्योत्सङ्गे तं बालं स ददर्श ह।
दृष्ट्वाब्रह्माणमायान्तं समुद्रोऽपिकृताञ्जलिः।।२२।।
प्रणम्यशिरसा बालंतस्योत्सङ्गेन्यवेशयत्। भोब्रह्मन्सिन्धुगङ्गायांजातोऽयंममपुत्रक।
जातकर्माऽऽदिसंस्कारान्कुरुष्वाऽद्य जगद्गुरो!।।२३।।

देवर्षि नारद कहते हैं—शंकर ने यह कहकर हथेली में उस नेत्राग्नि को धारण किया तथा उसे लवण समुद्र में छोड़ दिया। तब यह नयनाग्नि सिन्धु-गंगा नदी में जा पड़ी तथा उसने वहां पड़ते ही बालरूप से रुदन प्रारंभ कर दिया। बालक की रुदन ध्वनि से धरती पुनः-पुनः कम्पित होने लगीं। स्वर्गादि से लेकर सत्यलोक पर्यन्त सभी लोक मानो इस शब्द से वधिर होने लगे। ब्रह्मा उस भीषण रुदन ध्वनि को सुनकर यह चिन्ता करने लगे कि यह कैसा भीषण घटनाक्रम घटित हो रहा है? वे यह विचार करते हुये विस्मित हो उठे। उन्होंने सागर पर जाकर समुद्र के क्रोड़ में स्थित उस बालक को देखा। तब समुद्र ने भी वहां समागत ब्रह्मा का दर्शन पाकर अंजलिबद्ध मुद्रा में ब्रह्मा को प्रणाम करके बालक को ब्रह्मा की गोद में देकर कहा—"हे ब्रह्मन्! यह शिशु सिन्धु-गंगा से समुद्भुत है। यह मेरा पुत्र है। हे जगद्गुरु! आप अब इसका जातकर्मादि समस्त संस्कार सम्पन्न करिये।।१९-२३।।

नारद उवाच

इत्थं वदति पाथोधौ स बालः सागरात्मजः।।२४।।
ब्रह्माणमग्रहीत्कूर्चे विधुन्वंस्तं मुहुर्मुहुः। धुन्वतस्तस्य कूर्चे तु नेत्राभ्यामगमज्जलम्।
कथञ्चिन्मुक्तकूर्चोऽथ ब्रह्मा प्रोवाच सागरम्।।२५।।

नारद कहते हैं—सागर के द्वारा यह कहे जाने पर उस शिशु ने ब्रह्मा को अपने भ्रूमध्य में धारण कर

लिया। तब वह पुनः-पुनः कम्पित होने लगा। कम्पित हो रहे ब्रह्मा के नयनद्वय से जल गिर गया। ब्रह्मा ने अत्यन्त कष्ट से स्वयं को शिशु के भ्रूमध्य से मुक्त किया तथा सागर से कहने लगे।।२४-२५।।

ब्रह्मोवाच

नेत्राभ्यां विधृतं यस्मादनेनैतज्जलं मम। तस्माज्जलन्धर इतिख्यातो नाम्नाभविष्यति।।२६।।
अनेनैवैष तरुणः सर्वशस्त्रास्त्रपारगः। अवध्यः सर्वभूतानां विनारुद्रं भविष्यति।
यत एष समुद्भूतस्तत्रैवाऽन्तं गमिष्यति।।२७।।

ब्रह्मा कहते हैं—इस बालक ने मुझे नेत्रद्वय में धारण किया था। अतएव यह जलंधर नाम से प्रसिद्ध होगा। इस कारण यह शिशु समस्त अस्त्र-शस्त्र में पारंगत होगा। यह रुद्र को छोड़कर सब प्राणीगण से अवध्य रहेगा। यह जहां से उद्भूत हुआ है, वहीं विलय को प्राप्त होगा।।२६-२७।।

नारद उवाच

इत्युक्त्वा शुक्रमाहूयराज्येतंचाभ्यपेचयेत्। आमन्त्र्यसरितांनांथंब्रह्मान्तर्धानमागतम्।।२८।।
अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनः सागरस्तदा। कालनेमिसुतां वृन्दां मद्भार्यार्थमयाचत।।२९।।
ते कालनेमिप्रमुखास्ततोऽसुरास्तस्मै सुतां तां प्रददुःप्रहर्षिताः।
स चापि ताम्प्राप्य सुहृद्वरां वशां शशास गां शुक्रसहायवान्बली।।३०।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे जलन्धरोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।४।।

नारद कहते हैं—तदनन्तर ब्रह्मा ने शुक्र को बुलाकर उनके द्वारा बालक को असुरराज के पद पर प्रतिष्ठित क ़्या। तदनन्तर सरित्पति से विदा लेकर वहीं अन्तर्हित् हो गये। ऐसा पुत्र पाकर उत्फुल्ल नेत्र सागर ने समय आने पर कालनेमि की कन्या वृन्दा को जलन्धर की पत्नीरूप में कालनेमि से मांगा। कालनेमि आदि प्रमुख असुरगण ने प्रसन्नचित्त से जलंधर को अपनी कन्या वृन्दा अर्पित किया। बलवान् जलन्धर भी वृन्दा को प्राप्त कर शुक्राचार्य की सहायता से पृथिवी पालन करने लगा।।२८-३०।।

।।चतुर्दश अध्याय समाप्त।।

पञ्चदशोऽध्यायः

जलन्धर द्वारा विजय प्राप्ति

नारद उवाच

ये देवैर्निर्जिताः पूर्वं दैत्याः पातालसंस्थिताः।
तेऽपि भमण्डलं याता निर्भयास्तमुपाश्रिताः॥१॥

कदाचिच्छिन्नशिरसं राहुं दृष्ट्वा स दैत्यराट्। पप्रच्छभार्गवंतत्र तच्छिरश्छेदकारणम्॥२॥
स शशंस समुद्रस्य मथनं देवकारितम्। रत्नापहरणंचैव दैत्यानाञ्च पराभवम्॥३॥
स श्रुत्वा क्रोधरक्ताक्षः स्वपितुर्मथनं तदा। दूतं सम्प्रेषयामास घस्मरं शक्रसन्निधौ॥४॥
दूतस्त्रिविष्टपं गत्वा सुधर्मां प्राविशद्वराम्। जगादाखर्वमौलिस्तुदेवेन्द्रं वाक्यमद्भुतम्॥५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—पूर्वकाल में देवताओं द्वारा जीते गये जिन सब दैत्यों ने पाताल का आश्रय लिया था, वे जलन्धर का आश्रय लेकर भूमण्डल पर आ गये। दैत्यराज जलन्धर ने एक बार राहु को छिन्न शिर वाला देखकर गुरु से राहु के शिरच्छेद का कारण पूछा। तब शुक्र ने जलन्धर से देवगण कृत समुद्रमन्थन, रत्नापहरण, दैत्यों के पराभव का वर्णन किया। अपने पिता सागर के मंथन का वृत्तान्त सुनकर जलन्धर के नेत्रद्वय क्रोध से आरक्त हो गये। तब जलन्धर ने इन्द्र के पास घस्मर नाम दूत को भेजा। घस्मर ने देवलोक जाकर मनोरम देवसभा में प्रवेश किया तथा उन्नत मस्तक होकर देवेन्द्र से इस प्रकार का अद्भुद् वाक्य कहने लगा।।१-५।।

घस्मर उवाच

जलन्धरोऽब्धितनयः सर्वदैत्यजनेश्वरः। दूतोऽहं प्रेषितस्तेन स यदाह शृणुष्वतत्॥६॥
कस्मात्त्वया ममपिता मथितःसागरोऽद्रिणा। नीतानिसर्वरत्नानितानिशीघ्रंप्रयच्छमे॥७॥
इति दूतवचः श्रुत्वाविस्मितस्त्रिदशाधिपः। उवाच घस्मरं रौद्रं भयरोषसमन्वितः॥८॥

घस्मर कहता है—सिन्धु पुत्र जलन्धर दैत्यों के ईश्वर हैं। मैं उनका दूत हूं। मैं यहां उनके द्वारा भेजा गया हूं। अब उन्होंने जो कुछ कहा है उसे सुनो। "तुमने पर्वत द्वारा मेरे पिता का मंथन क्यों किया था? तुम सबने जितने रत्न समुद्र में से निकाले थे, वे सब रत्न शीघ्र मुझे प्रदान करो।" देवराज इन्द्र दूत का वाक्य सुनकर विस्मित हो गये। उन्होंने भय तथा क्रोध समन्वित होकर उस दूत से यह भीषण वाक्य कहा।।६-८।।

इन्द्र उवाच

शृणुदूतमयापूर्वमथितःसागरोयथा। अद्रयोमद्भयात्त्रस्ताःस्वकुक्षिस्थाःकृतास्तथा॥९॥
अन्येऽपिमद्द्विषस्तेन रक्षिता दितिजाः पुरा। तस्माद्यत्तत्रजातंतुमयाप्यपहृतं किल॥१०॥
शङ्खोऽप्येवं पुरादेवानद्विषत्सागरात्मजः। ममाऽनुजेन निहतः प्रविष्टःसागरोदरम्।
तद्गच्छ कथयस्वाऽस्य सर्वं मथनकारणम्॥११॥

इन्द्र कहते हैं—हे दूत! मैंने पूर्वकाल में सागर मन्थन क्यों किया था, वह कारण सुनो। पूर्वकाल में जब पर्वतगण मेरे भय त्रस्त हो गये थे, तब सागर ने ही इन पर्वतों को अपने कोख में छिपाया था। सागर ने मेरे अत्यन्त शत्रु अन्य असुरों को भी अपने अन्दर छिपा कर रक्षा किया था। इसी कारण से मैंने सागर से उत्पन्न रत्नादि का अपहरण किया। सागरपुत्र शंख भी पूर्वकाल में देवगण से शत्रुता रखता है। तब मेरे अनुज विष्णु ने सागर में प्रवेश किया था तथा उसका वध किया था। अतः तुम जलन्धर के पास जाकर सागर मन्थन के इन कारणों को उससे कहो।।९-११।।

नारद उवाच

इत्थं विसर्जितो दूतस्तदेन्द्रेणाऽगमद्भुवम्॥१२॥
तदिदं वचनं सर्वं दैत्यायाऽकथयत्तदा। तन्निशम्य तदा दैत्योरोषात्प्रस्फुरिताऽधरः॥१३॥
दैत्यसेना समायुक्तो ययौयोद्धुं त्रिविष्टपम्। ततोयुद्धे महाञ्जातो देवदानवसंक्षयः॥१४॥
तत्र युद्धे मृतान्दैत्यान्भार्गवस्तूदतिष्ठपत्।
विद्यया मृतजीविन्या मन्त्रितैस्तोयबिन्दुभिः॥१५॥
देवानपि तथायुद्धे तत्राऽजीवयदङ्गिराः। दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेःसपुनःपुनः॥१६॥
दृष्ट्वा देवांस्तथा युद्धे पुनरेव समुत्थितान्। जलन्धरःक्रोधवशोभार्गवंवाक्यमब्रवीत्॥१७॥

देवर्षि नारद कहते हैं—इन्द्र ने यह कहकर दूत को विदा किया। तब दूत पृथिवी पर आया तथा दैत्यराज जलंधर से इन्द्र द्वारा कहे वक्तव्य को दैत्यराज को बतलाया। दूत का वाक्य सुनकर जलन्धर के अधरोष्ठ क्रोध से फड़कने लगे। दैत्यराज तभी असुर सैन्य के साथ युद्धार्थ स्वर्ग पहुंचा। इस युद्ध में अनेक देवता तथा दैत्य सेना वाले निहत होने लगे। जैसे एक ओर शुक्राचार्य मृत संजीवनी विद्या द्वारा अभिमंत्रित जलविन्दु से मृत दैत्यों को पुनर्जीवित कर रहे थे, तदनुरूप बृहस्पति भी द्रोण पर्वत की दिव्यौषधियों द्वारा पुनः-पुनः मृत सुरसैन्य को संजीवित करते जा रहे थे। इस प्रकार पुनः-पुनः मृत सुरसैन्य के देवताओं को जीवित होता देखकर जलन्धर क्रोधित होकर शुक्र से कहने लगा।।१२-१७।।

जलन्धर उवाच

मयायुद्धे हता देवा उत्तिष्ठन्ति कथं पुनः। तव सञ्जीवनीविद्यानवाऽन्यत्रेतिविश्रुतम्॥१८॥

जलन्धर कहता है—मैं पुनः-पुनः देवगण को युद्ध में निहत कर रहा हूं, तथापि ये किस प्रकार से उठ जा रहे हैं? संजीवनी विद्या तो एकमात्र आपको ही प्राप्त है। यह अन्य कोई जानता हो, ऐसा मुझे नहीं लगता!।।१८।।

शुक्र उवाच

दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेरङ्गिराःसुरान्। जीवयत्येवतच्छीघ्रंद्रोणाद्रिंत्वमपाहर॥१९॥

शुक्र कहते हैं—हे असुरराज! बृहस्पति द्रोण पर्वत से दिव्यौषधियां लाकर देवगण को जीवित कर देते हैं। अतः शीघ्र द्रोण पर्वत का हरण करो।।१९।।

नारद उवाच

इत्युक्तः स तु दैत्येन्द्रो नीत्वाद्रोणाचलं तदा। प्राक्षिपत्सागरेतूर्णपुनरागान्महाहवम्।।२०।।
अथ देवान्हतान्दृष्ट्वा द्रोणाद्रिमगमद्गुरुः। तावत्तत्रगिरीन्द्रं तु न ददर्श सुरार्चितः।।२१।।
ज्ञात्वा दैत्यहृतंद्रोणंधिषणोभयविह्वलः। आगत्यदूराद्व्याजह्रेश्वासाऽऽकुलितविग्रहः।।२२।।
पलायध्वं हवाद्देवा नाऽयं जेतुं क्षमोयतः। रुद्रांशसम्भवोह्येष स्मरध्वंशक्रचेष्टितम्।।२३।।
श्रुत्वा तद्वचनं देवा भयविह्वलितास्तदा। दैत्येन वध्यमानास्ते पलायन्ते दिशोदश।।२४।।

देवर्षि नारद कहते हैं—तब जलन्धर ने शुक्राचार्य का आदेश पाकर द्रोण पर्वत को समुद्र में छोड़ा, तदनन्तर वह पुनः युद्ध करने लगा। तत्पश्चात् देवताओं को समरभूमि में मृत होते देखकर देवपूजित बृहस्पति द्रोणाचल की ओर गये। लेकिन पहले जहां वह पर्वत था, वहां उनको द्रोणपर्वत दिखलाई नहीं पड़ा। तब बृहस्पति को यह ज्ञात हो सका कि इस पर्वत का हरण जलंधर ने किया है। यह जानकर बृहस्पति भयविह्वल हो गये और दीर्घ श्वास छोड़ते व्याकुल चित्त होकर समरभूमि से दूर खड़े होकर कहने लगे। "हे देवगण! भाग जाओ। तुम जलंधर पर विजयी नहीं हो सकते। यह असुर रुद्रांश से उत्पन्न है। हे देवताओं! तुम सब याद करो कि जब इन्द्र ने कैलास पर वज्र प्रहार किया था, तभी यह बालकरूप असुर उत्पन्न हुआ था।" देवगण बृहस्पति का कथन सुनकर भयकातर हो गये। वे दैत्यों के द्वारा मारे जाने के भय से दशों दिशाओं में पलायन कर गये।।२०-२४।।

देवान्विद्रावितान्दृष्ट्वा दैत्यैः सागरनन्दनः। शङ्खभेरीजयरवैः प्रविवेशाऽमरावतीम्।।२५।।
प्रविष्टेनगरीं दैत्ये देवाःशक्रपुरोगमाः। सुवर्णाद्रिगुहांप्राप्ता न्यवसन्दैत्यतापिताः।।२६।।
ततश्च सर्वेष्वसुरोऽधिकारेष्विन्द्रादिकानां विनिवेशयत्तदा।
शुम्भादिकान्दैत्यवरान्पृथक्पृथक्स्वयं सुवर्णाद्रिगुहामगात्पुनः।।२७।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमास-
माहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे जलन्धरविजयप्राप्तिर्नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

जब जलन्धर ने देवताओं को अपने सैन्य द्वारा विमर्दित तथा पलायित होते देखा, तब उसने सैन्य के साथ शंख-भेरी तथा जयजयकार के साथ अमरावती में प्रवेश किया। जब जलंधर ने स्वर्ग में प्रवेश कर लिया, तब दैत्यों से त्रसित इन्द्रादि देवता स्वर्णपर्वत की कन्दराओं में जाकर रहने लगे। इधर जलन्धर ने शुंभ आदि असुरों को इन्द्रादि के स्थान पर पृथक्-पृथक् स्थापित किया तथा स्वयं स्वर्णपर्वत की गुफाओं के पास पहुंचा।।२५-२७।।

।।पञ्चदश अध्याय समाप्त।।

षोडशोऽध्यायः

विष्णु जलन्धर संग्राम, विष्णु का सागर निवास, जलन्धर की सभा में नारद का आना

नारद उवाच

पुनदत्यं समायान्तं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः। भयप्रकम्पिताः सर्वे विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमुः॥१॥

नमो मत्स्यकूर्मादिनानास्वरूपैः सदा भक्तकार्योद्यतायाऽऽर्तिहन्त्रे।
विधात्रादिसर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे गदाशङ्खपद्मारिहस्ताय तेऽस्तु॥२॥
रमावल्लभायाऽसुराणां निहन्त्रे भुजङ्गारियानाय पीताम्बराय।
मखादिक्रियापाककर्त्रे विकर्त्रे शरण्याय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः॥३॥
नमो दैत्यसन्तापितामर्त्यदुःखाचलध्वंसदम्भोलये विष्णवे ते।
भुजङ्गेशतल्पेशयायाऽर्कचन्द्रद्विनेत्राय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः॥४॥

देवर्षि नारद कहते हैं—जब इन्द्र तथा देवगण ने असुरपति जलन्धर को पुनः आते देखा, तब वे भयकम्पित होकर विष्णु स्तव करने लगे। देवगण कहते हैं—जो मत्स्य-कूर्म आदि अनेक रूप से आविर्भूत होकर सतत् भक्तों का कार्य साधन करने के लिये उद्यत होते हैं। जो विधातारूपेण सृष्टि-स्थिति तथा प्रलयकारी हैं, जो गदा, शंख, पद्म तथा चक्रों को हाथों में धारण करते हैं, हम उन आर्त्ति का हरण करने वाले हरि को प्रणाम करते हैं।

जो कमलावल्लभ, असुरहन्ता, गरुड़वाहन, पीतवस्त्रधारी, यज्ञादि के फलदाता, विकर्त्ता तथा शरण्य हैं, उनको हम पुनः-पुनः प्रणाम करते हैं।

जो दैत्यों से सन्तापित देवगण के दुःखरूपी पर्वत का ध्वंस करने के लिये वज्ररूप हैं,. जो शेषशय्याशायी हैं, चन्द्र तथा सूर्य जिनके नेत्रद्वय हैं, हम उन विष्णु को प्रणाम करते हैं।।१-४।।

नारद उवाच

संकष्टनाशनं नाम स्तोत्रप्रेतत्परेन्नरः। सकदाचिन्न सङ्कष्टैः पीठ्यते कृपया हरेः॥५॥
इति देवाः स्तुतिं याद्वत्प्रकुर्वन्ति दनुजद्विषः। तावत्सुराणामापत्तिर्विज्ञाताः विष्णुना तदा॥६॥
सहसोत्थाय दैत्यारिः सक्रोधः खिन्नमानसः। आरूढोगरुडंवेगाल्लक्ष्मींवचनमब्रवीत्॥७॥

देवर्षि नारद कहते हैं—जो मनुष्य संकटनाशन नामक इस विष्णु स्तव का पाठ करते हैं हरि कृपा से वे कदापि संकटों से पीड़ित नहीं होते। जब दनुजों के शत्रु देवताओं ने विष्णु की आराधना इस प्रकार स्तुति वाक्यों से किया, तब विष्णु सुरगण की विपत्ति को जानकर उठ गये तथा रोष में भरकर दैत्य निहन्ता हरि खिन्न मन से शीघ्रता से गरुड़ पर बैठकर लक्ष्मीदेवी से कहने लगे।।५-७।।

श्रीभगवानुवाच

जलन्धरेण ते भ्रात्रा देवानां कदनं कृतम्। तैराहूतो गमिष्यामियुद्धायाद्यत्वरान्वितः॥८॥

श्री भगवान् कहते हैं—तुम्हारा भाई जलंधर देवगण को पीड़ित कर रहा है। मैं देवगण द्वारा बुलाया जाकर युद्धार्थ शीघ्रतापूर्वक जा रहा हूं।।८।।

श्रीरुवाच

अहं ते वल्लभा नाथ भक्त्या च यदि सर्वदा। तत्कथं ते ममभ्रातायुद्धवध्यः कृपानिधे॥९॥

भगवती लक्ष्मी कहती हैं—हे नाथ! मैं तो भक्तिपूर्वक सदैव आपके प्रिय कार्य को करती रहती हूं। आप द्वारा मेरा भाई जलन्धर युद्ध में कैसे वध्य हो गया?।।९।।

श्रीभगवानुवाच

रुद्रांशसम्भवत्वाच्च ब्रह्मणो वचनादपि। प्रीत्या च तवनैवाऽयं मम वध्यो जलन्धरः॥१०॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे देवी! यह जलंधर रुद्रांश से उत्पन्न हुआ है। ब्रह्मा ने भी इसे रुद्र के अतिरिक्त अन्य सबसे अवध्य किया है। विशेषतः तुम्हारी प्रिय कामना के लिये मैं इसका वध नहीं करूंगा।।१०।।

नारद उवाच

इत्युक्त्वा गरुडारूढः शङ्खचक्रगदासिभृत्। विष्णुर्वेगाद्ययौयोद्धुंयत्रदेवाःस्तुवन्तिते॥११॥

अथाऽरुणानुजात्युग्रपक्षवातप्रपीडिताः ।
वात्याविमर्दिता दैत्या बभ्रमुः खे यथा घनाः॥१२॥
ततो जलन्धरो दृष्ट्वा दैत्यान्वात्याप्रपीडितान्।
उद्वृत्तनयनः क्रोधात्ततो विष्णुं समभ्ययात्॥१३॥

ततः समभवद्युद्धं विष्णुदैत्येन्द्रयोर्महत्। आकाशं कुर्वतोर्बाणैस्तदा निरवकाशवत्॥१४॥

विष्णुर्दैत्यस्यबाणौघैर्ध्वजं छत्रं धनुर्हयान्। चिच्छेद तं चहृदये बाणेनैकेन ताडयत्॥१५॥

नारद कहते हैं—तदनन्तर शंख-चक्र-गदा-खड्गधारी गरुड़ासीन विष्णु अतिवेगूपर्वक युद्धार्थ वहां पहुंचे, जहां देवता उनका स्तव कर रहे थे। अरुण के अनुज गरुड़ के पंखों के कारण उड़ रहे तीव्र वायु की भी चपेट से असुरगण वैसे चतुर्दिक् फेके जाने लगे जैसे आकाश में वायु के प्रहार से मेघगण विच्छिन्न हो जाते हैं। तब जलन्धर दैत्यों को वायु से पीड़ित होता देखकर क्रोधपूर्वक नेत्रों को घुमाता विष्णु के सामने आ पहुंचा। विष्णु तथा उस दैत्यराज के बीच भयानक युद्ध छिड़ गया। दैत्यराज ने बाण वर्षा द्वारा आकाश को ढक सा दिया। उधर विष्णु ने भी बाणों की वर्षा से दैत्यराज का ध्वज-छत्र-धनुष तथा घोड़ों का छेदन कर दिया। विष्णु ने एक बाण से दैत्यराज के हृदय को विद्ध कर दिया।।११-१५।।

ततो दैत्यः समुत्पत्य गदापाणिस्त्वरान्वितः। आहत्यगरुडंमूर्ध्निपातयामासभूतले॥१६॥

विष्णुर्गदां स्वखड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव। तावत्सहृदये विष्णुं जघानदृढमुष्टिना॥१७॥

ततस्तौ बाहुयुद्धेन युयुधाते महाबलौ। बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव जानुभिर्नादयन्महीम्॥१८॥
एवं तौ सुचिरं युद्धं कृत्वा विष्णुः प्रतापवान्। उवाच दैत्यराजानं मेघगम्भीरनिःस्वनः॥१९॥

तत्पश्चात् दैत्य शीघ्रतापूर्वक गदा उठाकर विष्णु के समक्ष आया। उसने वहां आते ही गरुड़ के मस्तक पर गदा प्रहार किया जिससे गरुड़ भूतल पर गिर पड़े। विष्णु ने हंसते हुये अपनी तलवार से उसकी गदा को काट दिया। तब दैत्य ने विष्णु के हृदय पर अपनी कठोर मुष्टि से प्रहार कर दिया। तदनन्तर महाबली असुर और विष्णु के बीच बाहुयुद्ध प्रारंभ हो गया। कभी वे एक दूसरे की बाहु को अपनी बाहु से खींचते, मुष्ठिका द्वारा निवारित करते, कभी अपने जानु का प्रहार विपक्षी की जानु पर करते। इस प्रकार वे पृथिवी को निनादित करते युद्ध में प्रवृत्त हो जाते। विष्णु तथा दैत्य के बीच इस प्रकार का युद्ध दीर्घकाल तक चल रहा था। तब प्रतापी विष्णु मेघगंभीर स्वर में दैत्यराज से कहने लगे।।१६-१९।।

विष्णुरुवाच

वरम्वरयदैत्येन्द्र प्रीतोऽस्मि तव विक्रमात्। अदेयमपि ते दद्मिं यत्ते मनसि वर्तते॥२०॥

विष्णु कहते हैं—हे दैत्येन्द्र! तुम्हारा विक्रम देखकर मैं प्रसन्न हो गया। अब तुम वर मांगो। यदि तुम अदेय वर भी मांगोगे, तब भी मैं वह प्रदान करूंगा।।२०।।

जलन्धर उवाच

यदि भावुक! तुष्टोऽसि वरमेनं ददस्व मे। मद्भगिन्या सहाऽद्यत्वं मद्गृहेसगणोवस॥२१॥

जलंधर कहता है—हे भावुक! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तब मुझे यह वर दीजिये कि मेरी बहन तथा अपने गणों के साथ आप मेरे गृह में निवास करिये।।२१।।

नारद उवाच

तथेत्युक्त्वा स भगवान्सर्वदेवगणैः सह। तदा जलन्धरपुरमगमद्रमया सह॥२२॥
जलन्धरस्तु देवानामधिकारेषु दानवान्। स्थापयित्वा महाबाहुः पुनरागान्महीतलम्॥२३॥
देवगन्धर्वसिद्धेषु यत्किञ्चिद्रत्नसंयुतम्। तदात्मवशगं कृत्वाऽतिष्ठत्सागरनन्दनः॥२४॥
पातालभुवने दैत्यं निशुम्भं स महाबलम्। स्थापयित्वा सशेषादीनानयद्भूतलंबली॥२५॥
देवगन्धर्वसिद्धाद्यान्सर्पराक्षसमानुषान्। स्वपुरे नागरान्कृत्वा शशास भुवनत्रयम्॥२६॥

नारद कहते हैं—भगवान् विष्णु ने कहा "यही हो" और वे देवगण के साथ लक्ष्मी के साथ जलन्धर की नगरी में आ गये। महाबाहु सागर पुत्र जलन्धर ने देवताओं का अधिकार जहां था वहां दानवों को प्रतिष्ठित किया तथा पुनः भूतल पर आ गया। देवता-गन्धर्व तथा सिद्धगण के पास जो कुछ रत्नादि था, वह सब उसने अपने वश में कर लिया तथा इस भांति निवास करने लगा। जलंधर ने पातालपुरी में महाबली निशुंभ को स्थापित किया तथा संकर्षण आदि को भूतल पर ले आया। उसने देवता-गन्धर्व-सिद्ध-सर्प-राक्षस तथा मनुष्यों को अपने नगर में नागरिक रूप से प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार जलन्धर त्रिभुवन का शासन करने लगा।।२२-२६।।

एवं जलन्धरः कृत्वा देवान्स्ववशवर्तिनः। धर्मेणपालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान्॥२७॥

न कश्चिद्व्याधितो नैव दुःखी नैव कृशस्तथा।
न दीनो दृश्यते तस्मिन्धर्माद्राज्यं प्रशासति॥२८॥
एवं महीं शासति दानवेन्द्रे धर्मेण सम्यक्च दिदृक्षयाऽहम्।
कदाचिदागामथ तस्य लक्ष्मीं विलोकितुं श्रीरमणञ्च सेवितुम्॥२९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे जलन्धरसभायां नारदाऽऽगमनवर्णनंनाम षोडशोऽध्यायः॥१६॥

जलन्धर धर्मपथ पर चलने वाला था। उसने इस प्रकार से देवगण को अपने वश में किया तथा प्रजावर्ग का पालन अपने पुत्र की तरह करने लगा। दैत्यराज जलन्धर धर्मतः राज्य शासन करता था, अतः उसके राज्य में प्रजा व्याधियुक्त, दुःखी, कृश अथवा दीन नहीं रहती थी। दानवेन्द्र इस प्रकार से धर्म द्वारा सम्यक्तः पृथिवी का पालन कर रहा था, यह सुनकर मुझे भी उसका राज्य दर्शन करने की इच्छा होने लगी। तब मैं एक बार जलन्धर की राज्यलक्ष्मी का दर्शन करने तथा श्रीपति के सेवा करने के लिये वहां गया॥२७-२९॥

॥षोडश अध्याय समाप्त॥

सप्तदशोऽध्यायः

नारद दैत्य संवाद, शिव से राहु की प्रार्थना

नारद उवाच

स मां प्रोवाच विधिवत्सम्पूज्याऽतीव भक्तिमान्।
सम्प्रहस्य तदा वाक्यं स्नेहपूर्वं च वै नृप!॥१॥
कुतआगम्यतेब्रह्मन्किञ्चिद्दृष्टंत्वया प्रभो!। यदर्थमिहचाऽऽयातस्तदाऽऽज्ञापयमां मुने॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे नृप! भक्तिमान जलन्धर ने मुझे देखकर विधिपूर्वक मेरा पूजन किया तथा हंसते हुये स्नेहपूर्ण वाक्य से मुझसे कहने लगा—"हे ब्रह्मन्! आप कहां से आ रहे हैं? आपको देखकर यह प्रतीत हो रहा है कि आप किसी विस्मयकारी घटना को देखकर आ रहे हैं। हे मुनिवर! आपका यहां किस निमित्त से आगमन हुआ है, वह कहिये॥१-२॥

नारद उवाच

गतः कैलाशसिखरं दैत्येन्द्राहं यदृच्छया। तत्रोमया समासीनं दृष्टवानस्मि शङ्करम्॥३॥

योजनायुतविस्तीर्णे कल्पवृक्षमहावने। कामधेनुशताकीर्णे चिन्तामणिसुदीपिते॥४॥
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मयो मेऽभवत्तदा। क्वाऽपीदृशी भवेद्वद्धिस्त्रैलोक्येवानवेतिच॥५॥

तदा तवाऽपि दैत्येन्द्र! समृद्धिः संस्मृता मया।
तद्विलोकनकामोऽस्मि त्वत्सान्निध्यमिहाऽऽगतः॥६॥
त्वत्समृद्धिमिमां पश्यन्स्त्रीरत्नरहितां ध्रुवम्।
तर्कयामि शिवादन्यस्त्रिलोक्यां न समृद्धिमान्॥७॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे दैत्यराज! मैं स्वेच्छापूर्वक कैलास गया था। वहां मैंने उमा के साथ आसीन भगवान् शंकर का दर्शन किया। वह स्थान १०००० योजन विस्तृत है। सर्वत्र कल्पतरु का महावन वहां विद्यमान है। सैकड़ों कामधेनु से वह वन भरा हुआ है। वह वन चिन्तामणि के प्रकाश से प्रदीप्त है। मैंने उस महाविस्मयपूर्ण कानन को देखा। तदनन्तर मैं सोचने लगा—त्रिलोक में ऐसी समृद्धि और कहां है? तभी तुम्हारी समृद्धि की बातें मेरे स्मृतिपथ में उदित होने लगीं। इसीलिये मैं उन सम्पत्तियों के दर्शनार्थ तुम्हारे यहां आया हूं। अब तुम्हारी समृद्धि को देखकर यह प्रतीत हो रहा है कि शिव के अतिरिक्त समृद्धिशाली कोई नहीं है। क्योंकि तुम्हारी समृद्धि तो स्त्रीरूपी रत्न से रहित जो है।।३-७।।

अप्सरोनागकन्याद्यायद्यपित्वद्वशेस्थिताः। तथाऽपितात पार्वत्या रूपेणसदृशाध्रुवम्॥८॥
यस्या लावण्यजलधौ निमग्नश्चतुराननः। स्वधैर्यममुचत्पूर्वं तया काऽन्योपमीयते॥९॥
वीतरागोऽपि हि यथा मदनारिःस्वलीलया। सौन्दर्यगहनेऽभ्रामि शफरीरूपया पुरा॥१०॥

यस्या पुनः पुनः पश्यन्रूपं धाताऽपि सर्जने।
ससर्जाऽप्सरसस्तासां तत्समैकाऽपि नाभवत्॥११॥

अतःस्त्रीरत्नसम्भोक्तुःसमृद्धिस्तस्यसावरा। तथा नतव दैत्येन्द्रसर्वरत्नाऽधिपस्यच॥१२॥
एवमुक्त्वा तमामन्त्र्य गते सति स दैत्यराट्। तद्रूपश्रवणादासीदनङ्गज्वरपीडितः॥१३॥

यद्यपि अप्सरा-नागकन्या आदि तो तुम्हारे वश में हैं, तथापि वे निःसंदिग्ध रूप से पार्वती जैसी सुन्दरी नहीं हैं। पूर्वकाल में जिनके लावण्य समुद्र में निमग्न होकर चतुरानन ब्रह्मा भी धैर्य से च्युत हो गये थे, उन रूपवती पार्वती के साथ किस रमणी की उपमा दी जाये? पूर्वकाल में काम शत्रु हर ने भी मानों शफरी मछली का रूप धारण करके लीलावशात् गिरिजारूपी सौन्दर्य जल में विचरण किया था। विधाता ब्रह्मा ने भी सृष्टिकाल में उनका रूप बारम्बार देखकर अप्सरागण का सृजन किया था, तथापि उन ब्रह्मा की इस रूप सृष्टि की बात क्या करूं? एक भी अप्सरा गौरी के समान रूपवती नहीं है। हे दैत्येन्द्र! यद्यपि तुम समस्त रत्नों के अधिपति हो, तथापि सम्भोग विषय में तो शिव की ही समृद्धि श्रेष्ठतर है। तुम्हारी सम्भोग सम्पत्ति श्रेष्ठ नहीं है।'' दैत्यपति जलन्धर से यह सम्भाषण करने के अनन्तर नारद वहां से चले गये तथापि वह दानवराज जलन्धर उस रूप श्रवण के कारण काम ज्वर से पीड़ित हो गया।।८-१३।।

अथ समप्रेषयामास सदूतं सिंहिकासुतम्।
त्र्यम्बकायाऽपि च तदा विष्णुमायाविमोहितः॥१४॥

कैलासमगमद्राहुः कुर्वञ्छुक्लेन्दुवर्चसम्। कार्ष्ण्येन कृष्णुपक्षेन्दुवर्चसंस्वाङ्गजेनतम्॥१५॥
निवेदितस्तदेशाय नन्दिना प्रविवेश सः। त्र्यम्बकभ्रूलतासञ्ज्ञाप्रेरितोवाक्यमब्रवीत्॥१६॥

तदनन्तर विष्णु माया से मोहित दैत्यपति जलन्धर ने त्रिलोचन महादेव के पास दूतरूप में राहु दैत्य को भेजा। राहु शीघ्रता से कैलास पहुंचा। उसके गमन काल में उसके अंग के कृष्णवर्ण से शुक्लपक्षीय चन्द्रमा के समान कान्तिवाला कैलास पर्वत भी कृष्णपक्ष के चन्द्रमा के समान मलिन लगने लगा। जब राहु वहां द्वार पर पहुंचा तब नन्दी ने राहु के आगमन का संवाद शिव को प्रदान किया। भगवान् का आदेश पाकर नन्दी राहु को शिव के पास लाये। शिव ने जब राहु को देखा तब उन्होंने अपनी भ्रूमंगी के इशारे से उसे वक्तव्य विषय कहने का संकेत दिया, तब राहु कहने लगा।।१४-१६।।

राहुरुवाच

देवपन्नगसेव्यस्य त्रैलोक्याधिपतेः प्रभोः। सर्वरत्नेश्वरस्य त्वमाज्ञां श्रृणु वृषध्वज!॥१७॥
श्मशानवासिनो नित्यमस्थिभारवहस्य च। दिगम्बरस्यते भार्याकथं हैमवतीशुभा॥१८॥
अहं रत्नाधिनाथोऽस्मि सा च स्त्रीरत्नसञ्ज्ञिका।
तस्मान्ममैव सा योग्या नैव भिक्षाशिनस्तव॥१९॥

राहु कहता है—हे वृषध्वज! त्रैलोक्यपति मेरे स्वामी दैत्यराज जलन्धर की सेवा देवता तथा पन्नगादि सदा करते रहते हैं। वे समस्त रत्नों के अधीश्वर हैं। अब उनका आदेश सुने। "आप सतत् श्मशान में रहते हैं तथा अस्थिभार वहन करते रहते हैं। साथ ही आप दिगम्बर हैं। अतः शोभना हैमवती गिरिजा किस प्रकार से आपकी पत्नी हो सकती हैं? मैं ही एक मात्र समस्त रत्नों का अधीश्वर हूं। हिमालय पुत्री भी रमणीरत्न हैं। अतएव हैमवती गिरिजा मेरे ही योग्य हैं। वे भिक्षाभोगी आपके लिये वे कदापि योग्य नहीं हैं—"।।१७-१९।।

नारद उवाच

वदत्येवं तदाराहौ भ्रूमध्याच्छूलपाणिनः। अभवत्पुरुषो रौद्रस्तीव्राशनिसमस्वनः॥२०॥
सिंहास्यः प्रललज्जिह्वःस ज्वलन्नययोमहान्। ऊर्ध्वकेशः शुष्कतनुर्नृसिंहइवचाऽपरः॥२१॥
स तं खादितुमायान्तं दृष्ट्वाराहुर्भयातुरः। अधावत स वेगेन बहिः स च दधार तम्॥२२॥
स च राहुर्महाबाहो मेघगम्भीरयागिरा। उवाच देवदेवत्वं पाहि मां शरणागतम्॥२३॥
ब्राह्मणं मां महादेव! खादितुं समुपागतः। महादेवोवचःश्रुत्वाब्राह्मणस्यतदाऽब्रवीत्॥२४॥
नैवाऽसौ वध्यतामेतिदूतोऽयंपरवान्यतः। मुञ्चेति पुरुषः श्रुत्वा राहुंतत्याजसोऽम्बरे।
राहुं त्यक्त्वाऽथ पुरुषस्तदा रुद्रं व्यजिज्ञपयत्॥२५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—जब राहु यह कह रहा था तभी शूलपाणि प्रभु के भ्रूमध्य से वज्र के समान एक रौद्र पुरुष उत्पन्न हो गया। उसका मुख सिंह के समान था। उसकी जिह्वा लपलपा रही थी। नयन अग्निवत् उज्वल थे। उसके केश ऊर्ध्व में उठे हुये थे, शरीर कृशकाय था। अधिक क्या कहूं। वह व्यक्ति मानो द्वितीय नृसिंहरूप प्रादुर्भूत लग रहा था। यह पुरुष राहु के भक्षणार्थ उद्यत हो गया। उसे अपनी ओर आते देखकर

भयातुर राहु वहां से बाहर भाग गया। उस भीषण पुरुष ने वेग पूर्वक राहु का पीछा किया तथा कुछ आगे जाकर राहु को पकड़ लिया। महाबाहु राहु उस पुरुष से आक्रान्त होकर मेघगंभीर स्वर में कहने लगा "हे देवदेव! मैं आपका शरणागत हूं। आप मेरी रक्षा करिये। हे महादेव! मैं कश्यप का पुत्र ब्राह्मण हूं। यह पुरुष मेरा ग्रास करना चाह रहा है।" तब महादेव ने ब्राह्मण राहु का कातर वाक्य सुनकर उस भीषण से कहा कि "यह व्यक्ति दूत होने के कारण पराधीन है। इसलिये अवध्य है। तुम इसे छोड़ दो।" उस पुरुष ने महादेव का आदेश सुनकर आकाशपथ में राहु को त्याग दिया तथा रुद्रदेव से कहने लगा।।२०-२५।।

पुरुष उवाच

क्षुधा मां बाधतेऽत्यन्तंक्षुत्क्षामश्चास्मिसर्वथा। किं भक्षयामिदेवेशतदाज्ञापयमांप्रभो।।२६।।

पुरुष कहता है—" हे देवेश! क्षुधा मुझे अत्यन्त पीड़ा दे रही है। मैं सर्वदा भूखा हूं। हे प्रभो! मैं क्या खाऊं, कृपया आज्ञा दीजिये।।२६।।

ईश्वर उवाच

भक्षयस्वाऽऽत्मनः शीघ्रं मांसं त्वं हस्तपादयोः।।२७।।

ईश्वर कहते हैं—तुम शीघ्र अपने हाथ तथा पैर के मांस का भक्षण करो।।२७।।

नारद उवाच

स शिवेनैवमाज्ञप्तश्चखाद पुरुषः स्वकम्। हस्तपादोद्भवंमांसं शिरःशेषोयथाऽभवत्।।२८।।
दृष्ट्वा शिरोऽवशेषं तं सुप्रसन्नस्तदा शिवः। उवाच भीमकर्माणं पुरुषञ्जातविस्मयः।।२९।।

नारद कहते हैं—उस पुरुष ने शिव आदेशानुरूप अपने हाथ तथा पैर को इस प्रकार खाया जिससे उसका शिर मात्र बच गया। जब शिव ने उसका मस्तक मात्र बचा देखा, तब वे अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने विस्मयान्वित होकर उस पुरुष को आदेश दिया।।२८-२९।।

ईश्वर उवाच

त्वं कीर्तिमुखसञ्ज्ञोहिभवमद्द्वारिगःसदा। त्वदर्चां ये न कुर्नन्ति नैवतेमेप्रियङ्कराः।।३०।।

ईश्वर कहते हैं—"तुम कीर्त्तिमुख नाम से विदित होंगे। तुम सतत् मेरे द्वार पर स्थित रहो। जो तुम्हारी पूजा नहीं करेगा, वह कदापि मेरी कृपा प्राप्त नहीं कर सकेगा।।३०।।

नारद उवाच

तदाप्रभृति देवस्य द्वारिकीर्त्तिमुखः स्थितः। नार्चयन्तीह ये पूर्वं तेषामर्चावृथाभवेत्।।३१।।
राहुर्विमुक्तो यस्तेन सोऽपि तद्बर्बरेस्थले। अतः स बर्बरोद्भूतइति भूमौप्रथांगतः।।३२।।
ततः स राहुः पुनरेव जातमात्मानमस्मिन्निति मन्यमानः।
समेत्य सर्वं कथयाम्बभूव जलन्धरायैव विचेष्टितं तत्।।३३।।

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे कार्त्तिकमाससमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे जलन्धरोपाख्याने दूतवाक्यकथनंनाम सप्तदशोऽध्यायः।।१७।।

नारद कहते हैं—तब से देवदेव द्वार पर कीर्त्तिमुख स्थित रहते हैं। जो व्यक्ति देवदेव की अर्चना के पहले इन कीर्त्तिमुख की पूजा नहीं करता, उसकी पूजा व्यर्थ है। राहु बर्बक नामक स्थान में इस पुरुष के आक्रमण से मुक्त हुये थे। तभी राहु का पृथिवी पर बर्बरोद्भूत नाम प्रसिद्ध है। तदनन्तर राहु ने स्वयं को नवजीवन प्राप्त मान लिया। जलंधर के समीप आकर उन्होंने कैलास पर्वतस्थ समस्त घटित समाचार कहा।।३१-३३।।

।।सप्तदश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टादशोऽध्यायः

रुद्रसेना पराभव

नारद उवाच

जलन्धरस्तुतच्छ्रुत्वाकोपाकुलितविग्रहः। निर्जगामाऽऽशुदैत्यानांकोटिभिःपरिवारितः।।१।।

गच्छतोऽस्याऽग्रतः शुक्रो राहुर्दृष्टिपथेऽभवत्।
मुकुटश्चाऽपतद्भूमौ वेगात्प्रस्खलितस्तदा।।२।।

दैत्यसैन्याऽऽवृतैस्तस्य विमानानां शतैस्तदा। व्यराजत नभःपूर्णं प्रावृषीवयथाघनैः।।३।।

तस्योद्योगं तदा दृष्ट्वादेवाःशक्रपुरोगमाः। अलक्षितास्तदाजग्मुःशूलिनं तं व्यजिज्ञपुः।।४।।

नारद कहते हैं—दूत का वाक्य सुनकर दैत्यराज जलन्धर समस्त शरीर रोषपूर्वक आकुल हो उठा। वह करोड़ों दानवगण से घिरकर असुरराज जलन्धर शीघ्र ही युद्धार्थ चला गया। दैत्यराज के आगे-आगे शुक्र चल रहे थे। राहु उनका पथ प्रदर्शित कर रहा था। जलन्धर अतीव वेगपूर्वक चल रहा था। इस वेग से उसके शिर से मुकुट स्खलित हो गया तथा भूमि पर गिर पड़ा। अगणित दैत्य सेना से घिरे हुये शत-शत विमान वर्षाकालीन जलधर के समान नभोमण्डल को पूर्ण करके शोभा पाने लगे। तब इन्द्रादि प्रमुख देवता उसके इस उद्योग को देखकर अलक्षित भाव से शूलपाणि शंकर की शरण में गये तथा उनसे निवेदन करने लगे।।१-४।।

देवा ऊचुः

न जानासि कथंस्वामिन्देवापत्तिमिमांविभो। तदस्मद्रक्षणार्थायजहिसागरनन्दनम्।।५।।

देवगण कहते हैं—हे स्वामी! पता नहीं देवगण के लिए कैसी विपत्ति उपस्थित हो गई है? हे प्रभो! हमारी रक्षा के लिये जलन्धर का वध करिये।।५।।

नारद उवाच

इति देववचः श्रुत्वा प्रहस्य वृषभध्वज!। महाविष्णुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत्।।६।।

नारद कहते हैं—वृषध्वज ने देवगण का निवेदन सुनकर हास्य के साथ महाविष्णु को बुलाकर कहा।।६।।

ईश्वर उवाच

जलन्धरः कथं विष्णो! न हतः सङ्गरे त्वया।
तद् गृहं चाऽपि यातोऽसि त्यक्त्वा वैकुण्ठमात्मनः।।७।।

ईश्वर कहते हैं—हे विष्णु! आपने जलन्धर का वध युद्धकाल में क्यों नहीं किया? आप वैकुण्ठ का त्याग करके उसके घर में क्यों रहते हैं?।।७।।

विष्णुरुवाच

तवांशसम्भवत्वाच्चभ्रातृत्वाच्चतथा श्रियः। न मया निहतःसङ्ख्येत्वमेनंजहिदानवम्।।८।।

विष्णु कहते हैं—जलन्धर आपके अंश से उत्पन्न है। यह पहला कारण है। दूसरा कारण यह है कि वे मेरी प्रिय पत्नी लक्ष्मी का बड़ा भाई है। अतः मैंने उस असुर का वध नहीं किया।।८।।

ईश्वर उवाच

नायमेभिर्महातेजाः शस्त्रास्त्रैर्वध्यते मया। देवैः सहस्वतेजोंशं शस्त्रार्थं दीयतां मम।।९।।

ईश्वर कहते हैं—मैं भी इन सब अस्त्र-शस्त्र से महातेजस्वी जलन्धर का वध नहीं कर सकता। हे विष्णु! शस्त्र निर्माणार्थ आप अन्य देवगण के साथ अपना भी तेज मुझे अर्पित करिये।।९।।

नारद उवाच

अथविष्णुमुखादेवाःस्वतेजांसिददुस्तदा। तान्यैक्यमागतानीशोदृष्ट्वा स्वंचामुचन्महः।।१०।।
तेनाऽकरोन्महादेवो सहसा शस्त्रमुत्तमम्। चक्रं सुदर्शनंनाम ज्वालामालातिभीषणम्।।११।।
ततः शेषेण च तदा वज्रंच कृतवान्हरिः। तावज्जलन्धरो दृष्टः कैलासतलभूमिषु।।१२।।
हस्त्यश्वरथपत्नीनां कोटिभिः परिवारितः। तं दृष्ट्वा लक्षिताजग्मुर्देवाःसर्वेयथागताः।।१३।।

गणाश्च समसज्जन्त युद्धायाऽतित्वरान्विताः।
नन्दीभवक्त्रसेनानीमुखाः सर्वे शिवाज्ञया।।१४।।

अवतेरुर्गणा वेगात्कैलासाद्युद्धदुर्मदाः। ततः समभवद्युद्धं कैलासोपत्यका भुवि।।१५।।
प्रमथाधिपदैत्यानां घोरशस्त्रास्त्रसङ्कुलम्। भेरीमृदङ्गशंखौघनिःस्वनैर्वीरहर्षणैः।।१६।।
गजाश्वरथशब्दैश्च नादिता भूर्व्यकम्पत। शक्तितोमरबाणौघमुसलप्रासपट्टिशैः।।१७।।
व्यराजतः नभः पूर्णमुल्काभिरिवसम्वृतम्। निहतरथनागाश्वपत्तिभिर्भूर्व्यराजत।।१८।।

नारद कहते हैं—तदनन्तर इस तेज समूह के एकत्र हो जाने पर शिव ने वहां अपना भी तेज छोड़ा। शिव ने इस प्रकार उस तेजराशि के द्वारा तत्क्षण ज्वालामालायुक्त सुदर्शन नामक उत्तम शस्त्र वह चक्र निर्मित किया। तदनन्तर जैसे जलन्धर कोटि-कोटि हस्ती, अश्व, रथ तथा पैदल सेना से घिर कर कैलास पर्वत की

घाटी में आया, उसी प्रकार त्वरान्वित देवगण भी यह देखकर अपने-अपने गण के अन्तर्गत युद्धार्थ सज्जित होकर उसके सामने पहुंचे। शिव का आदेश पाकर नन्दी आदि प्रमुख युद्ध दुर्मद सेनापतिगण अपने-अपने गणों के साथ कैलास शिखर से प्रचण्ड वेग से उतरे। तब कैलास शैल की उपत्यका भूमि पर घोर देवासुर संग्राम छिड़ गया। उस समरभूमि में दैत्य तथा प्रमथपतिगण घोरतर अस्त्र-शस्त्र से समाकुल हो गये। वीरगण के हर्षोत्पादक भेरी, मृदङ्ग, शंख, गज, अश्व तथा रथ शब्द से निनादित होकर भूमितल कम्पित होने लगा। वीरगण के द्वारा छोड़ी गयी शक्ति, तोमर, बाण, मूषल, प्रास तथा पट्टिशयुक्त आकाश परिपूर्ण हो गया। मानो आकाश उल्का से भर गया हो। भूमि तल पर भी उसी प्रकार से मारे गये गज, अश्व, सेना तथा रथ समूह भीषण रूप धारण कर रहे थे।।१०-१८।।

वज्राहताचलशिरःशकलैरिवसम्वृता। प्रमथाहतदैत्यौघैर्दैत्याहतगणैस्तथा।।१९।।
वसासृङ्मांसपङ्काढ्या भूरगम्याऽभवत्तदा। प्रमथाहतदैत्यौघान्भार्गवः समजीवयत्।।२०।।
युद्धे पुनः पुनस्तत्र मृतसञ्जीविनीबलात्। तंदृष्ट्वा व्याकुलीभूतागणाःसर्वेभयान्विताः।
शशंसुर्देवदेवाय तत्सर्वं शुक्रचेष्टितम्।।२१।।
अथ रुद्रमुखात्कृत्या बभूवाऽतीवभीषणा। तालजङ्घा दरीवक्त्रा स्तनापीडितभूरुहा।।२२।।
सा युद्धभूमिमासाद्यभक्षयन्तीमहासुरान्। भार्गवं स्वभगे धृत्वा जगामान्तर्हितानभः।।२३।।

प्रमथगण द्वारा मारे गये दैत्य तथा दैत्यों द्वारा मारे गये प्रमथगण भूमि पर पड़े थे। मानो वज्र से आहत शैलखण्ड समूह पड़े हों। इनसे समरभूमि आच्छादित हो उठी थी। उस समय समर में पतित सेनागण की वसा, शोणित तथा मांस के कीचड़ से युद्धभूमि अगम्य हो गयी थी। उस समय प्रमथगण द्वारा पुनः-पुनः जो सब असुर सेना मर रही थी, मृत संजीवनी मन्त्रबल से भार्गवशुक्र उनको सम्यक् रूप से जीवित कर देते थे। देवगण शुक्र का यह कार्य देखकर भय से आकुलित हृदय होकर देवाधिदेव शिव के पास गये। उन्होंने शिव से शुक्र द्वारा आचरित सभी कार्यों का वर्णन किया। तब रुद्रदेव के (शिव के) मुख से एक अतीव भीषणाकृति कृत्या आविर्भूत हो गयी। इस कृत्या का जघन प्रदेश ताल वृक्ष जैसा था। गाल गिरिगुहा के समान थे। उसके स्तनद्वय इतने विशाल थे जिसके कारण जब वह चलती थी तब वृक्ष टकराने लगते। कृत्या वहां समरभूमि में पहुंची और वह वहां महासुरगण का भक्षण करने लगी, तदनन्तर भार्गव शुक्र को अपने भग प्रदेश में दबाकर आकाश में अन्तर्हित् हो गयी।।१९-२३।।

विधृतं भार्गवं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यं गणास्तदा। अम्लानवदना हर्षान्निजघ्नुर्युद्धदुर्मदाः।।२४।।
अथाऽभज्यत दैत्यानां सेना गणभयार्दिता। वायुवेगेनाहतेवप्रकीर्णा तृणसन्ततिः।।२५।।
भग्नाङ्गणभयात्सेनां दृष्ट्वाऽमर्षयुता ययुः।
निशुम्भशुम्भौ सेनान्यौ कालनेमिश्च वीर्यवान्।।२६।।
त्रयस्ते वारयामासुर्गणसेनां महाबलाः। मञ्चन्तः शरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकाः।।२७।।

युद्धदुर्मद देवसेनागण कृत्या द्वारा भार्गव का हरण होते देखकर अम्लान मुख हो गये तथा प्रसन्न अन्तःकरण द्वारा असुर सैन्य का वध करने लगे। तदनन्तर देवतागण के भय से अत्यन्त पीड़ित दानव सैन्यगण

वायु से आहत हो रहे तृण समूह की तरह भग्न होने लगे। तब प्रमथगण के भय से भग्न अपनी सेना को देखकर दानव सेनानायकगण अमर्ष में भर गये तथा शुम्भ, निशुम्भ प्रभृति वीर्यवान् कालनेमि के तीनों सेनापति वहां पहुंचे और वर्षाकालीन मेघ जैसे जलवर्षा करते हैं, तदनुरूप अगणित शर वर्षा करने लगे। इस प्रकार उन्होंने प्रमथगण की सेना को रोक दिया।।२४-२७।।

ततो दैत्यशरौघास्ते शलभानामिव व्रजाः। रुरुधुः खं दिशःसर्वा गणसेनामकम्पयन्।।२८।।
गणाः शरशतैर्भिन्ना रुधिरासारवर्षिणः। वसन्ते किंशुकाभासा न प्राज्ञायत किञ्चन।।२९।।
पतिताः पात्यमानाश्च भिन्नाश्छिन्नास्तदा गणाः।
त्यक्त्वा सङ्ग्रामभूमिं ते सर्वेऽपि विमुखाऽभवन्।।३०।।
ततः प्रभग्नं स्वबलं विलोक्य शैलादिलम्बोदरकार्त्तिकेयाः।
त्वरान्विता दैत्यवरान्प्रसह्य निवारयामासुरमर्षिणस्ते।।३१।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे जलन्धरोपाख्याने रुद्रसेनापराभवोनामाऽष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

तदनन्तर इन तीन दैत्यों ने शरवृष्टि द्वारा प्रमथगणों की सेना को कम्पित कर दिया तथा बाणों से आकाश तथा सभी दिशाओं को आच्छन्न कर दिया। असुरगण के सैकड़ों बाणों से विद्ध प्रमथगणों के देह से रुधिर की धारा प्रवाहित होने लगी। वे पलाशपुष्पवत् रक्ताभ होकर स्थित थे। उस समय उनमें तनिक भी चेतनास्फूर्त्ति नहीं बची थी। गणसेनाओं के भूपतित होने के कारण तथा देह के छिन्न-भिन्न होते रहने के कारण सभी देवपक्षीय लोग समरभूमि त्यागकर युद्धविमुख होने लगे। नन्दी, गणपति, कार्त्तिकेय अपनी सेना को भग्न होते देखकर शीघ्रतापूर्वक असुर सैन्य के सम्मुख आकर उनका वध करने लगे।।२८-३१।।

।।अष्टादश अध्याय समाप्त।।

एकोनविंशोऽध्यायः

वीरभद्र पतन वर्णन

नारद उवाच

ते गणाधिपतीन्दृष्ट्वा नन्दीभमुखषणमुखान्। अमर्षादभ्यधावन्त द्वन्द्वयुद्धाय दानवाः।।१।।
नन्दिनं कालनेमिश्च शुम्भो लम्बोदरं तथा। निशुम्भः षणमुखंवेगादभ्यधावतदंशितः।।२।।
निशुम्भःकार्त्तिकेयस्य मयूरं पञ्चभिः शरैः। हृदि विव्याध वेगेन मूर्च्छितःसपपातच।।३।।

ततः शक्तिधरः शक्तिं यावज्जग्राहरोषितः। तावन्निशुम्भोवेगेन स्वशक्त्यातमपातयत्॥४॥
नन्दीश्वरः शरव्रातैः कालनेमिमवध्यत। सप्तभिश्चहयान्केतुं त्रिभिः सारथिमच्छिनत्॥५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—गणाधिपति नन्दी, गणपति तथा कार्त्तिकेय के समरभूमि में आने पर दुर्मद दानवगण अमर्ष में भर गये तथा द्वन्द्व युद्ध करने दौड़ पड़े। तब युद्ध सज्जा से सज्जित होकर कालनेमि नन्दी से, शुम्भ लम्बोदर गणेश से तथा निशुम्भ षडानन कार्त्तिकेय से युद्ध करने लगे। निशुम्भ ने वेगगामी पञ्चवाण से षडानन वाहन मयूर का हृदय विद्ध किया, जिससे वह पृथिवी पर गिर पड़ा। तदनन्तर रोषपूर्ण होकर शक्तिधारी कार्त्तिकेय के शक्ति उठाते-उठाते निशुम्भ ने प्रचण्ड वेग द्वारा अपनी शक्ति से उसे गिरा दिया। नन्दीश्वर बाणों से कालनेमि पर प्रहार करने लगे। उन्होंने सात बाण द्वारा कालनेमि के रथ के अश्व तथा पताका को और तीन बाण से उसके सारथी का शिरच्छेद कर दिया।।१-५।।

कालनेमिस्तु संक्रुद्धो धनुश्चिच्छेद नन्दिनः। तदपास्य स शूलेनतं वक्षस्यहनद्बली॥६॥
स शूलभिन्नहृदयो हताश्वो हतसारथिः। अद्रेःशिखरमामुच्यशैलादिं सोऽप्यपातयत्॥७॥
अथ शुम्भो गणेशश्च रथमूषकवाहनौ। युध्यमानौ शरव्रातैः परस्परमविध्यताम्॥८॥
गणेशस्तु तदा शुम्भं हृदि विव्याध पत्रिणा। सारथिं च त्रिभिर्बाणैः पातयामास भूतले॥९॥

कालनेमि ने भी क्रोधित होकर नन्दी का धनुष भग्न कर दिया। तब बली नन्दी ने धनुष त्याग कर शूल से उनका हृदय भेदन कर दिया। विदग्ध हृदय, अश्व तथा सारथी रहित निशुम्भ ने तब एक शैल शिखर फेंककर नन्दी को नीचे गिरा दिया। तदनन्तर रथ वाहन शुम्भ तथा मूषिक वाहन गणेश आपस में बाणों की वर्षा द्वारा युद्ध प्रवृत्त हो गये और एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। तब गणेश ने बाण से शुंभ का हृदय बिद्ध करके तीन बाणों से उसके सारथी को भूतल पर गिरा दिया।।६-९।।

ततोऽतिक्रुद्धः शुम्भोऽपि वाणषष्ट्या गणाधिपम्।
मूषकञ्च त्रिभिर्विद्ध्वा ननाद जलदस्वनः॥१०॥
मूषकः शरभिन्नाङ्गश्चचाल दृढवेदनः। लम्बोदरश्च पतितः पदातिरभवन्नृप॥११॥
ततो लम्बोदरः शुम्भं हत्वा परशुना हृदि। अपातयत्तदा भूमौ मूषकञ्चारुहत्पुनः॥१२॥
कालनेमिर्निशुम्भश्चाऽप्युभौलम्बोदरंशरैः। युगपज्जघ्नतुः क्रोधात्तोत्रैरिव महाद्विपम्॥१३॥
तम्पीड्यमानमालोक्य वीरभद्रो महाबलः। अभ्यधावत वेगेन भूतकोटियुतस्तदा॥१४॥

तदनन्तर महाक्रोधित शुम्भ भी साठ बाणों से गणेश को तथा तीन बाणों से उनके वाहन मूषिक को आहत करके मेघ के समान गर्जन करने लगा। शरविद्ध मूषिक अत्यन्त वेदना के कारण विचलित हो गया। गणपति भूतल पर गिर गये। वे वाहनरहित हो गये। तब गणपति ने अपने परशु से शुम्भ का हृदय विद्ध कर दिया। जब शुम्भ परशु के आघात से भूपतित हो गया, तब गणपति पुनः मूषिक पर बैठ गये। इसके अनन्तर कालनेमि और निशुम्भ गणपति को बाणों से विद्ध करने लगे। कालनेमि तथा निशुम्भ नामक दानवद्वय अंकुश से एक साथ ही गणपति पर उस तरह प्रहार करने लगे, जैसे महागज पर प्रहार किया जाता है। उस समय गणपति को इस प्रकार पीड़ित देखकर महाबली वीरभद्र करोड़ों भूतगण के साथ प्रचण्ड वेग से असुरों की ओर दौड़ पड़े।।१०-१४।।

कूष्माण्डभैरवाश्चाऽपि वेताला योगिनीगणाः।
पिशाचयोगिनीसङ्घा गणाश्चाऽपि तमन्वयुः॥१५॥
ततः किलकिलाशब्दैः सिंहनादैः सुघर्घरैः। भेरीतालमृदङ्गैश्च पृथिवी समकम्पत॥१६॥
ततो भूतान्यधावन्तभक्षयन्तिस्मदानवान्। उत्पतन्त्यापतन्तिस्म ननृतुश्चरणाङ्गणे॥१७॥
नन्दी च कार्त्तिकेयश्च समाश्वस्य त्वरान्वितौ। निजघ्नतू रणे दैत्यान्निरन्तरशरव्रजैः॥१८॥
छिन्नभिन्ना हतैर्दैत्यैःपतितैर्भक्षितैस्तदा। व्याकुलासाऽभवत्सेना विषण्णवदनातदा॥१९॥
प्रविध्वस्तां तदा सेनां दृष्ट्वा सागरनन्दनः। रथेनाऽतिपताकेन गणानभिययौ बली॥२०॥
हस्त्यश्वरथसंह्लादाः शंखभेरीस्वनास्तथा। अभवन्सिंहनादाश्च सेनयोरुभयोस्तदा॥२१॥

कूष्माण्ड, भैरव, बेताल, योगिनी तथा पिशाचगण दलबद्ध होकर वीरभद्र के साथ आये थे। वे लोग भीषण किलकिलाहट, सिंहनाद, गंभीर घर्घरध्वनि तथा भेरी-ताल-मृदङ्ग के शब्द के साथ पृथिवी को कम्पित कर रहे थे। तत्पश्चात् दानवों को खाते-खाते ये सभी भूतगण असुरों पर चढ़ दौड़े। कोई ऊर्ध्व से, कोई अधः से उतरते हुये रणभूमि में नृत्य कर रहे थे। इधर नन्दी तथा षडानन भी गणेश को आश्वस्त करके बाणों से निरन्तर दानवों पर प्रहार कर रहे थे। कार्त्तिकेय तथा नन्दी के बाणों से पीड़ित दावनगण में से कोई मृत, कोई भूपतित, कोई भक्षित भी हो रहा था। इस प्रकार दैत्य सैन्य छिन्न-भिन्न हो गयी। विषण्ण मुख किये हुये असुर सैन्य के योद्धा अत्यन्त व्याकुल हो गये। तब जलधिपुत्र बलवान जलन्धर अपने सैन्य को ध्वस्त होते देखकर अतीव दीर्घ पताका वाले रथ पर बैठकर प्रमथगण की सेना के सामने आ पहुंचा। दोनों सेना के हाथी, अश्व तथा रथ का भीषण शब्द, शंख भेरी एवं सिंहनाद उत्थित होने लगा।।१५-२१।।

जलन्धरशरव्रातैर्नीहारपटलैरिव। द्यावापृथिव्योराच्छिन्नमन्तरं समपद्यत॥२२॥
गणेशं पञ्चभिर्विद्ध्वा शैलादिं नवभिः शरैः। वीरभद्रञ्चविंशत्या ननाद जलदस्वनः॥२३॥
कार्त्तिकेयस्तदा दैत्यं शक्त्या विव्याध सत्वरः।
युयुधे शक्तिनिर्भिन्नः किञ्चिद्व्याकुलमानसः॥२४॥
ततः क्रोधपरीताक्षः कार्त्तिकेयंजलन्धरः। गदयाताडयामास स च भूमितलेऽपतत्॥२५॥
तथैव नन्दिनं वेगादपातयत भूतले। ततो गणेश्वरः क्रुद्धो गदां परशुनाऽहनत्॥२६॥
वीरभद्रस्त्रिभिर्बाणैर्हृदि विव्याध दानवम्। सप्तभिश्चहयान्केतुं धनुश्छत्रंचचिच्छिदे॥२७॥
ततेऽतिक्रुद्धो दैत्येन्द्रः शक्तिमुद्यम्यदारुणाम्।
गणेशं पातयामास रथञ्चाढन्यमथाऽऽरुहत्॥२८॥

युद्ध में जलन्धर के बाणों से आकाश तथा पृथिवी के बीच का स्थान ऐसे भर गया मानो कुहरा छा गया हो! जलन्धर ने गणपति को पांच बाणों से, नन्दी को नौ बाण से तथा वीरभद्र को बीस बाणों से विद्ध किया। जब वह बादल जैसा गर्जन करने लगा, तब षडानन कार्त्तिकेय ने शीघ्रतापूर्वक शक्ति से जलन्धर का भेदन कर दिया। शक्ति प्रहार से जलन्धर अत्यल्प ही व्यथित हुआ था। वह रोष में आपा खोकर गदा द्वारा

कार्त्तिकेय तथा नन्दी पर प्रहार करने लगा तथा उन दोनों को पृथिवी पर गिरा दिया। तब गणपति ने क्रोधित होकर अपने परशु से उसकी गदा को छिन्न-भिन्न कर दिया। वीरभद्र ने तीन बाणों से उस दानव के हृदय को विद्ध किया था। सात बाणों से उसके अश्व, रथ, पताका, धनु तथा छत्र का भी छेदन कर दिया। तदनन्तर दैत्येन्द्र जलन्धर अत्यन्त क्रोधित हो गया। वह एक अन्य रथ पर बैठा तथा एक दारुण शक्ति उठाकर गणेश पर प्रहार किया जिससे वे भूपतित हो गये।।२२-२८।।

अभ्ययादथ वेगेन वीरभद्रं रुषान्वितः। ततस्तौसूर्यसङ्काशौ युयुधाते परस्परम्।।२९।।
वीरभद्रः पुनस्तस्य हयान्बाणैरपातयत्। धनुश्चिच्छेद दैत्येन्द्रः पुप्लुवे परिघायुधः।।३०।।
स वीरभद्रं त्वरयाऽभिगम्य जघान दैत्यः परिघेण मूर्ध्नि।
स चाऽपि वीरः प्रविभिन्नमूर्द्धा पपात भूमौ रुधिरं समुद्गिरन्।।३१।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे जलन्धरोपाख्याने वीरभद्रपतनं नामैकोनविंशोऽध्यायः।।१९।।

तदनन्तर रोष में भर कर जलन्धर अतीव प्रचण्डवेग से वीरभद्र के पीछे दौड़ पड़ा। वीरभद्र ने पुनः बाणवर्षा द्वारा उसके घोड़ों का वध कर दिया। तब दानव ने बाणों से उनका धनुष भंग कर दिया और परिध लेकर बीरभद्र पर उछल पड़ा। उस दानव ने सामने आकर परिध का प्रचण्ड प्रहार वीरभद्र पर किया। इससे वीरभद्र की मूर्द्धा छिन्न हो गयी। वे भूपतित हो गये। उनके मुख से रक्त प्रवाह होने लगा।।२९-३१।।

।।उनविंश अध्याय समाप्त।।।

विंशोऽध्यायः

शिव-जलन्धर युद्ध

नारद उवाच

पतितं वीरभद्रन्तु दृष्ट्वा रुद्रगणा भयात्। अगमंस्ते रणं हित्वा क्रोशमाना महेश्वरम्।।१।।
अथ कोलाहलं श्रुत्वा गणानां चन्द्रशेखरः। अभ्ययाद्वृषभारूढः संग्रामम्प्रहसन्निव।।२।।
रुद्रमायान्तमालोक्यसिंहनादैर्गणाः पुनः। निवृत्ताः सङ्गरे दैत्यान्निर्जघ्नुः शरवृष्टिभिः।।३।।
दैत्याश्च भीषणं दृष्ट्वा सर्वे चैव विदुद्रुवुः। कार्त्तिकव्रतिनं दृष्ट्वा पातकानीव तद्भयात्।।४।।
जलन्धरोऽथ तान्दैत्यान्निवृत्तान्प्रेक्ष्यसङ्गरे। रोषादधावच्चण्डीशंमुञ्चन्बाणान्सहस्रशः।।५।।

देवर्षि नारद कहते हैं—रुद्रगण ने जब वीरभद्र को भूपतित देखा तब वे भयभीत होकर रणभूमि छोड़

गये। वे चीत्कार करते-करते महेश्वर के पास आये। चन्द्रशेखर ने जब गणसेना का कोलाहल सुना तब वे हंसते हुये रणभूमि में आ गये। रुद्रदेव का आगमन देखकर गणसेना के योद्धा पुनः सिंहनाद करने लगे और वे लौटकर बाणवर्षा द्वारा दैत्यों का वध करने लगे। दैत्यों ने यह भीषण व्यापार देखकर उसी प्रकार वहां से भागना प्रारंभ कर दिया, जैसे कार्त्तिक व्रत देखकर पातक पलायन करने लगते हैं। तदनन्तर दानवेन्द्र जलन्धर ने असुरगण को समरभूमि से पलायित होते देखकर हजारों बाणों की वर्षा आरंभ कर दिया और भवानीपति की ओर दौड़ पड़ा।।१-५।।

शुम्भोनिशुम्भोऽश्वमुखः कालनेमिर्बलाहकः।
खड्गरोमा प्रचण्डश्च घस्मराद्याः शिवं ययुः।।६।।
बाणान्धकारसंछन्नं दृष्ट्वा गणबलं शिवः। बाणजालमवाच्छिद्यस्वबाणैरावृणोन्नभः।।७।।
दैत्याश्च बाणवात्याभिः पीडितानकरोत्तदा। प्रचण्डबाणजालौघैरपातयत भूतले।।८।।
खड्गरोम्णः शिरः कायात्तदा परशुनाऽच्छिनत्।
बलाहकस्य च शिरः खट्वाङ्गेनाऽकरोद् द्विधा।।९।।
बद्ध्वा च घस्मरं दैत्यं पाशेनाऽभ्यहनद्भुवि।
वृषभेण हताः केचित्केचिद् बाणै निपातिताः।।१०।।
न शेकुरसुराःस्थातुं गजाःसिंहार्दिता इव। ततः क्रोधपरीतात्मा वेगाद्रुद्रं जलन्धरः।
आह्वयामास समरे तीव्राशनिसमस्वनः।।११।।

शुम्भ, निशुम्भ, अश्वमुख, कालनेमि, बलाहक, खड्गरोमा, प्रचण्ड, घस्मर, प्रभृति दानवगण शिव के सम्मुखीन हो गये। तदनन्तर शिव ने गणों को उन लोगों के बाणों से समाच्छन्न देखकर अपनी बाण वर्षा द्वारा असुरों के बाणों को छिन्न-भिन्न कर दिया। तदनन्तर महेश्वर की बाण वर्षा से आकाशमण्डल समाच्छादित हो उठा। तब शिव द्वारा छोड़े गये प्रचण्ड बाणजाल से दानव चण्डगण पीड़ित होकर युद्धभूमि पर पतित होने लगे। तब शिव ने परशु से खड्गरोमा का शिर उसके शरीर से अलग कर दिया। खट्वाङ्ग द्वारा भगवान् शिव ने बलाहक दैत्य का मस्तक दो टुकड़े कर दिया। उन्होंने दानव घस्मर को पाश द्वारा बांध कर भूतल पर गिरा दिया। भगवान् के वृषभ ने कोण दानव का वध कर दियों। दैत्यगण भगवान् की बाणवर्षा द्वारा निहत होने लगे। इस प्रकार असुरगण सिंहों द्वारा विमर्दित हाथियों की तरह रणभूमि में टिक नहीं सके। यह देखकर रुष्ट जलन्धर दैत्य ने वेगपूर्वक तीव्र अशनि जैसा भयानक घोष करते हुये शंकर को चुनौती देने लगा।।६-११।।

जलन्धर उवाच

युध्यस्व च मया सार्द्धं किमेभिर्निहतैस्तव।।१२।।
यच्च किञ्चिद्बलं तेऽस्तितद्दर्शयजटाधर!।

जलन्धर कहता है—"हे जटाधारी! मेरे दैत्यों का वध करके क्या होगा? मेरे साथ युद्ध करो। तुम्हारा जितना बल-वीर्य है, उसका प्रदर्शन करो।"।।१२।।

इत्युक्त्वाबाणसप्तत्या जघानवृषभध्वजम्।।१३।।

तान्प्राप्तान्निशितैर्बाणैश्चिच्छेदप्रहसन्निव। ततोहयान्ध्वजंछत्रं धनुश्चिच्छेदशक्तिभिः॥१४॥
स च्छिन्नधन्वा विरथो गदामुद्यम्य वेगवान्।
अभ्यधावच्छिवस्तावद्गदां बाणैर्द्विधाऽच्छिनत्॥१५॥
तथाऽपि मुष्टिमुद्यम्य ययौ रुद्रंजिघांसया। तावच्छिवेन बाणौघैःक्रोशमात्रमपाकृतः॥१६॥
ततो जलन्धरो दैत्यो मत्वा रुद्रं बलाधिकम्।
ससर्ज मायां गान्धर्वीमद्भुतां रुद्रमोहिनीम्॥१७॥
ततो जगुश्च ननृतुर्गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः। तालवेणुमृदङ्गाद्यान्वादयन्ति स्म चाऽपरे॥१८॥
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यंरुद्रोनादविमोहितः। पतितान्यपि शस्त्राणि करेभ्यो न विवेद सः॥१९॥

जलन्धर ने यह कहने के पश्चात् अपने ७ बाणों द्वारा वृषारूढ़ शंकर को विद्ध कर दिया। शिव ने भी हंसते-हंसते सामने से आ रहे उन सभी बाणों को छिन्न कर दिया। साथ ही जलन्धर के रथ के अश्वों, ध्वज तथा धनुष को शक्ति प्रहार से नष्ट कर दिया। जलन्धर विरथ तथा धनुषभंग हो जाने के कारण गदा लेकर शंकर पर दौड़ पड़ा तथापि भगवान् ने अपने बाणों से उसकी गदा को दो खण्ड कर दिया तथापि जलन्धर इतने पर भी शान्त नहीं हुआ। वह मुक्का बांधकर रुद्र को हत करने के लिये उनके समक्ष पहुंचा तथापि शंकर ने उसे बाण के प्रहार से वहां से एक कोस दूर फेंक दिया! तब दैत्य जलन्धर ने रुद्र को अपने से बली जानकर रुद्र को मोहित करने वाली एक अपूर्व गान्धर्वी माया का सृजन किया। उससे वहां अप्सरायें तथा गन्धर्वगण नृत्यगीत तत्पर परिलक्षित होने लगे। अन्य कोई-कोई ताल, वेणु, मृदङ्ग वादन करने लगे। रुद्रदेव इन सब महाश्चर्यपूर्ण मधुर नाद का श्रवण करके विमोहित हो उठे। इस मोह के कारण उनके हाथों से कब धनुष-बाण गिर गया, यह वे नहीं जान सके!।।१३-१९।।

एकाग्रीभूतमालोक्यरुद्रंदैत्योजलन्धरः। कामार्तः सजगामाऽऽशुयत्रगौरीस्थिताऽभवत्॥२०॥
युद्धे शुम्भनिशुम्भाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ।
दशदोर्दण्डपञ्चास्यस्त्रिनेत्रश्च जटाधरः॥२१॥

तदनन्तर दैत्य जलन्धर ने रुद्रदेव को (मायाविमोहित) एकाग्रमन देखकर युद्ध में शुंभ एवं निशुंभ को नियुक्त किया तथा जहां देवी पार्वती स्थित थीं, कामार्त्त होकर शीघ्रता से वहां पहुंचा। मायावी जलन्धर ने अपनी माया से अपना रूप शिव जैसा जटाधारी बना लिया जिसके १० हाथ, ५ मुख, तीन नेत्र थे।।२०-२१।।

महावृषभमारूढः स बभूव जलन्धरः। अथो रुद्रं समायान्तमालोक्य भववल्लभा॥२२॥
अभ्यायययौ सखीमध्यात्तद्दर्शनपथेऽभवत्। यावद्ददर्श चार्वङ्गीं पार्वतीं दनुजेश्वरः॥२३॥
तावत्स्ववीर्यं मुमुचे जडाङ्गश्चाऽभवत्तदा। अथज्ञात्वा तदा गौरी दानवं भयविह्वला॥२४॥
जगामाऽन्तर्हिता वेगात्सा तदोत्तरमानसे। तामदृष्ट्वा ततो दैत्यः क्षणाद्विद्युल्लतामिव॥२५॥
जवेनाऽऽगात्पुनर्युद्धं यत्र देवो वृषध्वजः। पार्वत्यपि भयाद्विष्णुं सस्मारमनसातदा।
तावद्ददर्श तं देवं सूपविष्टं समीपगम्॥२६॥

वह महावृषारुढ़ होकर पार्वती के पास पहुंचा। तदनन्तर भववल्लभा भवानी भूतपति को समागत देखकर सतीगण के बीच से उठीं तथा उनका दर्शन करने आगे बढ़ीं। तभी उन पर जलन्धर की दृष्टि पड़ी। उस कपटवेषधारी दनुजराज जलन्धर ने जैसे ही मनोहर अंगों वाली पार्वती को देखा, उसका वीर्य स्खलित हो गया, वह इस कारण वह जड़ सा हो गया। तभी पार्वती को ज्ञात हो गया कि यह तो दानव है। वे भयविह्वल होकर शीघ्रतापूर्वक वहां से उत्तर मानस क्षेत्र में चली गयीं। जब दैत्य ने भी पार्वती को वहां से विद्युत् रेखा की तरह विलीन होते देखा तब वह पुनः वेगपूर्वक वहां आया जहां वृषध्वज शिव थे। तभी पार्वती ने भी भयपूर्वक मन ही मन विष्णु का स्मरण किया। पार्वती ने विष्णु का स्मरण करते ही देखा कि भगवान् विष्णु सामने ही उपस्थित हैं।।२२-२६।।

पार्वत्युवाच

विष्णो! जलन्धरो दैत्यः कृतवान्परमाद्भुतम्।
तत्किं न विदितं तेऽतिचेष्टितं तस्य दुर्मतेः॥२७॥

पार्वती कहती हैं—हे विष्णु! दैत्य जलन्धर ने आज एक विचित्र कर्म किया है। क्या आप उस दुर्मति दैत्य के व्यवहार को नहीं जानते?।।२७।।

विष्णुरुवाच

तेनैव दर्शितः पन्था वयमप्यन्वयामहे। नाऽन्यथा स भवेद्वध्यः पातिव्रत्यसुरक्षितः॥२८॥

भगवान् विष्णु कहते हैं—हे देवि! जलन्धर ने जो मार्ग प्रदर्शित किया है, मैं भी उसी पथ का अनुसरण करूंगा। उस पथ पर चले बिना जलन्धर का वध नहीं होगा तथा आपका पातिव्रत भी रक्षित नहीं हो सकेगा।।२८।।

नारद उवाच

जगाम विष्णुरित्युक्त्वा पुनर्जालन्धरं पुरम्॥२९॥
अथ रुद्रश्च गंधर्वाऽनुगतः सङ्गरे स्थितः। अन्तर्धानं गतां मायां दृष्ट्वा स बुबुधे तदा॥३०॥
ततो भवो विस्मित मानसः पुनर्जगाम युद्धाय जलन्धरं रुषा।
स चाऽपि दैत्यः पुनरागतं शिवं दृष्ट्वा शरौघैः समवाकिरद्रणे॥३१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे जलन्धरोपाख्याने शिवजलन्धरयुद्धवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः।।२०।।

नारद कहते हैं—विष्णु यह कहकर जलन्धरपुर गये। तभी समरभूमि में अवस्थित गन्धर्व भी शिव के अनुगत हो गये और शिव भी माया के अन्तर्हित् हो जाने से प्रबुद्ध हो गये। उस समय विस्मित भगवान् भव (शिव) रोषयुक्त हो गये। उन्होंने पुनः जलन्धर के साथ युद्ध प्रारंभ कर दिया। दैत्य जलन्धर ने भी भगवान् शिव को पुनः समरभूमि में समागत देखकर अपने बाणों से वहां का वायुमण्डल परिव्याप्त कर दिया।।२९-३१।।

।।विंश अध्याय समाप्त।।

एकविंशोऽध्यायः

वृन्दा द्वारा दुःस्वप्न दर्शन, वृन्दा का पतिव्रतधर्मभंग, वृन्दा का अग्निप्रवेश उपक्रम

नारद उवाच

विष्णुर्जलन्धरंगत्वा तद्दैत्यपुटभेदनम्। पातिव्रत्यस्यभङ्गायवृन्दायाश्चाऽकरोन्मतिम्॥१॥
अथ वृन्दारका देवी स्वप्नमध्ये ददर्श ह। भर्तारंमहिषाऽऽरूढंतैलाभ्यक्तं दिगम्बरम्॥२॥
कृष्णप्रसूनभूषाढ्यं क्रव्यादगणसेवितम्। दक्षिणाशागतंमुण्डं तमसाप्याऽऽवृतंतदा॥३॥
स्वपुरं सागरे मग्नं सहसैवाऽऽत्मनासह। ततः प्रवृद्धासाबालातत्स्वप्नंप्रविचिन्वती॥४॥
ददर्शोदितमादित्यं सच्छिद्रं निष्प्रभं मुहुः। तदनिष्टमिति ज्ञात्वा रुदती भयविह्वला॥५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—विष्णु ने दानवराजपत्नी वृन्दा के पातिव्रत को भंग करने का निश्चय किया और इस कारण वे जलन्धर का रूप धारण करके वहां पहुंचे जहां वृन्दा अवस्थित थी। भगवान् ने उस पुर में प्रवेश किया। देवी वृन्दा ने स्वप्न देखा था कि उसके स्वामी महिषारूढ हैं। उनकी देह में तैल लगा है। वे दिगम्बर हैं। उनकी सज्जा काले पुष्पों से की गयी है। वे राक्षसों से सेवित होकर दक्षिण दिशा जा रहे हैं। उनका मस्तक अन्धकार में डूबा होने के कारण दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। वृन्दा ने और भी देखा कि उनका अन्तःपुर जैसे सागर जल में डूब गया है। वे भी उस जलधिजल में डूब रही हैं! स्वप्न का अवसान होने पर जब वृन्दा प्रबुद्ध हो गयीं तब स्वप्न के कारण पर विचार करते-करते उन्होंने देखा कि मानों सूर्य छिद्रपूर्ण होकर उदित हैं। वे पुनः-पुनः निष्प्रभ होते जा रहे हैं। वृन्दा इस समस्त दृश्य को अनिष्ट का कारण जानकर रुदन करने लगीं। वे भयविह्वला होकर त्रस्त हो गयीं। उनको अट्टालिका में किंवा धरती पर कहीं भी शान्तिलाभ नहीं हो रहा था!॥१-५॥

कुत्रचिन्नाऽलभच्छर्म गोपुराट्टालभूमिषु। ततःसखीद्वययुता नगरोद्यानमागमत्॥६॥
तत्राऽपिसाऽभ्रभद्बालानाऽलभत्कुत्रचित्सुखम्। वनाद्वनान्तरंयातानैववेदात्मनस्तदा॥७॥
ततः सा भ्रमतीबाला ददर्शाऽतीवभीषणौ। राक्षसौसिंहवदनौदंष्ट्राऽऽननविभीषणौ॥८॥
तौ दृष्ट्वा विह्वलाऽतीव पलायनपराऽभवत्। ददर्श तापसं शान्तं सशिष्यं मौनमास्थितम्॥९॥
ततस्तत्कण्ठमावृत्यनिजांबाहुलतां भयात्। मुने! मां रक्षशरणमागताऽस्मीत्यभाषत॥१०॥
मुनिस्तां विह्वलां दृष्ट्वा राक्षसाऽनुगतां तदा। हुङ्कारेणैवतौघोरौचकार विमुखौरुषा॥११॥
तौ हुंकारभयत्रस्तौ दृष्ट्वा च विमुखौ गतौ। प्रणम्य दण्डवद्भूमौवृन्दावचनमब्रवीत्॥१२॥

वृन्दा अपनी दो सखियों के साथ नगर के उद्यान में गयीं। वहां भ्रमण करने पर भी उनको तनिक भी सुख नहीं मिल रहा था। तदनन्तर वे एक वन से अन्य वन में जाने लगीं, तथापि इससे भी शान्ति नहीं मिली। तभी भ्रमण करते करते वृन्दा ने वहां अत्यन्त भयानक दो राक्षसों को देखा जिनका मुख सिंह जैसा था। दाढ़ों

से उनका रूप अत्यन्त भीषण लग रहा था। वृन्दा ने इस भीषणाकृति राक्षसद्वय को देखकर वहां से पलायन कर दिया। वे कुछ दूर गयीं थीं, तभी देखती हैं कि एक मौनी शान्त तपस्वी शिष्यों के साथ वहां बैठे हैं। तभी देवी वृन्दा ने भयवशात् अपनी बाहु द्वारा अपने कण्ठ को ढांक कर विह्वल होकर कहा—"हे मुनिवर! मैं यहां आपकी शरण में आई हूं। मेरी रक्षा करिये।" मुनि ने उनको अत्यन्त विह्वल देखकर तथा उनके पीछे आते दो राक्षसों को देखा। मुनि ने यह देखकर रोषपूर्वक हुंकार द्वारा इन राक्षसों को रोक दिया। जब वृन्दा ने राक्षस-द्वय को मुनि की हुंकार मात्र से त्रस्त तथा भागते देखा, तब वे मुनि को दण्डवत् प्रणाम करके कहने लगीं।।६-१२।।

वृन्दोवाच

रक्षिताऽहंत्वयाघोराद्भयादस्मात्कृपानिधे!। किञ्चिद्विज्ञप्तुमिच्छामिकृपयातन्निशामय।।१३।।
जलन्धरोहि मद्भर्ता रुद्रं योद्धुं गतःप्रभो। स तत्राऽऽस्तेकथं युद्धेतन्मे कथयसुव्रत!।।१४।।

वृन्दा कहती हैं—"हे कृपानिधि! आपने इस घोर भय से मेरी रक्षा की है। अब मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूं। कृपापूर्वक सुनिये। हे प्रभो! मेरे पति दानवराज जलन्धर हैं। वे रुद्र के साथ युद्ध के लिये गये हैं। हे सुव्रत! वे रणभूमि में किस अवस्था में हैं, कृपया कहिये!।।१३-१४।।

नारद उवाच

मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वमवैक्षत्। तावत्कपी समायातौप्रणम्यचाग्रतःस्थितौ।।१५।।
ततस्तद्भ्रूलतासञ्ज्ञानियुक्तौगगनं गतौ। गत्वाक्षणार्द्धादागत्यप्रणतावग्रतःस्थितौ।
शिरःकबन्धे हस्तौ च गृहीत्वा समुपस्थितौ।।१६।।
शिरःकबन्धेहस्तौचदृष्ट्वाऽब्धितनयस्यसा। पपात मूर्च्छिताभूमौभर्तृव्यसनदुःखिता।।१७।।
कमण्डलूदकैः सिक्त्वा मुनिनाऽऽश्वासिता तदा।
स्वभर्तृभाले सा भालं कृत्वा दीना रुरोद ह।।१८।।

देवर्षि नारद कहते हैं—वृन्दा का यह वाक्य सुनकर जैसे ही उन मुनि ने ऊर्ध्व में दृष्टि निःक्षेप किया, तभी दो वानर उनके समीप आये तथा प्रणाम करके मुनि के समक्ष खड़े हो गये। उस समय मुनि ने अपनी भ्रूभंगी से उनको संकेत दिया। इससे वे आकाश में उड़ गये तथा कुछ क्षण के पश्चात् (आधे मुहूर्त्त में) एक शिर तथा धड़ लेकर वापस लौटे। पुनः वे ऋषि को प्रणाम करके उनके आगे खड़े हो गये। जब वृन्दा ने उन वानरद्वय के हाथ में अपने स्वामी जलन्धर का शिर तथा धड़ देखा, तब वे दुःख से व्यथित होकर पृथिवी पर गिर पड़ीं। उस स्थिति में मुनि ने वृन्दा का अभिषेक अपने कमण्डलु के जल से किया। इस प्रकार मुनि ने वृन्दा को आश्वस्त कर दिया। वृन्दा अपने स्वामी के मस्तक पर अपना ललाट रखकर रुदन करने लगीं।।१५-१८।।

वृन्दोवाच

यः पुरा सुखसम्वादेविनोदयसि मां प्रभो!। सकथं न वदस्यद्यवल्लभां मामनागसम्।

येन देवाःसगन्धर्वानिर्जिताविष्णुनासह। स कथं तापसेनाऽद्य त्रैलोक्यविजयीहतः॥१९॥

वृन्दा कहती हैं—हे प्रभो! आपने इससे पूर्व (राक्षसों से रक्षा द्वारा) सुखप्रद संवाद से मेरा विनोद वर्द्धन किया था, वही आप आज निरुपाय स्त्री को देखकर कुछ नहीं कह रहे हैं! जिन जलन्धर ने विष्णु सहित सभी गन्धर्व तथा देवगण को जीता था, वे मेरे त्रैलोक्य विजयी स्वामी हैं। उनको किसने कैसे मृत कर दिया।।१९।।

नारद उवाच

रुदित्वेति तदा वृन्दा तं मुनिं वाक्यमब्रवीत्॥२०॥

नारद कहते हैं—रुदन करती वृन्दा ने तव मुनि से कहा।।२०।।

वृन्दोवाच

कृपानिधे! मुनिश्रेष्ठ! जीवयैनं मम प्रियम्।
त्वमेवाऽस्य मुने! शक्तो जीवनाय मतौ मम॥२१॥

वृन्दा कहती है—हे कृपानिधि! आप मुनियों में श्रेष्ठ हैं। आप मेरे पति को जीवित करिये। मेरी यह निश्चित धारणा है कि आप इनको जीवित कर सकने में समर्थ हैं।।२१।।

नारद उवाच

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रहसन्मुनिरब्रवीत्॥२२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—वृन्दा का वाक्य सुनकर मुनि हंसते हुये कहने लगे।।२२।।

मुनिरुवाच

नाऽयं जीवयितुं शक्तोरुद्रेणनिहतोयुधि। तथाऽपि त्वत्कृपाविष्टएनंसञ्जीवयाम्यहम्॥२३॥

मुनि कहते हैं—इसे जीवन दान दे सकने का सामर्थ्य किसी में नहीं है, क्योंकि स्वयं रुद्र ने इसे मारा है, तथापि तुम्हारे प्रति कृपा के कारण मैं इसे जीवित करता हूं।।२३।।

नारद उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधेविप्रस्तावत्सागरनन्दनः। वृन्दामालिङ्ग्य तद्वक्त्रंचुचुम्बप्रीतमानसः॥२४॥
अथ वृन्दाऽपि भर्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा। रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरम्॥२५॥
कदाचित्सुरतस्यान्ते दृष्ट्वाविष्णुं तमेव च। निर्भर्त्स्य क्रोधसंयुक्तावृन्दावचनमब्रवीत्॥२६॥

देवर्षि नारद कहते हैं—ऋषि यह कह कर जैसे ही वहां से अन्तर्हित् हुये, वैसे ही सागर तनय जलन्धर भी जीवित हो गया। उसने प्रेमपूर्वक वृन्दा का आलिंगन किया तथा उसके गले पर चुम्बन किया। वृन्दा ने स्वामी को जीवित देखकर प्रसन्न मन से उस कानन में स्थित होकर उसके साथ दीर्घकाल पर्यन्त विहार किया। तदनन्तर एक दिन सुरतक्रीड़ा के अन्त में वृन्दा ने विष्णु को पहचान लिया तथा उनकी भर्त्सना करके क्रोध पूर्वक कहने लगीं।।२४-२६।।

वृन्दोवाच

धिक्त्वदीयं हरे! शीलं परदाराभिगामिनः।
ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यङ् मायाप्रच्छन्नतापसः॥२७॥
यौत्वयामाययाद्वाःस्थौस्वकीयौदर्शितौमम्। तावेवराक्षसौभूत्वाभार्यातवहरिष्यतः॥२८॥
त्वं चाऽपिभार्यादुःखार्तोवनेकपिसहायवान्। भ्रमसर्पेश्वरेणाऽयंयस्तेशिष्यत्वमागतः॥२९॥
इत्युक्त्वा सा तदा वृन्दा प्राविशद्धव्यवाहनम्।
विष्णुना वार्यमाणाऽपि तस्यामासक्तचेतसा॥३०॥
ततो हरिस्तामनु संस्मरन्मुहुर्वृन्दान्वितो भस्मरजोवगुण्ठितः।
तत्रैव तस्थौ सुरसिद्धसङ्घैः प्रबोध्यमानोऽपि ययौ न शान्तिम्॥३१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे जलन्धरोपाख्याने वृन्दाग्निप्रवेशवर्णनंनामैकविंशोऽध्यायः॥२१॥

वृन्दा कहती हैं—"हे हरि! तुम परदारागामी हो। तुम्हारे चरित्र को धिक्कार है। प्रतीत होता है तुम ही माया द्वारा वह मुनि (तापस) बने थे। यहां के द्वार पर जो दो पहरेदार हैं, ये ही राक्षस रूप धारण (माया द्वारा) करके तुम्हारी पत्नी का हरण करेंगे। तुम भी पत्नी के दुःख से पीड़ित हो जाओगे। इस अनन्त ने (शेषनाग ने) जो तुम्हारे मुनिवेश में तुम्हारे शिष्य का रूप ग्रहण किया था यह भी (लक्ष्मण रूप में) तुम्हारे साथ तथा वानरों की सहायता लेकर वन-वन भटकेगा।" वृन्दा ने यह कह कर अग्नि में प्रवेश किया। वृन्दा से आसक्त मन वाले विष्णु ने उसे बहुत रोका तथापि उसने उनकी कोई बात न सुनकर स्वयं को दग्ध कर लिये। हरि भी वृन्दा को बारम्बार याद करते हुये उसकी दग्धदेह की भस्म को अपने शरीर में लपेटकर वहां स्थित हो गये। सुरगण तथा सिद्धगण उनको सान्त्वना दे रहे थे तथापि उनको शान्ति नहीं मिली॥२७-३१॥

॥एकविंश अध्याय समाप्त॥

द्वाविंशोऽध्यायः

देवताओं के प्रति शक्ति का वचन, जलन्धर मुक्ति

नारद उवाच

ततो जलन्धरो दृष्ट्वा रुद्रमद्भुतविक्रमम्। चकार मायया गौरीं त्र्यम्बकं मोहयन्निव॥१॥
रथोपरि च तां बद्धां रुदन्तीं पार्वतींशिवः। निशुम्भप्रमुखाद्यैश्चवध्यमानांददर्श सः॥२॥

गौरीं तथाविधां दृष्ट्वा शिवोऽप्युद्विग्नमानसः।
अवाङ्मुखः स्थितस्तूष्णीं विस्मृत्य स्वपराक्रमम्॥३॥
ततोजलन्धरो वेगात्त्रिभिर्विव्याध सायकैः। आपुङ्खमग्नैस्तंरुद्रं शिरस्युरसि चोदरे॥४॥
ततो जज्ञे स तां मायां विष्णुना च प्रबोधितः।
रौद्ररूपधरो जातो ज्वालामालाऽतिभीषणः॥५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—इधर जलन्धर ने अमित विक्रमी रुद्र को देखकर उनको मोहित करने के लिये माया से एक गौरी को निर्मित किया। उन मायाकल्पित गौरी को रथ पर बांध दिया। भगवान् शिव देखते हैं कि पार्वती रुदन कर रही हैं, निशुम्भ आदि प्रधान दानव उन पर प्रहार रत हैं। शिव गौरी की यह अवस्था देखकर मन ही मन उद्विग्न हो गये तथा अपने पराक्रम को भूलकर मौन हो गये। इस स्थिति में उनको देखकर जलन्धर ने उनको तीन बाणों से विद्ध कर दिया। अतिवेग से छोड़े गये ये तीन बाण अपने पिछले भाग पर्यन्त शंकर के उदर तथा मस्तक में प्रविष्ट हो गये। तदनंतर शिव को भगवान् विष्णु ने प्रबुद्ध किया। तत्पश्चात् इसे जलंधर की माया समझकर भगवान् शिव क्रोधरूप ज्वालामाला के कारण अतीव भीषणरूप प्रतीत होने लगे।।१-५।।

तस्याऽतीव महारौद्रंरूपं दृष्ट्वा महासुराः। नशेकुःसम्मुखेस्थातुंभेजिरेतेदिशोदश॥६॥
ततः शापं ददौ रुद्रस्तयोःशुम्भनिशुम्भयोः। ममयुद्धादपक्रान्तौगौर्याबध्योभविष्यथ॥७॥

इस स्थिति में महासुरगण उनका यह महान् भयंकर रूप देखकर उसे सह्य न कर सके। वे असुर शंकर के समक्ष खड़े होने का भी साहस नहीं कर पा रहे थे। इस कारण वे भयग्रस्त होकर दसों दिशाओं में भाग खड़े हुये। तत्पश्चात् शंकर ने शुम्भ तथा निशुम्भ को अभिशाप दिया। शंकर ने कहा—"हे शुंभ-निशुंभ! तुम मेरे द्वारा युद्ध में पराजित होकर देवी द्वारा मृत्यु को प्राप्त होगे।"।।६-७।।

पुनर्जलन्धरो वेगाद्वर्ष निशितैः शरैः। बाणान्धकारैः संछन्नं तदा भूमितलं महत्॥८॥
यावद्रुद्रश्च चिच्छेद तस्यबाणगणं जवात्। तावत्स परिघेणाऽऽशुजघानवृषभं बली॥९॥
वृषस्तेन प्रहारेण परावृत्तोरणाङ्गणात्। रुद्रेणाऽऽकृष्यमाणोऽपिनतस्थौ रणभूमिषु॥१०॥
ततः परमसङ्क्रुद्धो रुद्रोरौद्रवपुर्धरः। चक्रंसुदर्शनंवेगाच्चिक्षेपाऽऽदित्यवर्चसम्॥११॥
प्रदहद्रोदसीवेगात्पपातवसुधातले। जहारतच्छिरःकायान्महदायतलोचनम्॥१२॥
रथात्कायः पपाताऽस्य नादयन्वसुधातलम्। तेजश्च निर्गतं देहात्तद्रुदेलयमागमत्॥१३॥
वृन्दादेहोद्भवं तेजस्तद्गौर्यां विलयं गतम्। अथब्रह्मादयो देवा हर्षादुत्फुल्ललोचनाः।
प्रणम्य शिरसा रुद्रं शशंसुर्विष्णुचेष्टितम्॥१४॥

इधर जलन्धर पुनः तीक्ष्ण बाणों की वर्षा रुद्रदेव पर करने लगा। उस समय समस्त पृथिवीतल बाणों के समाच्छन्न होने के कारण अन्धकार से भर उठा। रुद्रदेव उस समय वेगपूर्वक उन बाणों को काटने लगे। बलवान् जलन्धर भी उस समय परिध नामक अस्त्र द्वारा शंकर के वृषभ पर प्रहार करने लगा। इस प्रहार के कारण वृषभ ने रणभूमि का त्याग कर दिया। वह रुद्र द्वारा बुलाये तथा रोके जाने पर भी समरभूमि में नहीं रुका। तदनन्तर रुद्र ने अतिशय क्रोधित होकर रौद्र देह धारण किया तथा अतिशय वेग के साथ आदित्य कान्ति

सुदर्शन चक्र को जलन्धर पर छोड़ा। यह चक्र आकाश को अपने तेज से प्रज्वलित करता हुआ भूमितल पर गिरा तथा उसने आयतनेत्र जलन्धर के शिर को उसके देह से पृथक् कर दिया। जलन्धर के देह से एक तेजपुंज निकल कर रुद्र में विलीन हो गया। जलन्धर का शरीर जब निर्जीव होकर रथ से गिरा, तब समस्त पृथिवी कम्पित हो उठी। उधर वृन्दा के देह का तेज भगवती गौरी के शरीर में मिलित हो गया। यह दृश्य देखकर ब्रह्मा आदि देवगण का मन उत्फुल्ल हो उठा। उन सबने मस्तक अवनत करके रुद्रदेव को प्रणाम किया। सभी लोक विष्णु के कार्य की प्रशंसा करके रुद्र की स्तुति करने लगे।।८-१४।।

देवा ऊचुः

महादेव! त्वया देवा रक्षिताः शत्रुजाद्भयात्॥१५॥
किञ्चिदन्यत्समुद्भूतं तत्र किं करवामहे।
वृन्दालावण्यसम्भ्रान्तो विष्णुस्तिष्ठति मोहितः॥१६॥

देवगण कहते हैं—हे महादेव! आपने त्रिपुरासुर के भय से हम देवगण को रक्षित किया था, तथापि आज एक अद्वितीय घटना घटित हो गयी। इस सम्बन्ध में हम क्या कहें? विष्णु तो वृन्दा के लावण्य से भ्रमित तथा मोहित होकर स्थित हो गये हैं!।।१५-१६।।

ईश्वर उवाच

गच्छध्वं शरणं देवाविष्णोर्मोहापनुत्तये। शरण्यांमोहिनींमायांसावःकार्यंकरिष्यति॥१७॥

ईश्वर कहते हैं—हे देवगण! विष्णु का मोह दूर करने के लिये तुम मोहिनी माया की शरण ग्रहण करो। वह माया ही तुम सब का उद्देश्य सिद्ध करेगी।।१७।।

नारद उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवः सर्वभूतगणैस्तदा। देवाश्च तुष्टुवुर्मूलप्रकृतिं भक्तवत्सलाम्॥१८॥

नारद कहते हैं—तब देवाधिदेव शंकर यह कहकर समस्त भूत-प्रमथगण से घिरे हुये वहां से अन्तर्हित् हो गये। देवगण भी भक्तवत्सला मूल प्रकृति का स्तव करने लगे।।१८।।

देवा ऊचुः

यदुद्भवाः सत्त्वरजस्तमोगुणाः सर्गस्थितिध्वंसनिदानकारिणः।
यदिच्छया विश्वमिदं भवाऽभवौ तनोति मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम्॥१९॥
या हि त्रयोविंशतिभेदशब्दिता जगत्यशेषे समधिष्ठिता परा।
यद्रूपकर्माणि जडास्त्रयोऽपि देवा न विद्युः प्रकृतिं नताः स्म ताम्॥२०॥
यद्भक्तियुक्ताः पुरुषास्तु नित्यं दारिद्र्यभीमोहपराभवादीन्।
न प्राप्नुवन्त्येव हि भक्तवत्सलां सदैव मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम्॥२१॥

देवगण कहते हैं—जिनसे सृष्टि-स्थिति-लय का कारणभूत सत्व-रजः-तमः समुद्भूत हो रहा है, जिनकी

इच्छा से विश्व अवस्थित है तथा जो इस विश्व के जनन-भरण का विस्तार कर रहे हैं, हम उन मूल प्रकृति को प्रणाम करते हैं। जो तेईस भेदों से शब्दित होती रहती हैं, जो समग्र जगत् में प्रतिष्ठिता हैं, जिनसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं है, देवगण भी जिनको जान सकने में समर्थ नहीं हैं, हम उन मूल प्रकृति को प्रणाम करते हैं। जिनके प्रति नित्य भक्ति तत्पर होकर मनुष्य दारिद्र्यभीति, मोह तथा पराभव को प्राप्त नहीं होते, उन भक्तवत्सला मूल प्रकृति को हम सतत् प्रणाम करते हैं।।१९-२१।।

नारद उवाच

स्तोत्रमेतत्त्रिसंध्यं यः पठेदेकाग्रमानसः।
दारिद्र्यमोहदुःखानि न कदाचित्स्पृशन्ति तम्।।२२।।
इत्थं स्तुवन्तस्तेदेवास्तेजोमण्डलमास्थितम्। ददृशुर्गगनंतत्रज्वालाव्याप्तदिगन्तरम्।
तन्मध्याद्भारतीं सर्वे शुश्रुवुर्व्योमचारिणीम्।।२३।।

नारद कहते हैं—जो मानव एकाग्रतापूर्वक तीनों सन्ध्याकाल में यह स्तोत्र पाठ करता है, उसे दरिद्रता मोह तथा दुःख आदि का कदापि स्पर्श नहीं होता। देवताओं ने इस प्रकार से स्तव करते-करते आकाश में एक तेजोमण्डल का दर्शन किया। देखते-देखते उस तेज से दिग्-दिगन्त व्याप्त हो गया। देवताओं ने उस तेज में से एक आकाशवाणी को सुना। वह वाणी अन्य की न होकर उन शक्ति की ही थी।।२२-२३।।

शक्तिरुवाच

अहमेव त्रिधा भिन्ना तिष्ठामि त्रिविधैर्गुणैः।।२४।।
गौरीःलक्ष्मी स्वरा चेति रजः सत्त्वतमोगुणैः।
तत्र गच्छत ताः कार्यं विधास्यन्ति च वः सुराः।।२५।।

शक्ति देवी कहती हैं—मैं ही सत्व-रजः-तमः रूप गुणत्रय में त्रिधा विभक्त होकर अवस्थान करती हूं। क्रमशः गौरी-लक्ष्मी तथा सरस्वती ही इन त्रिगुण रूप से अवस्थित हैं। इसलिये तुम सब गौरी-लक्ष्मी-सरस्वती के पास जाओ। वे ही तुम्हारा कार्य सम्पन्न करेंगीं।।२४-२५।।

नारद उवाच

शृण्वतामिति तां वाचमन्तर्धानमगान्महः। देवानांविस्मयोत्फुल्लनेत्राणांतत्तदा नृप।।२६।।
ततः सर्वेऽपिते देवागत्वातद्वाक्यनोदिताः। गौरींलक्ष्मींस्वरांचैवप्रणेमुर्भक्तितत्पराः।।२७।।
ततस्तास्तान्सुरान्दृष्ट्वा प्रणतान्भक्तवत्सलाः।
बीजानि प्रददुस्तेभ्यो वाक्यान्यूचुश्च भूमिप!।।२८।।

नारद कहते हैं—हे राजन्! तब देवगण शक्ति की आकाशवाणी सुनकर विस्मयाभिभूत होकर प्रसन्न हो गये। तभी उनके सामने से वह तेजोमयी शक्ति तत्काल अन्तर्ध्यान हो गयीं। हे राजन्! तदनन्तर भक्तितत्पर देवताओं ने शक्ति के आदेशानुसार सरस्वती, लक्ष्मी तथा गौरी को प्रणाम किया। उन भक्तवत्सला देवीत्रय ने भी उन प्रणत देवताओं को देखकर उनको अनेक बीज बोने के लिये प्रदान करके कहा—।।२६-२८।।

देव्य ऊचुः

इमानि तत्र बीजानि विष्णुर्यत्राऽवतिष्ठते। निर्वपध्वं ततःकार्यं भवतांसिद्धमेष्यति॥२९॥

देवी कहती हैं—हे सुरगण! जहां विष्णु अवस्थान कर रहे हैं, वहां इन बीजों को लेकर जाओ तथा वहां इनको बो देना। इस प्रकार तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा।।२९।।

नारद उवाच

ततस्तु हृष्टाः सुरसिद्धसङ्घाः प्रगृह्य बीजानि विचिक्षिपुस्ते।
वृन्दान्वितो भूमितले स यत्र विष्णुः सदा तिष्ठति सौख्यहीनः॥३०॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे जलन्धरमुक्तिकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः।।२२।।

नारद कहते हैं—तदनन्तर सुरगण एवं सिद्धगण प्रसन्न मन से उन बीजों को लेकर वहां गये जहां विष्णु अवस्थित थे। उन्होंने वृन्दान्वित (जहां वृन्दा के दग्ध देह की राख गिरी थी) भूमि पर उन बीजों को बो दिया।।३०।।

।।द्वाविंश अध्याय समाप्त।।

त्रयोविंशोऽध्यायः

धात्री वृक्ष तथा तुलसी पादप का उद्भव, दोनों का माहात्म्य

नारद उवाच

क्षिप्तेभ्यस्तत्र बीजेभ्योवनस्पत्यस्त्रयोऽभवन्। धात्रीचमालतीचैवतुलसीचनृपोत्तम्!॥१॥
धात्र्युद्भवा स्मृताधात्रीमाभवामालतीस्मृता। गौरीभवाचतुलसीतमःसत्त्वरजोगुणाः॥२॥
स्त्रीरूपिण्यौ वनस्पत्यौ दृष्ट्वा विष्णुस्तदा नृप!।
उत्तस्थौ सम्भ्रमाद् वृन्दारूपातिशयविभ्रमः॥३॥
दृष्ट्वा च याचतेमोहात्कामासक्तेनचेतसा। तंचाऽपितुलसीधात्र्यौरागेणैवव्यलोकताम्॥४॥
यच्चलक्ष्म्यापुराबीजमीर्ष्ययैवसमर्पितम्। तस्मात्तदुद्भवानारीतस्मिन्नीर्ष्यापराऽभवत्॥५॥
अतः सा बर्बरीत्याख्यामवापाऽथ विगर्हिताम्। धात्रीतुलस्यौ तद्रागात्तस्यप्रीतिप्रदे सदा॥६॥
ततोविस्मृतदुःखोऽसौविष्णुस्ताभ्यांसहैव तु। वैकुण्ठमगमद्धृष्टःसर्वदेवनमस्कृतः॥७॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे नृपोत्तम! देवगण ने जिन बीजों को बोया था, उनसे धात्री, मालती तथा तुलसी नामक तीन वनस्पतियां उग गयीं। इनमें से सरस्वती देवी से धात्री वृक्ष (आंवला वृक्ष रूप), गौरी से तुलसी पादप तथा लक्ष्मी से मालती लता उद्भूत हो गयीं। ये वनस्पतियां यथाक्रम तमः, रजः तथा सत्वमयी हैं। हे नृप! विष्णु ने इन स्त्रीरूपा वनस्पतियों को देखा, तब वे सम्भ्रम पूर्वक उठे तथा इन सबको वृन्दा से भी अत्यन्त सुरूपा देखकर मोहवशात् उनसे प्रार्थना करने लगे। धात्री तथा तुलसी ने अनुराग पूर्वक विष्णु का अवलोकन किया। किन्तु लक्ष्मी ने पूर्व में ही ईर्ष्यापूर्वक मालती बीज उत्पन्न किया था इस कारण लक्ष्मीप्रदत्त बीज से उद्भूत मालती ने भी विष्णु के प्रति ईर्ष्या प्रकट किया। तदनन्तर विष्णु समस्त दुःख भूल गये। वे धात्री तथा तुलसी के साथ सर्वदेव नमस्कृत होकर प्रसन्न मन से वैकुण्ठ चले गये। उन्होंने ईर्ष्या परायण मालती को साथ में नहीं लिया। इसी कारण से मालती को विगर्हित बर्बरी कहा गया तथा धात्री एवं तुलसी विष्णु के शरीर हेतु प्रीतिप्रद हैं।।१-७।।

कार्त्तिकोद्यापने विष्णोस्तस्मात्पूजा विधीयते।
तुलसीमूलदेशेऽस्य प्रीतिदा सा यतः स्मृता।।८।।
तुलसीकाननं राजन्गृहे यस्याऽवतिष्ठते। तद्गृहं तीर्थरूपं तुनाऽऽयान्ति यमकिङ्कराः।।९।।
सर्वपापहरं नित्यं कामदं तुलसीवनम्। रोपयन्तिनराःश्रेष्ठास्तेनपश्यन्तिभास्करिम्।।१०।।
दर्शनं नर्मदायास्तु गङ्गास्नानं तथैव च।
तुलसीवनसंसर्गः सममेव त्रयं स्मृतम्।।११।।
रोपणात्पालनात्सेकाद्दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम्। तुलसीदहते पापं वाङ्मनःकायसञ्चितम्।।१२।।
तुलसीमञ्जरीभिर्यः कुर्याद्धरिहराऽर्चनम्। न स गर्भगृहंयाति मुक्तिभागी न संशयः।।१३।।
पुष्कराद्यानि तीर्थानिगङ्गाद्याःसरितस्तथा। वासुदेवादयोदेवास्तिष्ठन्तितुलसीदले।।१४।।
तुलसीमञ्जरीयुक्तो यस्तु प्राणान्विमुञ्चति। यमोऽपि नेक्षितुं शक्तो युक्तंपापशतैरपि।।१५।।
विष्णोः सायुज्यमाप्नोति सत्यं सत्यंनृपोत्तम!। तुलसी काष्ठजं यस्तु चन्दनं धारयेन्नरः।।१६।।
तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणमपीह यत्। तुलसीविपिनच्छाया यत्रयत्र भवेन्नृप!।।१७।।

तुलसी विष्णु को प्रिय हैं। इसलिये कार्त्तिक व्रत के उद्यापनार्थ तुलसी मूल में विष्णु की पूजा करनी चाहिये। हे राजन्! जिसके गृह में तुलसी कानन विद्यमान है, उनका गृह तीर्थ रूप है। यमदूत वहां कभी नहीं जाते। तुलसीवन नित्य सर्वपापहर तथा कामद है। जो तुलसी कानन का रोपण करते हैं, वे ही श्रेष्ठ हैं। वे यमदर्शन कदापि नहीं करते। नर्मदा का दर्शन, गंगास्नान तथा तुलसी वन संसर्ग का फल समान है। तुलसी का रोपण, पालन, जलसेक, दर्शन तथा स्पर्शन करने से मानवगण का वाक्-मन तथा कायाकृत पाप दग्ध हो जाता है। जो मानव तुलसी मंजरी से हरिहर की अर्चना करते हैं, वे कभी मातृगर्भ में प्रवेश नहीं करते तथा वे मुक्तिभागी हो जाते हैं। इसमें संशय नहीं है। पुष्कर आदि तीर्थ, गंगा आदि पुण्यनदी तथा वासुदेव आदि देवता तुलसीदल में विद्यमान रहते हैं। जो मानव तुलसी मंजरीयुक्त होकर प्राणत्याग करते हैं, वे शत-शत पापयुक्त होकर भी यम का दर्शन नहीं करते (यमलोक नहीं जाते)। यह सत्य है-सत्य है-सत्य है। इस प्रकार दृढ़तापूर्वक

कहता हूं कि वे मानव विष्णु का सायुज्य प्राप्त कर लेते हैं। जो तुलसी काष्ठ को घिस कर उसका चन्दन लगाते हैं, वे पाप करके भी पापयुक्त नहीं होते।।८-१७।।

तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं पितॄणां दत्तमक्षयम्। धात्रीफलविमिश्रैश्च तुलसीपत्रमिश्रितैः।।१८।।
जलैः स्नाति नरस्तस्य गङ्गास्नानफलं स्मृतम्। देवार्चनंनरःकुर्याद्धात्रीपत्रैःफलैस्तथा।।१९।।
सुवर्णमणिमुक्तौघैरर्चनस्याऽऽप्नुयात्फलम् ।
तीर्थानि मुनयो देवा यज्ञा सर्वेऽपि कार्त्तिके।।२०।।
नित्यं धात्रीं समाश्रित्य तिष्ठन्त्यर्के तुलास्थिते।
द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं तु कार्त्तिके।।२१।।
लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान्। धात्रीतुलस्योर्माहात्म्यमपिदेवश्चतुर्मुखः।
न समर्थो भवेद्वक्तुं यथा देवस्य शार्ङ्गिणः।।२२।।
धात्रीतुलस्युद्भवकारणं यः शृणोति यः श्रावयते च भक्त्या।
विधूतपाप्मा सह पूर्वजैः स्वैः स्वर्गं व्रजत्यग्र्यविमानसंस्थैः।।२३।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादेधात्रीतुलस्युत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

हे राजन्! जहां-जहां तुलसी छाया विद्यमान रहती है, वहां-वहां पितरों का श्राद्ध करना चाहिये। उन सभी श्राद्ध से पितरों की अक्षय तृप्ति होती है। मनुष्य धात्री फल तथा तुलसी पत्र एक में मिलाकर उसे जल में छोड़ कर स्नान करे। उसे गंगास्नान फल मिलेगा। मानव धात्रीफल तथा फल द्वारा देवार्चन करके स्वर्ण-मणि-मुक्ता द्वारा पूजन करके इतना फललाभ करता है। समस्त तीर्थ, मुनि, देवता तथा यज्ञ उस समय धात्री वृक्ष में निवास करते हैं। जब सूर्य तुला राशि में निवास करता है। जो मानव द्वादशी के दिन तुलसीपत्र तथा कार्त्तिक मास में धात्रीपत्र तोड़ते हैं, उनको अत्यन्त गर्हित नरक प्राप्त होता है। जैसे चतुरानन ब्रह्मा भी विष्णु की महिमा का वर्णन पूर्णतः नहीं कर सकते, उसी प्रकार से तुलसी तथा धात्री की महिमा असीम है। जो भक्तिभाव से धात्री एवं तुलसी का उद्भवकारण सुनते हैं, वे पापों से रहित होकर पूर्वजों के साथ श्रेष्ठ विमान पर आरोहण करने में समर्थ होते हैं।।१८-२३।।

।।त्रयोविंश अध्याय समाप्त।।

चतुर्विंशोऽध्यायः

धर्मदत्त विप्र का इतिहास, कलहा का दुष्कर्म वर्णन

पृथुरुवाच

यदूर्जव्रतिनः पुंस फलं महदुदाहृतम्। तत्पुनर्ब्रूहिमाहात्म्यं केन चीर्णमिदं शुभम्।।१।।

पृथु कहते हैं—हे मुनिवर! कार्त्तिक व्रती पुरुष का महाफल आपने कहा। अब पुनः कार्त्तिक व्रत माहात्म्य तथा इस व्रताचरण में क्या करना चाहिये, वह कहिये।।१।।

नारद उवाच

आसीत्सह्याद्रिविषये करवीरपुरे पुरा। ब्राह्मणो धर्मवित्कश्चिद्धर्मदत्तेति विश्रुतः।।२।।
विष्णुव्रतकरः सम्यग्विष्णुपूजारतः सदा। कदाचित्कार्त्तिकेमासिहरिजागरणायसः।।३।।
रात्र्यां तुर्यावशेषायां जगाम हरिमन्दिरम्। हरिपूजोपकरणान्गृह्य व्रजता सदा।।४।।
तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीमदर्शना। तां दृष्ट्वा भयवित्रस्तः कम्पितावयवस्तदा।।५।।
पूजोपकरणैः सर्वपयोभिश्चाहनद्भयात्। संस्मृत्य तद्धरेर्नामतुलसीयुक्तवारिणा।
तेन वै हतमात्रे तु पापं तस्या ह्यगाल्लयम्।।६।।
अथ संस्मृत्य सा पूर्वजन्मकर्मविपाकजाम्। स्वां दशामब्रवीद्विप्रंदण्डवच्चप्रणम्यवै।।७।।

नारद कहते हैं—सह्याद्रि प्रदेश में करवीर पुरी है। पूर्वकाल में वहां पर धर्मविद् धर्मदत्त नामक प्रसिद्ध एक विप्र का निवास था। विप्र धर्मदत्त सतत् विष्णुव्रत करते थे। वे सम्यक्तः हरिपूजा तत्पर थे। द्विज धर्मदत्त एक बार कार्त्तिक मास में जागरण व्रत तत्पर रहते हुये रात्रि का चतुर्थांश बाकी रहते हरि मन्दिर जाने लगे। वे हरि का पूजोपकरण लेकर जा ही रहे थे, तभी मार्ग में भीमवदना एक राक्षसी को उन्होंने देखा। वे उसे देखकर भयकातर हो गये। उनका शरीर कंपित होने लगा। उन्होंने भयवश समस्त पूजोपकरण से उस राक्षसी पर प्रहार किया तथा तुलसी जल लेकर हरिनाम लेने लगे। हे नृप! क्या कहा जाये! पूजा-द्रव्य के प्रहारमात्र से राक्षसी का कलुष ध्वन्स हो गया। उसे अपने पूर्वजन्म के दुष्कर्म याद आ गये। वह दण्डवत् प्रणत होकर द्विज धर्मदत्त से कहने लगी।।२-७।।

कलहोवाच

पूर्वकर्मविपाकेन दशामेतां गताऽस्म्यहम्। तत्कथंनुपुनर्विप्रप्रयास्याम्युत्तमां गतिम्।।८।।

कलहा राक्षसी कहती है—पूर्वजन्म के पापकर्म रूप कर्मविपाक के कारण मुझे यह दशा मिली है। हे विप्र! अब क्या करने से मुझे उत्तम गति मिलेगी?।।८।।

नारद उवाच

तां दृष्ट्वा प्रणतां सम्यग्वदमानां स्वकर्म तत्। अतीवविस्मितोविप्रस्तदावचनब्रवीत्।।९।।

देवर्षि नारद कहते हैं—विप्र धर्मदत्त ने इस राक्षसी को प्रणत तथा सम्यक्तः उसे अपने कर्मों को कहते देखकर अत्यन्त विस्मयपूर्वक कहना प्रारंभ किया।।९।।

धर्मदत्त उवाच

केन कर्मविपाकेन त्वंदशामीदृशीं गता। कुत्रत्याका च किंशीला तत्सर्वं कथयस्वमे॥१०॥

धर्मदत्त कहते हैं—किस कर्म विपाक से तुम्हारी यह विपरीत गति हो गयी? तुम्हारा निवास तथा चरित्र तब क्या था? वह सब कहो।।१०।।

कलहोवाच

सौराष्ट्रनगरे ब्रह्मन्! भिक्षुर्नामाऽभवद् द्विजः।
तस्याऽहं गृहिणीपूर्वं कलहाख्याऽतिनिष्ठुरा॥११॥
न कदाचिन्मयाभर्तुर्वचसाऽपिशुभंकृतम्। नाऽर्पितं तस्य मिष्टान्नं भतुर्वचनशीलया॥१२॥
कलहप्रियया नित्यं मयोद्विग्नमना यदा। परिणेतुं यदाऽन्यां स मतिं चक्रे पतिर्मम॥१३॥
ततो गरं समादाय प्राणास्त्यक्ता मया द्विज!।
अथ बद्ध्वा वध्यमानां मां निन्युर्यमकिङ्कराः॥१४॥
यमश्च मां तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तमपृच्छत॥१५॥

कलहा कहती है—हे ब्रह्मन्! सौराष्ट्र नामक नगर में भिक्षु नामक एक ब्राह्मण थे। मैं पूर्वकाल में उसकी पत्नी थी। मैं अतिनिष्ठुरा थी तथा मेरा नाम कलहा था। मैंने वाक्य से कभी भी स्वामी को प्रिय नहीं किया। मैंने कभी उसे मिष्ठान्न नहीं खिलाया न तो स्वामी का प्रिय ही किया, तथापि मैं नित्य उससे कलह करती रहती थी। मेरे पति ने मेरे चरित्र से उद्विग्न होकर अन्य पत्नी से विवाह कर लिया। तब मैंने विष खाकर प्राण त्याग कर दिया। तदनन्तर कृतान्त (यम किंकर) गण मुझ आत्महत्यारी को बांधकर ले गये। तब यम ने मुझे देखकर चित्रगुप्त से पूछा।।११-१५।।

यम उवाच

अनया किं कृतं कर्म चित्रगुप्त! विलोकय।
प्राप्नोत्वेषा च तत्कर्मशुभंवायदिवाऽशुभम्॥

कलहोवाच

चित्रगुप्तस्तदा वाक्यं भर्त्सयन्मामुवाच सः॥१६॥

यम कहते हैं—हे चित्रगुप्त! इस स्त्री ने क्या कर्म किया है? इसे देखो कि इसके कर्म शुभ हैं किंवा अशुभ हैं।

कलहा कहती है, तब चित्रगुप्त ने मेरी भर्त्सना करते हुये यह कहा।।१६।।

चित्रगुप्त उवाच

अनया तु कृतं कर्म शुभं किञ्चिन्न विद्यते॥१७॥

मिष्टान्नं भुञ्जमानेयं न भर्तरि तदर्पितम्। अतश्च वल्गुलीयोन्यांस्वविष्ठादाऽवतिष्ठतु॥१८॥
भर्तुर्द्वेषात्तदाप्येषा नित्यं कलहकारिणी। विष्ठादां सूकरीं योनिंतस्मात्तिष्ठत्वियं हरे॥१९॥
पाकभाण्डे सदा भुङ्क्ते भुङ्क्ते चैकायतस्ततः।
तस्मादेषा बिडाल्यस्तु स्वजाताऽपत्यभक्षिणी॥२०॥
भर्तारमपि चोद्दिश्य ह्यात्मघातः कृतोऽनया।
तस्मात्प्रेतशरीरेऽपि तिष्ठत्वेकाऽतिनिन्दिता॥२१॥
अतश्चैषा मरुद्देशं प्रापितव्या भटैरियम्। तत्र प्रेतशरीरस्था चिरं तिष्ठत्वियं ततः॥२२॥
ऊर्ध्वं योनित्रयं चैषा भुनक्त्वशुभाकारिणी॥२३॥

चित्रगुप्त कहते हैं—इस स्त्री ने जितने कर्म किये हैं, उनमें से कोई शुभकर्म नहीं है। यह स्वामी को दिये बिना स्वयं ही मिष्ठान्न भक्षण करती थी। अतएव पक्षी योनि में जन्म लेकर अपना ही मल भक्षण करे। हे यम! यह नारी नित्य स्वामी से द्वेष तथा कलह करती थी। इसलिये द्वितीय जन्म में विष्ठाभक्षी शूकरी बने। यह रमणी पाक करके स्वयं अकेले भोजन करती थी। अतः स्वजाति के पुत्रों का वध करने वाली मार्जारी (बिल्ली) हो। स्वामी के विरुद्ध हो इसने आत्महत्या किया, अतः अति निन्दित प्रेतयोनि में निवास करे। अब यमकिंकरगण इसे मरुस्थल ले जायें। तत्पश्चात् यह नारी प्रेत शरीर से वहां चिरकाल निवास करे तथा यह अशुभकारिणी स्त्री उन तीन योनियों का भोग करे।।१७-२३।।

कलहोवाच

साऽहं पञ्चशताब्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल।
क्षुत्तृष्णाभ्यां पीडिताऽऽविश्य शरीरं वणिजस्य च।
आयाता दक्षिणं देशं कृष्णावेण्योश्च सङ्गमम्॥२४॥
तत्तारं संश्रिता यावत्तावत्तस्य शरीरतः। शिवविष्णुगणैर्दूरमपकृष्टाबलादहम्॥२५॥
ततःक्षुत्क्षामयादृष्टो मया हि त्वं द्विजोत्तम!। त्वद्धस्ततुलसीवारिसंसर्गगतपापया॥२६॥
तत्कृत्यं कुरु विप्रेन्द्र कथं मुक्तिमियाम्यहम्। योनित्रयादग्रभवादस्माच्च प्रेतदेहतः॥२७॥
इत्थं विश्चित्य कलहावचनं द्विजाग्र्यस्तत्कर्मपाकभयविस्मयदुःखयुक्तः।
तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृतिर्ध्यात्वा चिरं स वचनं निजगाद दुःखात्॥२८॥

इति श्रीस्काप्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे धर्मदत्तेतिहासकथनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः।।२४।।

कलहा कहती है—मैं पांच सौ वर्ष पर्यन्त क्षुधा तृष्णा से पीड़ित होकर प्रेतवश में रहकर अन्त में वणिज् योनि में जन्मी। मैं कृष्णा तथा वेणी के संगम पर आई। मैं उन नदियों के संगम पर रह रही थी, तभी

शिव तथा विष्णु के अनुचरगण ने बुझे बलात् वहां से भगा दिया। हे द्विजोत्तम! मैं अत्यन्त क्षुधापीड़ित होकर आपके समीप आई हूं। अब आपके हाथों के तुलसी जल से मैं निष्पाप हो गई। हे विप्रेन्द्र! अब क्या करने से मैं भविष्य में मिलने वाली उपरोक्त तीनों योनियों से मुक्त हो सकूं, वह उपाय कहिये।'' तदनन्तर कलहा का यह कथन सुनकर द्विजप्रवर धर्मदत्त उसके कर्मविपाक भय से विस्मित हो गये। साथ ही उनको कलहा की दशा के प्रति दुःख भी हो गया। कलहा की आत्मग्लानि को देखकर कृपापरवश धर्मदत्त की चित्तवृत्ति निश्चल हो गयी और परदुःखकातर धर्मदत्त क्षण पर्यन्त विचार करके उससे कहने लगे।।७।।

।।चतुर्विंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चविंशोऽध्यायः

कलहा मोक्ष वर्णन

धर्मदत्त उवाच

विलयं यान्तिपापानितीर्थे दानव्रतादिभिः। प्रेतदेहस्थितायास्तेतेषुनैवाऽधिकारिता।।१।।
तद्ग्लानिदर्शनादस्मात्खिन्नं च मम मानसम्।
न वै निर्वृतिमायाति त्वामनुद्धृत्य दुःखिताम्।।२।।
तस्मादाजन्मचरितंयन्मयाकार्त्तिकव्रतम्। तत्पुण्यस्याऽर्द्धभागेन सद्गतिंत्वमवाप्नुहि।।३।।

धर्मदत्त कहते हैं—हे भद्रे! तीर्थसेवा तथा दान एवं व्रतद्वारा कलुष विलीन हो जाते हैं। तुम प्रेतदेह हो अतः इन सबका तुमको कदापि अधिकार नहीं है। तुम्हारी आत्मग्लानि देखकर मेरा मन खिन्न हो रहा है। तुम दुःखिता का उद्धार किये बिना मुझे निवृत्ति नहीं हो रही है। अतः मेरे द्वारा आचरित कार्त्तिक व्रत के पुण्यार्द्धभाग को लेकर उस पुण्य प्रभाव से सद्गति प्राप्त करो।।१-३।।

नारद उवाच

इत्युत्त्वा धर्मदत्तोऽसौ यावत्तामभ्यषेचयत्। तुलसीमिश्रतोयेनश्रावयन्द्वादशाक्षरम्।।४।।
तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखोपमा। दिव्यरूपधरा जाता लावण्येनयथेन्दिरा।।५।।
ततः सादण्डवद् भूमौ प्रणनामाऽथतंद्विजम्। उवाच सातदावाक्यैर्हर्षगद्गदभाषिणी।।६।।

नारद कहते हैं—द्विजप्रवर धर्मदत्त ने यह कहकर जैसे ही तुलसी जल से कलहा का अभिषेक किया तथा "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" विष्णुमन्त्र का उच्चारण किया, तभी कलहा की प्रेतत्व से मुक्ति हो गयी। उसने प्रज्वलित अग्नि शिखा की तरह देह धारण किया। अब वह लक्ष्मी की तरह सौन्दर्यशालिनी लग रही थी।।४-६।।

कलहोवाच

त्वत्प्रसादाद् द्विजश्रेष्ठ! विमुक्ता निरयादहम्।
पापाब्धौ मज्जमानाया त्वं नौभूतोऽसि मे ध्रुवम्।।७।।

कलहा कहती है—हे द्विजप्रवर! आपकी कृपा से मैं नरक से मुक्त हो गयी। मैं पाप के सागर में डूब रही थी। आज आपने पाप सागर से मेरा नौकारूपेण उद्धार किया। इसमें सन्देह नहीं है।।७।।

नारद उवाच

इत्थं वदन्तीसा विप्रं ददर्शाऽऽयातमम्बरात्। विमानंभास्वरं युक्तंविष्णुरूपधरैर्गणैः।।८।।
अथ सा तद्विमानाऽग्र्यं द्वाःस्थाभ्यामवरोपिता।
पुण्यशीलसुशीलाभ्यामप्सरोगणसेविता।।९।।
तद्विमानं तदाऽपश्यद्धर्मदत्तः सविस्मयः। पपातदण्डवद्भूमौदृष्ट्वातौविष्णुरूपिणौ।।१०।।
पुण्यशीलसुशीलौचतमुत्थाप्याऽऽनतंद्विजम्। अभिनन्द्यततोवाक्यमूचतुर्धर्मसंयुतम्।।११।।

नारद कहते हैं—कलहा जब ब्राह्मण धर्मदत्ता से यह कह ही रही थी, तभी आकाश से विमान पर विष्णुरूपधारी विष्णु के गण वहां आ गये तथा उनमें से धर्मशील तथा सुशील नामक दो विष्णुगणों ने विमान से द्वार पर आकर अप्सराओं से सेवित उस विमान पर कलहा को बैठाया। धर्मदत्त इस विमान को देखकर विस्मित हो गये और उन विष्णुरूपी पुरुषद्वय का दर्शन करके उनके समक्ष दण्डवत् होकर उनको प्रणाम किया। तब धर्मशील एवं सुशील नामक विष्णुगण ने उन भूपतित ब्राह्मण को उठाया तथा उनका अभिनन्दन करके यह वाक्य कहने लगे।।८-११।।

गणावूचतुः

साधुसाधुद्विजश्रेष्ठ! यस्त्वं विष्णुरतःसदा। दीनाऽनुकम्पीसर्वज्ञोविष्णुव्रतपरायणः।।१२।।
आबालत्वाच्छुभंत्वेतद्यत्त्वयाकार्त्तिकव्रतम्। कृतं तस्याऽर्द्धदानेनपुण्यंद्वैगुण्यमागमत्।।१३।।
जन्मान्तरशतोद्भूतं पापंतद्विलयं गतम्। स्नानैरेव गतं पापं यदस्याः पूर्वकर्मजम्।।१४।।
हरिजागरणाद्यैश्च विमानमिदमास्थिता। वैकुण्ठं नीयतेसाधोनानाभोगयुतात्वियम्।।१५।।
दीपदानभवैः पुण्यैस्तेजःसारूप्यमास्थिता। तुलसीपूजनाद्यैश्च कार्त्तिव्रतकैः शुभैः।
विष्णुसान्निध्यगा जाता त्वया दत्तैः कृपानिधे!।।१६।।
त्वमप्यस्य भवस्यान्ते भार्याभ्यां सह यास्यसि।
वैकुण्ठभुवनं विष्णोः सान्निध्यं च सरूपताम्।।१७।।

गण कहते हैं—हे द्विजप्रवर साधु-साधु! आपने अत्युत्तम कार्य किया है। आप विष्णुरत, दीनों पर दया करने वाले, सर्वज्ञ, विष्णुव्रतपरायण हैं। आपने बाल्यकाल से ही शुभ कार्त्तिक व्रत का पालन किया है। आपने जो कलहा को आधा पुण्य दिया इस पुण्य प्रभाव के कारण आपका पुण्य दूना संचित हो गया। आपके संचित सैकड़ों जन्म के पाप भी विलीन हो गये। हे साधु! आपके कार्त्तिक मासीय व्रत के पुण्य प्रभाव से कलहा का

भी पूर्वजन्म का पाप नष्ट हो गया। हरि जागरण के कारण यह कलहा विमान पर आसीन होकर वैकुण्ठ जा रही है। यह नाना भाग्य-भोग की अधिकारिणी हो गयी है। आपके कार्त्तिक मास के दीपदान के प्रभाव से कलहा को विष्णु सारूप्य लाभ हुआ है। कार्त्तिक में शुभ तुलसी के पूजनादि से कलहा को विष्णु सान्निध्य मिल रहा है। हे कृपानिधि! आप द्वारा प्रदत्त पुण्य से कलहा को यह उत्तम गति प्राप्त हो सकी है। हे धर्मदत्त! जो आपके समान भक्तिभाव से हरि की आराधना करता है, उसी का जन्म सार्थक है। हे द्विज! आप भी इस सुकृति द्वारा देहावसान होने पर भार्या के साथ वैकुण्ठधाम में गमन करके विष्णु सान्निध्य लाभ करके उनका सारूप्य प्राप्त करेंगे।।१२-१७।।

तेधन्याःकृतकृत्यास्तेतेषांचसफलोभवः। यैर्भक्त्याऽऽराधितोविष्णुर्धर्मदत्तयथात्वया॥१८॥
सम्यगाराधितोविष्णुःकिंनयच्छतिदेहिनाम्। औत्तानचरणिर्येनध्रुवत्वेस्थापितःपुरा॥१९॥
यन्नामस्मरणादेव देहिनो यान्ति सद्गतिम्॥२०॥
ग्राहग्रस्तोहिनागेन्द्रोयन्नामस्मरणात्पुरा। विमुक्तःसन्निधिंप्राप्तोजातोऽयंजयसञ्ज्ञकः॥२१॥
यतस्त्वयाऽर्चितो विष्णुस्तत्सान्निध्यं प्रयास्यसि।
बहून्यब्दसहस्राणि भार्याद्वययुतः किल॥२२॥
ततः पुण्यक्षयेजातेयदायास्यसिभूतलम्। सूर्यवंशोद्भवोराजाविख्यातस्त्वंभविष्यसि॥२३॥
नाम्ना दशरथस्तत्र भार्याद्वययुतः पुनः।
तृतीययाऽनया चाऽपि या ते पुण्यार्द्धभागिनी॥२४॥
तत्राऽपितवसान्निध्यंविष्णुर्यास्यतिभूतले। आत्मानंतवपुत्रत्वेप्रकल्प्याऽमरकार्यकृत्॥२५॥
तव जन्मव्रतादस्माद्विष्णुसन्तुष्टिकारकात्।
न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानिः वै॥२६॥
धन्योऽसि विप्राग्र्य! यतस्त्वयैतद् व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः।
यदर्धभागात्सफला मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम्॥२७॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे धर्मदत्तोपाख्याने कलहामोक्षकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

जो विष्णु को प्रणाम करके उनकी सम्यक् आराधना करते हैं, उन शरीरधारीगण को वे प्रभु सब कुछ प्रदान करते हैं। हे द्विज! उत्तरायण में हरि की आराधना करने से पूर्वकाल में ध्रुव ने ध्रुवत्व लाभ किया था। उनका नाम स्मरण करने वाला ऐसी उत्तम गति का लाभ करता है। जिनका नाम स्मरण करके मनुष्य उत्तम गति का लाभ करता है, उनके सम्बन्ध में अधिक क्या कहूं? पूर्वकाल में ग्राह द्वारा पकड़ा गया गजराज विष्णु का नाम लेकर मुक्त हो गया। उसने विष्णुलोक जाकर जय नाम से प्रसिद्धि पाई। हे द्विज! आपने कमलापति का पूजन किया है। आप इस पूजा प्रभाव से १०००० वर्ष पत्नी के साथ विष्णु के पास रहेंगे। पुण्यक्षय होने पर

पुनः जब पृथिवी पर जन्म होगा, तब आप सूर्यवंश में उत्पन्न राजा दशरथ के रूप में अवतीर्ण होंगे। प्रथमतः आपकी दो पत्नियां होंगी, तब आप तृतीया अर्द्धांगिनी पत्नी से विवाह करेंगे। हरि आपके पुत्र रूप में उत्पन्न होंगे। वे आपकी पत्नी के गर्भ से जन्म लेकर देवताओं का प्रिय कार्य करेंगे। आप द्वारा अनुष्ठित इस हरिव्रत से बढ़कर विष्णु को प्रसन्न करने वाला कोई भी कार्य नहीं है। हे द्विजप्रवर! आपने जगद्गुरु हरि को सन्तोष देने वाला व्रत किया। अतएव आप धन्य हैं। आप के इस हरिव्रत का आधा भाग पाकर यह कलहा तो सफला हो गयी। आप के पुण्य प्रभाव से हम इसे विष्णुलोक ले जा रहे हैं।।१८-२७।।

।।पञ्चविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षड्विंशोऽध्यायः

चोलराज तथा विष्णुदास ब्राह्मण का उपाख्यान
विष्णुदास तथा चोलराज का संवाद

नारद उवाच

इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा धर्मदत्तः सविस्मयः। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ वाक्यमेतदुवाच ह।।१।।

देवर्षि नारद कहते हैं—द्विज धर्मदत्त विष्णुरूपी पुरुषद्वय के इस वाक्य को सुनकर विस्मित हो गये। वे उनको पृथिवी पर दण्डवत् होकर प्रणाम करने लगे।।१।।

धर्मदत्त उवाच

आराधयन्ति सर्वेऽपि विष्णुं भक्ताऽर्तिनाशनम्। यज्ञैर्दानैर्व्रतैस्तीर्थैस्तपोभिश्च यथाविधि।।२।।
विष्णुप्रीतिकरं तेषां किञ्चित्सान्निध्यकारकम्।
यत्कृत्वा तानि चीर्णानि सर्वाण्यपि भवन्ति हि।।३।।

धर्मदत्त कहते हैं—हे विष्णुद्वय! सभी ने यथाविधि यज्ञ, दान, व्रत तथा तप द्वारा भक्तों के दुःख का नाश करने वाले हरि की आराधना करके उनको सन्तोष प्रदान किया, तथापि आपने मुझे ऐसे एक कार्य का उपदेश दिया जिसे करने से यज्ञ दानादि अनुष्ठान बिना भी मनुष्य विष्णुसान्निध्य लाभ कर सकते हैं।।२-३।।

गणावूचतुः

साधु पृष्टं त्वयाविप्रश्रृणुष्वैकाग्रमानसः। सेतिहासकथांपुण्यांकथ्यमानांपुराभवाम्।।४।।
काञ्चिपुर्यां पुराचोलश्चक्रवर्तीनृपोऽभवत्। यस्याख्ययैव तेदेशाश्चोलाइतिप्रथांगताः।।५।।
यस्मिञ्छासतिभूचक्रं दरिद्रोवाऽपितुःखितः। पापबुद्धिःसरुग्वाऽपिनैवकश्चिदभून्नरः।।६।।

यस्याप्युन्नतयज्ञस्य ताम्रपर्ण्यास्तटावुभौ। सुवर्णयूपैःशोभाढ्यावास्तांचैत्ररथोपमौ॥७॥
स कदाचिदगाद्राजा ह्यनन्तशयनं द्विज!। यत्राऽसौजगतांनाथोयोगनिद्रामुपाश्रितः॥८॥
तत्र श्रीरमणं देवं सम्पूज्य विधिवन्नृपः। मणिमुक्ताफलैर्दिव्यैः स्वर्णपुष्पैश्च शोभनैः॥९॥
प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपविष्टः स तत्र वै। तावद् ब्राह्मणमायातमपश्यद्देवसन्निधौ॥१०॥
देवार्चनार्थं पाणौ तुतुलस्युदकधारिणम्। स्वपुरीवासिनंतत्रविष्णुदासाह्वयं द्विजम्॥११॥
स तत्राभ्येत्यविप्रर्षिर्देवदेवमपूजयत्। विष्णुसूक्तेन संस्नाप्य तुलसीमञ्जरीदलैः॥१२॥

तुलसीपूजया तस्य रत्नपूजां पुरा कृताम्।
आच्छादितां समालोक्य राजा क्रुद्धोऽब्रवीदिदम्॥१३॥

हरि गणद्वय कहते हैं—हे विप्र! आपने उत्तम प्रश्न किया है। इस विषय में प्राचीन काल में संघटित एक पवित्र इतिहास कथा कहता हूं। एकाग्रतापूर्वक श्रवण करो। पूर्वकाल में काञ्चीपुर में चोल नामक चक्रवर्त्ती राजा थे। इनके ही नाम से उनके द्वारा शासित देश चोलराज्य कहलाया। राजा चोल जब भूचक्र में शासन कर रहे थे, तब उनके राज्य में कोई भी गरीब, दुःखी, पापी तथा रोगार्त्त नहीं था। उनके द्वारा यज्ञ के उन्नत स्वर्ण स्तूप समस्त तामपर्णी नदी के दोनों तटों पर गाड़े गये थे। वे सभी दो चैत्ररथ के समान शोभायुक्त थे। हे द्विज! जहां जगत्पति योगनिद्रा में शयन करते हैं, एक बार चोलराजा वहां आये तथा वहां दिव्यमणि, मुक्ता एवं स्वर्णकुसुम द्वारा राजा ने श्रीपति देव विष्णु की सम्यक् पूजा किया तथा उनको दण्डवत् प्रणिपात करके भूतल पर बैठ गये। राजा को बैठा देखकर वहां पर विष्णुदास नामक एक ब्राह्मण आये। उन्होंने विष्णु पूजार्थ तुलसी तथा जल हाथों में लिया था। ये विष्णुदास ब्राह्मण उन चोलराज के ही नगरवासी थे। विप्रर्षि विष्णुदास वहां आये तथा उन्होंने भगवान् को स्नान कराकर तुलसी मंजरी से आच्छादित कर दिया। इस प्रकार उन्होंने सम्यक् रूप से भगवत् पूजा को सुसम्पन्न किया। भक्त विष्णुदास की यह तुलसी मंजरी द्वारा पूजा रत्नादि पूजनवत् हो गयी। तदनन्तर चोलराज ने तुलसीदल द्वारा अपनी पूजा को आच्छादित देखकर क्रोधपूर्वक कहा।।४-१३।।

चोल उवाच

माणिक्यस्वर्णपूजाऽत्र शोभाढ्या या कृता मया।
विष्णुदास! कथं सेयमाच्छन्ना तुलसीदलैः॥१४॥
विष्णुभक्तिं न जानासि वराकोऽसि मतो मम।
यस्त्विमामतिशोभाढ्यां पूजामाच्छादयस्यहो॥१५॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा सक्रोधः स द्विजोत्तमः। राज्ञो गौरवमुल्लङ्घ्य जगाद वचनं तदा॥१६॥

राजा कहते हैं—हे विष्णुदास! मैंने माणिक्य तथा स्वर्णादि द्वारा जो सुशोभन अर्चना किया है, तुमने उसे तुलसीदल से क्यों आच्छादित किया? मुझे प्रतीत होता है कि तुम मूढ़ हो। मेरी विष्णु-भक्ति तुमको ज्ञात नहीं है। अहो! इसी कारण से तुमने मेरी पूजा को आच्छादित कर दिया। राजा की यह बात सुनकर द्विजोत्तम विष्णुदास तब क्रोधित हो गये तथा राजा की मर्यादा का उल्लंघन करके कहने लगे।।१४-१६।।

विष्णुदास उवाच

राजन्भक्तिं न जानासि गर्वितोऽसि नृपश्रिया।
कियद्विष्णुव्रतं पूर्वं त्वया चीर्णं वदस्व तत्॥१७॥

विष्णुदास कहते हैं—हे राजन्! आप राज्य समृद्धि से गर्वित हो गये हैं। आप विष्णुभक्ति नहीं जानते। आपने पूर्वकाल में किस प्रकार के विष्णुव्रत का पालन किया था, वह कहिये।।१७।।

गणावूचतुः

तद्ब्राह्मणवचः श्रुत्वा प्रहस्य स नृपोत्तमः। विष्णुदासं तदागर्वादुवाचवचनंद्विजम्॥१८॥

हरि गणद्वय कहते हैं—तब राजाओं में श्रेष्ठ चोलराजा विष्णुदास का यह वाक्य सुनकर हंस पड़े तथा गर्वपूर्वक उनसे यह वाक्य कहा।।१८।।

राजोवाच

इत्थं चेद्वदसे विप्र! विष्णुभक्त्याऽतिगर्वितः।
भक्तिस्ते कियती विष्णोर्दरिद्रस्याऽधनस्य च॥१९॥
यज्ञदानादिकं नैव विष्णोस्तुष्टिकरं कृतम्। नाऽपि देवालयंपूर्वंकृतंविप्रत्वयाक्वचित्॥२०॥
ईदृशस्याऽपि ते गर्व एषतिष्ठतिभक्तितः। तच्छृण्वन्तुवचोमेऽद्यसर्वेऽप्येतेद्विजातयः॥२१॥
साक्षात्कारमहं विष्णोरेष वाऽऽदौ गमिष्यति।
पश्यन्तु सर्वेऽपि ततो भक्तिं ज्ञास्यन्ति चावयोः॥२२॥

राजा कहते हैं—हे विप्र! विष्णु भक्ति से अत्यन्त गर्वित होकर तुम इस प्रकार बोल तो रहे हो, तथापि तुम दरिद्र हो। तुम्हारे पास धन नहीं है अतः तुम्हारी ही भक्ति कैसी? हे विप्र! तुमने विष्णु को प्रसन्नता प्रदान करने वाला यज्ञदानादि तो किया ही नहीं, कहीं पर एक भी देवालय की तुमने प्रतिष्ठा नहीं किया। इसलिये तुम्हारे जैसे धनहीन की विष्णु भक्ति की कथा गर्वित वाक्य लग रही है। अब सभी द्विजगण मेरी विष्णुभक्ति की बातों को सुनें। आप यह सब देखें कि हमदोनों में से कौन पहले विष्णुदर्शन प्राप्त करता है। इससे आप लोगों को हम दोनों में तुलनात्मक रूप से विष्णुभक्ति की अधिकता अथवा न्यूनता का ज्ञान होगा।।१९-२२।।

गणावूचतुः

इत्युक्त्वा सनृपोऽगच्छन्निजराजगृहं तदा। आरभद्वैष्णवंसत्रंकृत्वाऽचार्यंतुमुद्गलम्॥२३॥

गणद्वय कहते हैं—राजा चोल ने इस प्रकार से कहा तथा अपने महल चले गये। मुनि मुद्गल का आचार्यरूप से वरण करके राजा ने यज्ञ को प्रारंभ किया। यह विष्णुयज्ञ था।।२३।।

ऋषिसङ्घसमाजुष्टं बह्वन्नं बहुदक्षिणम्। यच्च ब्रह्मकृतं पूर्वं गयाक्षेत्रे समृद्धिमत्॥२४॥
विष्णुदासोऽपि तत्रैव तस्थौ देवालये व्रती।
यथोक्तनियमान्कुर्वन्विष्णोस्तुष्टिकरान्सदा। ।२५॥

माघोर्जयोर्व्रतं सम्यक्तुलसीवनपालनम्। एकादश्यां हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया।।२६।।
उपचारैः षोडशभिर्नृत्यगीतादिमङ्गलैः।
नित्यं विष्णोस्तथा पूजां व्रजान्येतानि सोऽकरोत्।।२७।।
नित्यंसंस्मरणंविष्णोर्गच्छन्भुविस्वपन्नपि। सर्वभूतस्थितंविष्णुमपश्यत्समदर्शनः।।२८।।
माघकार्त्तिकयोर्नित्यं विशेषनियमानपि। अकरोद्विष्णुतुष्ट्यर्थंसोद्यापनविधिं तथा।।२९।।
एवं समाराधयतोः श्रियःपतिं तयोश्च चोलेश्वरविष्णुदासयोः।
अगाद्धिकालः सुमहान्व्रतस्थयोस्तन्निष्ठसर्वेन्द्रियकर्मणोस्तदा।।३०।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे चोलराजविष्णुदासब्राह्मणविवादकथनंनाम षड्विंशोऽध्यायः।।२६।।

इस यज्ञ में अनेक ऋषि, तपस्वी आये थे। पूर्व में अनेक यज्ञ तथा दक्षिणा द्वारा ब्रह्मा ने गयाक्षेत्र में जैसा समृद्ध यज्ञ किया था, उन चोल राजा ने भी वैसा यज्ञ सम्पादित किया। इधर विष्णुदास ब्राह्मण भी व्रताचरण पूर्वक वहां एक विष्णुमन्दिर में यथाविधि नियम पालन करते हुये विष्णु को प्रसन्न करने लगे। वे सम्यक्रूप से कार्त्तिक तथा माघव्रत का आचरण, तुलसी वनपालन, एकादशी के दिन विष्णु मन्त्र "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" का जप तथा षोडशोपचार से नृत्यगीतादि मंगलप्रद अनुष्ठान करते हुये नित्य पूजा करते थे। इसके अतिरिक्त भी व अन्य अनेक व्रत करते थे। विष्णुदास चलते-फिरते, निद्रित रहते, बैठे-खड़े होते, हरेक अवस्था में विष्णुनाम स्मरण करते रहते। उन्होंने सर्वभूतस्थ विष्णु का सर्वत्र समानभाव से दर्शन लाभ किया। तदनन्तर इस प्रकार नित्यव्रताचरण द्वारा विष्णु के सन्तोषार्थ विशेष नियमपालन करते हुये विधिपूर्वक माघ तथा कार्त्तिक व्रत का उन्होंने उद्यापन किया। विष्णुदास तथा राजा चोल ने इस प्रकार हरि की आराधना करते हुये दीर्घकाल व्यतीत कर दिया। ये दोनों ही व्रताचरण तत्पर थे। उनकी सभी इन्द्रियां अपने-अपने कार्यों से जगत्गुरु श्रीहरि में निष्ठित थीं।।२४-३०।।

।।षड्विंश अध्याय समाप्त।।

सप्तविंशोऽध्यायः

चोलराज तथा विष्णुदास को मुक्ति लाभ

नारद उवाच

कदाचिद्विष्णुदासोऽथ कृत्वा नित्यविधिं द्विज। सपाकमकरोत्तावदहरत्कोऽप्यलक्षितः।।१।।
तमदृष्ट्वाऽप्यसौ पाकं पुनर्नैवाऽकरोत्तदा। सायंकालार्चनस्याऽसौव्रतभङ्गभयाद्द्विजः।।२।।

द्वितीयेऽह्नि पुनःपाकं कृत्वा यावत्सविष्णवे। उपहारार्पणंकर्तुं गतःकोऽप्यहरत्पुनः॥३॥
एवं सप्तदिनं तस्य पाकं कोऽप्यहरन्नृप!। ततः सविस्मयश्चाथ मनस्येवमधारयत्॥४॥

देवर्षि नारद कहते हैं—तदनन्तर एक बार ब्राह्मण विष्णुदास नित्यकार्य सम्पन्न करके भोजन बना रहे थे। जैसे ही उनका भोजन बनाने का कार्य सम्पन्न हुआ, मानो तभी किसी ने समस्त बने भोजन का अपहरण कर लिया, तथापि सायंकालीन पूजा न करने से व्रतभंग न हो, इसलिये उन्होंने पुनः भोजन नहीं बनाया। क्योंकि पुनः भोजन बनाने में समय नष्ट होने पर पूजा न हो पाती तथा पूजाक्रम भंग हो जाता। इसलिये वे उस दिन उपवासी ही रह गये। दूसरे दिन वे जैसे ही भोजन पाक करके उसे विष्णु को निवेदित करने जाने लगे, तभी वह भोजन द्रव्य पुनः गायब हो गया। मानो किसी ने उसका अपहरण कर लिया। हे राजन्! इस प्रकार सात दिनों तक यही क्रम चलता रहा। उनकी बनाई भोजन सामग्री भगवान् को अर्पित करने के पूर्व ही अपहृत सी हो जाती! इस घटनाक्रम से विस्मित होकर विष्णुदास विचार करने लगे।।१-४।।

अहोनित्यं समभ्येत्य कः पाकं हरते मम। क्षेत्रसंन्यासिनःस्थानंनत्याज्यंममसर्वथा॥५॥
पुनःपाकंविधायाऽत्रभुज्यतेयदिचेन्मया। सायंकालाऽर्चनं चैव परित्याज्यंकथंभवेत्॥६॥
यदिपाकंविधायैव भोक्तव्यं तु मया न तत्। अनिवेद्यहरौसर्वं वैष्णवैर्नैव भुज्यते॥७॥

उपाषितोऽहं सप्ताऽहं तिष्ठाम्यत्र व्रतस्थितः।
अद्य संरक्षणं सम्यक्पाकस्याऽत्र करोम्यहम्॥८॥
इति पाकं विधायाऽसौ तत्रैवाऽलक्षितः स्थितः।
तावद्ददर्श चण्डालं पाकान्नहरणे स्थितम्॥९॥

"यह तो महान् आश्चर्य है। कौन प्रतिदिन भोजन सामग्री अपहृत कर रहा है? यह स्थान चोरों से युक्त रहने पर भी संन्यासी क्षेत्र है। यह किसी प्रकार भी त्याग करने योग्य नहीं है। यदि पुनः भोजन पाक करने लगूंगा तब तो सायंकाल का समय हो जायेगा, तब क्या सायं पूजा का त्याग करना होगा? यदि मैं पुनः पाक करता हूं तब हरि को बिना निवेदित किये भोजन करना कदापि वैष्णव के लिये उचित नहीं होगा। मैं तो व्रतस्थ होकर सात दिनों से उपवास कर रहा हूं। अतः आज मैं भोजन बनाकर अन्यत्र कहीं नहीं जाऊंगा तथा उसकी पहरेदारी करूंगा।" विष्णुदास ने यह निश्चय किया तथा वहीं पर छिप कर बैठ गये। तभी वह देखते है कि एक चाण्डाल वह खाद्यसामग्री ग्रहण करने वहां आ पहुंचा।।५-९।।

क्षुत्क्षामं दीनवदनमस्थिचर्माऽवशेषितम्।
तमालोक्य द्विजाग्र्योऽभूत्कृपयाऽन्वितमानसः॥१०॥
विलोक्याऽन्नहरं विप्रस्तिष्ठतिष्ठेत्यभाषत। कथमश्नासि तद्रूक्षं घृतमेतद्गृहाणभोः॥११॥

वह चाण्डाल अत्यन्त क्षुधार्त्त, दीनवदन तथा अस्थिचर्मावशिष्ट था। जब उन द्विजप्रवर विष्णुदास ने चाण्डाल की यह अवस्था देखा तब उनका हृदय दयार्द्र हो उठा। उन्होंने उस अन्न अपहरणकर्त्ता को देखकर कहा "रुको रुको! यह रूखा अन्य क्यों खा रहे हो? यह घृत देता हूं। इसके साथ अन्न ग्रहण करो।"।।१०-११।।

इत्थं वदन्तं विप्राग्र्यमायान्तंस विलोक्य च। वेगादधावत्तद्भीत्यामूर्च्छितश्चपपातह॥१२।

भीतंसंमूर्च्छितंदृष्ट्वाचण्डालंसद्विजाग्रणीः। वेगादभ्येत्यकृपयास्ववस्त्रान्तन्तैरवीजयत्॥१३॥
अथोत्थितंतमेवासौविष्णुदासोव्यलोकयत्। साक्षान्नारायणंदेवंशङ्खचक्रगदाधरम्॥१४॥

द्विजप्रवर विष्णुदास के यह कहने पर वह चाण्डाल भय के कारण वहां से शीघ्रता से भागने लगा, लेकिन वह अधिक दूर न जाकर पास में ही अशक्तता के कारण मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। द्विजोत्तम विष्णुदास उस चाण्डाल को भयभीत तथा मूर्च्छित देखकर शीघ्रतापूर्वक उसके निकट आये तथा अपने उत्तरीय से उसे पंखा करने लगे। जब वह चाण्डाल उठा तब विष्णुदास देखते हैं कि वह तो साक्षात् शंख-चक्र-गदाधारी साक्षात् नारायणस्वरूप हैं।।१२-१४।।

तं दृष्ट्वा सात्त्विकैर्भावैरावृतो द्विजसत्तमः। स्तोतुंचैवनमस्कर्तुतदानाऽलम्बभूव सः॥१५॥
अथशक्रादयोदेवास्तत्रैवाभ्याययुस्तदा। गन्धर्वाप्सरसश्चाऽपिजगुश्चननृतुर्मुदा॥१६॥
विमानशतसङ्कीर्णं देवर्षिशतसङ्कुलम्। गीतवादित्रनिर्घोषं स्थानंतदभवत्तदा॥१७॥
ततो विष्णुः समालिङ्ग्य स्वभक्तं सात्विकव्रतम्।
सारूप्यमात्मनो दत्त्वाऽनयद्वैकुण्ठमन्दिरम्॥१८॥
विमानवरसंस्थंतं गच्छन्तं विष्णुसन्निधिम्। दीक्षितश्चोलनृपतिर्विष्णुदासंददर्शसः॥१९॥
वैकुण्ठभुवनं यान्तं विष्णुदासंविलोक्यसः। स्वगुरुंमुद्गलंवेगादाहूयेत्थं वचोऽब्रवीत्॥२०॥

द्विजप्रवर विष्णुदास भगवान् को वहां प्रकट देखकर सात्विक भाव से विभोर हो गये। वे स्तव करें अथवा प्रणाम करें, कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रहे थे। तदनन्तर वहां इन्द्रादि देवगण आये। गन्धर्व तथा अप्सरायें आदि नृत्य-गीत रत हो गये। सैकड़ों विमानों से वह स्थान समाकीर्ण हो गया। वहां सैकड़ों देवर्षिगण भी आ गये। वह स्थान गीत-वाद्य के घोष से पूर्ण हो गया। तदनन्तर श्रीहरि ने सात्विक व्रतशील अपने भक्त विष्णुदास का आलिंगन किया तथा उनको अपना सारूप्य प्रदान करने वैकुण्ठ ले गये। जब विष्णुदास अत्युत्तम विमान पर आरूढ़ होकर विष्णुलोक जाने लगे, तब यज्ञदीक्षित राजा चोल ने उनको देखा। राजा शीघ्रतापूर्वक अपने गुरु मुद्गल के पास आकर कहने लगे।।१५-२०।।

चोल उवाच

यत्स्पर्द्धया मयाचैवयज्ञादानादिकंकृतम्। सविष्णुरूपधृग्विप्रोयातिवैकुण्ठमन्दिरम्॥२१॥
दीक्षितेन मया सम्यक्सत्रेऽस्मिन्वैष्णवे त्वया।
हुतमग्नौ कृता विप्रा दानाद्यैः पूर्णमानसाः॥२२॥
नैवाऽद्यापि सप्तमेदेवःप्रसन्नोजायतेध्रुवम्। विष्णुदासस्यभक्त्यैवसाक्षात्कारंददौहरिः॥२३॥
तस्माद्दानैश्च यज्ञैश्च नैव विष्णुः प्रसीदति। भक्तिरेव परं तस्य निदानं दर्शने विभोः॥२४॥

राजा चोल कहते हैं—हे गुरुदेव! मैं जिसकी स्पर्द्धा के कारण यज्ञ-दानादि में प्रवृत्त था, यह देखिये, वह विष्णुदास विष्णुरूपधारी होकर वैकुण्ठलोक जा रहा है। मैं आप द्वारा सम्यक्तः विष्णुयज्ञ में दीक्षित होकर अग्नि में आहुति दे रहा हूं तथा दान-मान से ब्राह्मणों का पूर्णकाम कर रहा हूं, तथापि देव विष्णु मुझ पर प्रसन्न

नहीं हैं। विष्णुदास की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् ने उसको साक्षात् दर्शन दे दिया! इसलिये दान एवं यज्ञ से श्रीहरि प्रसन्न नहीं होते। एकमात्र भक्ति ही उनके साक्षात्कार के लिये श्रेष्ठ निदान है।।२१-२४।।

गणावूचतुः

इत्युक्त्वाभागिनेयंस्वमभ्यषिञ्चन्नृपासने। आबाल्याद्दीक्षितो यज्ञे ह्यपुत्रत्वमगाद्यतः॥२५॥
तस्मादद्याऽपि तद्देशेसदाराज्यांशभागिनः। स्वस्त्रेयाएवजायन्ते तत्कृतावधिवर्तिनः॥२६॥
यज्ञवाटं ततोऽभ्येत्य यज्ञकुण्डाग्रतः स्थितः।
त्रिरुच्चैर्व्याजहाराऽऽशुविष्णुं संबोधयंस्तदा॥२७॥
विष्णो! भक्तिं स्थिरां देहि मनोवाक्कायकर्मभिः।
इत्युक्त्वा सोऽपतद्वह्नौ सर्वेषामेव पश्यताम्॥२८॥
मुद्गलस्तु तदा क्रोधाच्छिखामुत्पाटयत्स्वकाम्।
ततस्त्वद्याऽपि तद्गोत्रे मुद्गला विशिखा बभुः॥२९॥
तावदाविरभूद्विष्णुः कुण्डाग्नौ भक्तवत्सलः।
तमालिङ्ग्य विमानाग्र्यं समारोहयदच्युतः॥३०॥
तमालिङ्ग्याऽऽत्मसारूप्यंदत्त्वावैकुण्ठमन्दिरम्। तेनैवसहदेवेशोजगामत्रिदशैर्वृतः॥३१॥

हरिगण कहते हैं—राजा चोल पुत्ररहित थे। उन्होंने गुरु से यह कहकर अपनी बहन के पुत्र को सिंहासन पर अभिषिक्त किया। राजा बाल्यकाल से ही यज्ञ दीक्षित थे। अतः पुत्ररहित थे। तभी से चोलराज्य वंश में यह परम्परा हो गई, वहां के राजा अपने उत्तराधिकारी के रूप में भांजे को ही नियुक्त करने लगे। तदनन्तर राजा चोल शीघ्रता से यज्ञभूमि में आये तथा विष्णु को सम्बोधित करते हुये उच्च स्वर से कहने लगे—"हे विष्णु! मन-वाणी-कर्म से जो भक्ति सुस्थिर है, वही मुझे प्रदान करिये।" राजा ने यह कहकर दण्डवत् स्थिति में स्वयं को उस यज्ञाग्नि में गिरा दिया! ऋषि मुद्गल ने यह देखकर क्रोधपूर्वक अपनी शिखा को उखाड़ लिया। हे द्विज! तभी से आज भी मुद्गल गोत्रीय ब्राह्मण शिखाहीन रहते हैं। यह सब घटना घटित होने पर भक्तवत्सल देवेश अच्युत विष्णु उस यज्ञकुण्डाग्नि में प्रादुर्भूत हो गये। उन्होंने राजा का आलिंगन करके उनको विमान पर बैठाया। भगवान् ने उनको सारूप्य प्रदान किया। भगवान् देवगणों से घिरे हुये राजा को लेकर स्वधाम चले गये।।२५-३१।।

नारद उवाच

यो विष्णुदासः स तु पुण्यशीलो यश्चोलभूपः स सुशीलनामा।
एतावुभौ तत्समरूपभाजौ द्वाःस्थौ कृतौ तेन रमाप्रियेण॥३२॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे चोलविष्णुदासमुक्तिकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः।।२७।।

नारद कहते हैं—हे राजन्! वे विष्णुदास ही उन दोनों हरिगण में से पुण्यशील नामक हरिगण हुये तथा राजा चोल सुशील नामक हरिगण कहलाये। कमलापति भगवान् विष्णु द्वारा इन दोनों को सारूप्य प्राप्त हुआ। ये लोग वैकुण्ठ के द्वारपाल के रूप में प्रतिष्ठित हैं।।३२।।

।।सप्तविंश अध्याय समाप्त।।

अष्टाविंशोऽध्यायः

धर्मदत्त को मोक्षलाभ

धर्मदत्त उवाच

जयश्च विजयश्चैव विष्णोर्द्वाःस्थौ श्रुतौ मया।
किं नु ताभ्यां पुरा चीर्णं तस्मात्तद्रूपधारिणौ॥१॥

धर्मदत्त कहते हैं—मैंने सुना है कि जय तथा विजय ही विष्णु के द्वार पर स्थित रहते हैं। उन्होंने क्या कर्म किया था जिसके कारण उन्होंने जय, विजय रूप से वहां द्वाररक्षक का पद प्राप्त किया?।।१।।

गणावूचतुः

तृणबिन्दोस्तु कन्यायां देवहूत्यांपुराद्विज!। कर्दमस्यतु दृष्ट्यैवपुत्रौद्वौसम्बभूवतुः॥२॥
ज्येष्ठो जयः कनिष्ठोऽभूद्विजयश्चैव नामतः।
तस्यामेवाऽभवत्पश्चात्कपिलो योगधर्मवित्॥३॥
जयश्च विजयश्चैब विष्णुभक्तिरतौ सदा। तौ तन्निष्ठेन्द्रियग्रामौ धर्मशीलौबभूवतुः॥४॥
नित्यमष्टाक्षरीजाप्यौ विष्णुव्रतकरावुभौ। साक्षात्कारं ददौ विष्णुस्तयोर्नित्यार्चने सदा॥५॥
मरुत्तेन कदाचित्तावाहूतौ यज्ञकर्मणि। जग्मतुर्यज्ञकुशलौ देवर्षिगणपूजितौ॥६॥
जयस्तत्राऽभवद्ब्रह्मा याजकोविजयोऽभवत्। ततोयज्ञविधिंकृत्स्नंपरिपूर्णञ्चचक्रतुः॥७॥

दोनों ही गण कहते हैं—हे द्विज! पूर्वकाल में तृणविन्दु की कन्या देवहूति के गर्भ से कर्दम ऋषि को प्रसन्नता प्रदाता दो पुत्रों का जन्म हुआ। इनका नाम जय तथा विजय था। तदनन्तर देवहूति को एक और पुत्र जन्मा। उनका नाम था कपिल। कपिल योगधर्म ज्ञाता थे। विष्णुव्रततत्पर जय तथा विजय सतत् विष्णुभक्तिरत जितेन्द्रिय तथा धर्मात्मा थे। वे नित्य विष्णु के अष्टाक्षर मन्त्र का जप करते थे। जय तथा विजय की सतत् पूजा से प्रसन्न होकर उनको श्रीहरि ने प्रत्यक्ष दर्शन प्रदान किया। एक बार मरुत् के आह्वान पर यज्ञकुशल देवर्षिगण पूजित जय-विजय उनके यज्ञ में गये। इस यज्ञ में जय ने ब्रह्मा का कार्य तथा विजय ने होता कार्यभार ग्रहण किया। उन दोनों ने समस्त यज्ञकार्य सम्पन्न कर दिया।।२-७।।

मरुत्तोऽवभृथस्नातस्ताभ्यां वित्तं ददौ बहु। तत्समादाय तौ वित्तं जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति॥८॥
यजनाय पृथग्विष्णोस्तुष्ट्यर्थं तौततोमुनी। तद्धनंविभजन्तौहिपस्पर्धातेपरस्परम्॥९॥
जयोऽब्रवीत्समो भागः क्रियतामितितत्रसः। विजयश्चाब्रवीन्नैतद्यल्लब्धंयेनतस्यतत्॥१०॥
ततोऽशपज्जयःक्रोधाद्विजयंलुब्धमानसम्। गृहीत्वानददास्येतत्तस्माद्ग्राहोभवेतितम्॥११॥
विजयस्तस्य तं शापं श्रुत्वा सोऽप्यशपच्च तम्।
मद्भ्रान्तोऽशपस्त्वं मां तस्मान्मातङ्गतां व्रज॥१२॥
तत्तदाचख्यतुर्विष्णुं दृष्ट्वा नित्यार्चनेविभुम्। शापयोश्चनिवृत्तिंतौययाचातेरमापतिम्॥१३॥

तत्पश्चात् राजा मरुत् ने अवभृथ स्नानोपरान्त इन जय-विजय को प्रभूत धन प्रदान किया। जय-विजय यह समस्त धनसम्पत्ति लेकर अपने आश्रम लौटे। इसके पश्चात् इन दोनों ने विष्णु की प्रसन्नता हेतु पृथक् रूप से यज्ञानुष्ठान करना चाहा, जिसके लिये यह धनसम्पत्ति विभाजित करते समय उनमें स्पर्द्धा हो गयी। तब जय ने कहा "यह सम्पत्ति समान रूप से हम दोनों में विभाजित हो।" तथापि विजय ने कहा—"नहीं ऐसा नहीं होगा। यज्ञ में जिसे जो मिला है, वही उसकी सम्पत्ति मानी जायेगी।" लोभी विजय का कथन सुनकर क्रोधातुर जय ने विजय को शाप दिया "तुम राजा से मेरे हिस्से का धन पाकर भी मेरा धन मुझे नहीं दे रहे हो। अतः तुम ग्राह हो जाहो।" विजय ने भी जय का शाप सुनकर उसे शाप दिया "तुमने मदमत्त होकर मुझे शापित किया है, अतः तुम हाथी हो जाओ।" तदनन्तर परस्परतः अभिशप्त जय-विजय ने पूजाकाल में रमापति हरि का दर्शन करके उनसे अपनी शाप निवृत्ति हेतु प्रार्थना किया।।८-१३।।

जयविजयावूचतुः

भक्तावावांकथंदेवग्राहमातङ्गयोनिगौ। भविष्यावःकृपासिन्धोतच्छापोविनिवर्त्यताम्॥१४॥

जय-विजय कहते हैं—हे देव! हम आपके भक्त हैं। परस्परतः शाप के कारण हम हाथी तथा ग्राह योनि पाने जा रहे हैं। हे कृपासिन्धु! अब हम क्या उपाय करें कि हमारी शापनिवृत्ति हो जाये?।।१४।।

श्रीभगवानुवाच

मद्भक्तयोर्वचोऽसत्यं न कदाचिद्भविष्यति।
मयाऽपि नान्यथाकर्तुं शक्यते तत्कदाचन॥१५॥
प्रह्लादवचसास्तम्भेऽप्याविर्भूतो ह्यहं पुरा। तथाऽम्बरीषवाक्येनजातोगर्भे स्वयंकिलं॥१६॥
तस्माद्युवामिमौ शापावनुभूय स्वयंकृतौ। लभेथांमत्पदंनित्यमित्युक्त्वाऽन्तर्दधेहरिः॥१७॥

श्री भगवान् कहते हैं—"मेरे भक्तों का वाक्य कदापि निष्फल नहीं होता। मैं स्वयं भी अपने भक्तों के वाक्य को अन्यथा नहीं कर सकता। देखो! मैं अपने भक्त प्रह्लाद के वाक्य को सत्य करने हेतु पूर्वकाल में स्तम्भ से आविर्भूत हो गया। भक्त अम्बरीष की प्रार्थना पर मैंने गर्भ में आना स्वीकार किया। इसलिये भक्त का वाक्य व्यर्थ नहीं जाता। इस कारण तुम लोग अपने द्वारा दिये गये शाप का फल भोग करके मेरे सनातन पद को प्राप्त करो।" श्री हरि यह कहकर अन्तर्हित् हो गये।।१५-१७।।

गणावूचतुः

ततस्तौ ग्राहमातङ्गावभूतो गण्डकीतटे। जातिस्मरौ तु तद्योन्यामपि विष्णुव्रते स्थितौ॥१८॥

कदाचित्स गजःस्नातुंकार्त्तिकेगण्डकींगतः।
तावज्जग्राहतंग्राहःसंस्मरञ्च्छापकारणम्॥१९॥

ग्राहग्रस्तो ह्यसौ नागः सस्मार श्रीपतिं तदा। तावदाविरभूद्विष्णुश्चक्रशङ्खगदाधरः॥२०॥

ततस्तौ ग्राहमातङ्गौ चक्रं क्षिप्त्वासमुद्धृतौ। दत्त्वैवनिजसारूप्यंवैकुण्ठमनयद्विभुः॥२१॥

ततः प्रभृति तत्स्थानं हरिक्षेत्रमितिस्मृतम्।
चक्रसङ्घर्षणाद्यस्मिन्ग्रावाणोऽपि हि लाञ्छिताः॥२२॥

हरिगण कहते हैं—तदनन्तर जय-विजय गण्डकी नदी के तट पर ग्राह तथा हाथी के रूप में अवतीर्ण हुये। तब भी वे विष्णुव्रताचरण करते रहने के पूर्वजन्म की स्मृति के साथ जन्मे। तदनन्तर एक बार कार्त्तिक मास में वह हाथी स्नानार्थ गण्डकी तट पर गया। शाप के कारण उसे उस ग्राह ने पकड़ लिया। ग्राह के पकड़े जाकर गज ने रमापति हरि का स्मरण किया, जिसके कारण शंख-चक्र-गदाधारी विभु विष्णु वहां तत्क्षण प्रादुर्भूत हो गये और उन्होंने चक्र से ग्राह का वध करके हाथी का उद्धार किया और गज एवं ग्राह को अपना सारूप्य प्रदान किया। तदनन्तर भगवान् ने उनको वैकुण्ठ में स्थान प्रदान किया। हे द्विज! तब से वह गण्डकी तट विष्णुक्षेत्र कहलाता है। चक्र के छोड़ने के घर्षणस्वरूप समस्त गण्डकी शिलायें चक्रचिह्नित हो गयी हैं।।१८-२२।।

तावुभौ विश्रुतौ लोके जयश्च विजयस्तथा।
नित्यं विष्णुप्रियौ द्वाःस्थौ पृष्टौ यौ हि त्वया द्विज!॥२३॥
अतस्त्वमपि धर्मज्ञ! नित्यं विष्णुव्रते स्थितः।
त्यक्तमात्सर्यदम्भोऽपि भवस्व समदर्शनः॥२४॥

तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नायी सदा भव। एकादशीव्रते तिष्ठ तुलसीवनपालकः॥२५॥

ब्राह्मणानथ गाश्चाऽपि वैष्णवांश्चसदा भज। मसूरिकामारनालंवृन्ताकान्यपिखादमा॥२६॥

एवं त्वमपि देहान्ते तद्विष्णोः परमं पदम्। प्राप्नोषि धर्मदत्त! त्वं तद्भक्त्यैवयथावयम्॥२७॥

तावज्जन्म व्रतादस्माद्विष्णुसन्तुष्टिकारकात्।
न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि वै॥२८॥

धन्योऽसि विप्राग्र्य! यतस्त्वयैतद् व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः।
यदर्धभागाऽऽप्तफला मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम्॥२९॥

हे द्विज! तुमने जो जय-विजय का प्रसंग पूछा था, वे हरिप्रिय जय तथा विजय हरि के धाम के द्वार रक्षक रूप से संसार में प्रसिद्ध हैं। हे धर्मज्ञ! तुम नित्य विष्णुव्रतस्थ हो। अतएव दम्भ एवं मात्सर्य को त्यागकर सर्वभूत समूह के प्रति समदर्शी हो जाओ। कार्त्तिक-माघ तथा वैशाख में सदा प्रातः स्नान करो। नित्य तुलसी वनपालन करते हुये एकादशी व्रत तत्पर हो जाओ। गौ, ब्राह्मण, वैष्णवों का नित्य भजन करो। कभी भी

कार्त्तिक में मसूर तथा वार्त्ताकु भक्षण न करो। हे द्विज! इस प्रकार से तुम भी देवलोक में विष्णु का परमपद लाभ करोगे। हे धर्मज्ञ! तुम नित्य विष्णुव्रतस्थ हो अतः जैसे हमने भक्ति से विष्णुपद लाभ किया है, तदनुरूप तुमको भी हरि की प्राप्ति होगी। आजन्म इस विष्णुप्रीतिकर व्रत की तुलना में समस्त यज्ञ, दान, तीर्थ, भी श्रेष्ठ नहीं है। हे विप्रप्रवर! तुमने जगद्गुरु को सन्तोष प्रदान करने वाला हरिव्रत किया है। अतः तुम धन्य हो। आज यह कलहा स्त्री भी तुम्हारे द्वारा आचरित हरिव्रत का आधा भाग पाकर विष्णु सालोक्य को पा सकी है। तुम्हारे द्वारा प्राप्त पुण्यफल के कारण ही हम इसे वैकुण्ठ ले जा रहे हैं।।२३-२९।।

नारद उवाच

इत्थं तौ धर्मदत्तं तमुपदिश्य विमानगौ। तया कलहया सार्द्धं वैकुण्ठभवनंगतौ।।३०।।

धर्मदत्तो ह्यसौ जातप्रत्ययस्तद्व्रते स्थितः।
देहाऽन्ते तद्विभोः स्थानं भार्याभ्यां संयुतोऽभ्ययात्।।३१।।
इतिहासमिमं पुराभवं शृणुते श्रावयते च यः पुमान्।
हरिसन्निधिकारणीं मतिं लभतेऽसौ कृपया जगद्गुरोः।।३२।।

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे धर्मदत्तमोक्षप्राप्तिकथनंनामाऽष्टाविंशोऽध्यायः।।२८।।

नारद कहते हैं—हरि के दोनों गणों ने यह उपदेश देकर विमान पर आरोहण किया तथा वे कलहा के साथ शीघ्र वैकुण्ठलोक चले गये। ब्राह्मण धर्मदत्त यह सब प्रत्यक्ष देखकर हरिव्रत में आस्थावान् हो गये तथा निरन्तर हरिव्रताचरण करते हुये विभु विष्णु के परमपद पर स्थित हो गये। जो यह प्राचीन इतिहास सुनते हैं तथा अन्य को सुनाते हैं, जगद्गुरु श्रीहरि की कृपा से वे विष्णु सान्निध्यप्रद ज्ञान को प्राप्त करते हैं।।३०-३२।।

।।अष्टाविंश अध्याय समाप्त।।

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

धनेश्वर को यक्षयोनिप्राप्ति, कार्त्तिक प्रभाव

श्रीकृष्ण उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा पृथुर्विस्मितमानसः। सम्पूज्यनारदं सम्यग्विससर्ज तदा प्रिये!।।१।।
पुराऽवन्तीपुरे कश्चिद्विप्र आसीद्धनेश्वरः। ब्रह्मकर्मपरिभ्रष्टः पापकर्मा सुदुर्मतिः।।२।।
देशाद्देशान्तरं गच्छन्क्रयविक्रयकारणात्। माहिष्मतींपुरीमागात्कदाचित्स धनेश्वरः।।३।।

महिषेण कृता पूर्वं तस्मान्माहिष्मतीतिसा। यस्या वप्रगता भातिनर्मदापापनाशिनी॥४॥
कार्त्तिकव्रतिनस्तत्र नानादेशाऽऽगतान्नरान्। स दृष्ट्वा विक्रयन्कुर्वन्मासमेकमुवास सः॥५॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे प्रिये! पृथु देवर्षि नारद से यह सब सुनकर विस्मित हो गये तथा उनकी सम्यक् पूजा के उपरान्त राजा ने देवर्षि को विदा किया। पूर्वकाल में अवन्तिपुर में धनेश्वर नामक एक द्विज का निवास था। धनेश्वर ब्रह्मकर्म से भ्रष्ट, पापी तथा दुर्मति था। एक बार धनेश्वर व्यापार करता हुआ देश-विदेश का भ्रमण करते-करते माहिष्मतीपुरी जा पहुंचा। हे प्रिये! इस पुरी को महिषासुर ने प्रतिष्ठित किया था। तभी इसका नाम माहिष्मती पड़ा। पापनाशिनी नर्मदा के तट पर माहिष्मतीपुरी विराजमान है। ब्राह्मण धनेश्वर व्यापार की वस्तु के विक्रयार्थ नर्मदा तट पहुंचे। वहां उस समय अनेक देशों से कार्त्तिक व्रतीगण स्नानार्थ आये थे। धनेश्वर ने अपने सामान के विक्रयार्थ कार्त्तिक व्रतियों को देखते हुये वहां एक मास निवास किया।।१-५।।

स नित्यं नर्मदातीरे भ्रमन्विक्रयकारणात्। ददर्शब्राह्मणान्स्नानजपदेवार्चनेस्थितान्॥६॥
कांश्चित्पुराणं पठतः कांश्चिच्चश्रवणे रतान्। नृत्यगायनवादित्रविष्णुश्रवणतत्परान्॥७॥
उद्यापनविधौ सक्तान्कांश्चिज्जागरणे रतान्। विप्रागोपूजनरतान्दीपदानरतांस्तथा॥८॥
ददर्श कौतुकाविष्टस्तत्र तत्र धनेश्वरः। नित्यं परिभ्रमंस्तत्र दर्शनस्पर्शभाषणात्॥९॥
वैष्णवानां तथाविष्णोर्नामश्रावादि सोऽलभत्।
एवं मासं स्थितस्तस्या नर्मदायास्तटे द्विजः॥१०॥
तावत्कृष्णाऽहिना दष्टो विह्वलःस पपातह। अथ देहपरित्यक्तं तम्बद्ध्वायमकिङ्कराः॥११॥
यमाज्ञया कुम्भिपाके चिक्षिपुस्तं धनेश्वरम्।
यावत्क्षिप्तश्च तत्राऽसौ तावच्छीतलतां ययौ॥१२॥
कुम्भीपाको यथावह्निः प्रह्लादक्षेपणात्पुरा। यमस्तु कौतुकं दृष्ट्वा पप्रच्छानीय तं ततः।
तावदभ्यागतस्तत्र नारदः प्राह सत्वरम्॥१३॥

धनेश्वर नित्य नर्मदा तट पर जाकर क्रय-विक्रय के लिये वहां घूमा करता था। वहां पर वह जप, स्नान तथा देवार्चनतत्पर कार्त्तिकव्रती विप्रगण को देखता रहता था। धनञ्जय देखता कि वहां कोई पुण्यमयी पुराणों का पाठ कर रहा था। कोई-कोई वहां पर विष्णु सम्बन्धित नृत्य-गीत-वाद्य परायण होकर तत्पर रहता था। कोई-कोई कार्त्तिक व्रत के उद्यापन में लगा था। कोई व्यक्ति हरि को प्रसन्न करने के लिये हरि जागरण व्रत कर रहा था। कोई विप्र गोपूजन में रत था। कोई दीपदान कर रहा था। द्विज धनेश्वर नर्मदा तीर पर यह सब देखता हुआ विस्मित हो गया। वह नित्य वहां जाकर घूमते हुये वैष्णवों का दर्शन-स्पर्शन करते हुये विष्णु का नाम श्रवण करता रहता था। इस प्रकार से ब्राह्मण धनेश्वर ने वहां एक मास पर्यन्त नर्मता तट पर निवास किया। तभी उसे वहां एक काले सर्प ने डंस लिया। धनेश्वर सर्पदंश से विह्वल हो गया तथा वह पृथिवी पर गिर कर मृत हो गया। तब यमदूतगण वहां आये तथा उसे बांधकर यम के आदेशानुसार कुंभीपाक नरक में फेंक दिये। धनेश्वर कुंभीपाक में फेंका तो गया, लेकिन जैसे पूर्वकाल में प्रह्लाद को दैत्यों ने अग्नि में फेंका था और जिस प्रकार अग्नि शीतल हो गयी थी, तद्रूप अग्नि के शीतल होने के कारण धनेश्वर ने भी शान्तिलाभ किया। यह कौतुक सुनकर यमराज ने धनेश्वर को अपने पास बुलाकर कारण पूछा। तभी दैवात् वहां देवर्षि नारद पहुंचे और कहने लगे।।६-१३।।

नारद उवाच

नैवाऽयं निरयान्भोक्तुमर्हो ह्यरुणनन्दन!॥१४॥
यस्मादन्तेऽस्य सञ्जातंकर्मयन्निरयापहम्। यःपुण्यकर्मिणांकुर्याद्दर्शनस्पर्शभाषणम्॥१५॥
ततः षडंशमाप्नोति पुण्यस्य नियतं नरः। संख्यं तु तैस्तु संसर्गं कृतवान्वै धनेश्वरः॥१६॥
कार्त्तिकव्रतिभिर्मासं तेषां पुण्यांशभागयम्॥१७॥
तस्मादकामपुण्यो हि यक्षयोनिस्थितो ह्ययम्।
विलोक्य निरयान्सर्वान्पापभोगप्रदर्शकान्॥१८॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे सूर्यनन्दन! यह धनेश्वर नरक यातना भोगने लायक नहीं है। भले ही पहले इनसे चाहे जो किया हो, इसने अन्तकाल में नरकनाशक कर्म किया है। जो मानव पुण्यकर्मीगण का दर्शन अथवा स्पर्शन करता है, उसे उनेक पुण्य का $\frac{१}{६}$ भाग प्राप्त हो जाता है। धनेश्वर ने पुण्यकर्माओं के साथ सौख्य (मित्रता) तथा उनका संसर्ग किया था। उसने कार्त्तिकव्रती लोगों के साथ एक मास व्यतीत किया था, अतः इसे उनका $\frac{१}{६}$ पुण्यलाभ हो गया। धनेश्वर अकाम पुण्य प्राप्त होने पर भी पापभोग जनक नरकों को देखकर तब यक्ष बने।।१४-१८।।

श्रीकृष्ण उवाच

इत्युक्त्वा गतवति नारदे स सौरिस्तद्वाक्यश्रवणाविबुद्धतत्सुकर्मा।
तं विप्रम्पुनरयत्स्वकिङ्करेण तान्सर्वान्निरयगणान्प्रदर्शयिष्यन्॥१९॥
ततोधनेश्वरंनीत्वानिरयान्प्रेतपोऽब्रवीत्। दर्शयिष्यंस्तुतान्सर्वान्यमानुज्ञाकरस्तदा॥२०॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—देवर्षि नारद यह कहकर वहां से चले गये। उनके कथन का विचार करते हुये सुकर्मा यम को ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने अपने किंकरों द्वारा पुनः ब्राह्मण धनेश्वर को समस्त नरकों का दर्शन करवाया। तदनन्तर प्रेतराज यम उस धनेश्वर को नरकों के पास ले गये तथा नरकों को दिखलाते हुये कहने लगे।।१९-२०।।

प्रेतप उवाच

पश्येमान्निरयान्घोरान्धनेश्वर! महाभयान्। एषु पापकरा नित्यं पश्यन्ते यमकिङ्करैः॥२१॥
अकामात्पातकं शुष्कं कामादार्द्रमुदाहृतम्।
आर्द्रशुष्कादिभिः पापैर्द्विप्रकारानवस्थितान्॥२२॥
चतुराशीतिसंख्याकैःपृथग्भेदैरवस्थितान्। यत्प्रकीर्णमपाङ्क्तेयं मलिनीकरणं तथा॥२३॥
जातिभ्रंशकरं तद्वदुपपातक सञ्ज्ञकम्। अतिपापं महापापं सप्तधा पातकं स्मृतम्॥२४॥
एभिः सप्तसु पच्यन्ते निरयेषु यथाक्रमम्। कार्त्तिकव्रतिभिर्यस्मात्संसर्गोह्यभवत्तव।
तत्पुण्योपचयादेते निर्हता निरयाः खलु॥२५॥

यम कहते हैं—हे धनेश्वर! तुमने जो इन सब महाभयानक नरकों को देखा है, पापियों को मेरे

किंकरगण द्वारा लाया जाकर इन नरकों में फेंका जाता है। हे द्विज! अनिच्छा के साथ जो पाप करना पड़ जाता है, वह शुष्क पाप। जो पाप जानबूझ कर किया जाये, वह है आर्द्र पाप। शुष्क-किंवा आर्द्रपाप करने वाले पापियों का अवस्थान इन चौरासी प्रकार के नरकों में होता है। सभी एक नरक में जाते हैं, ऐसा नहीं है। पाप के परिमाण के अनुरूप नारकीय लोगों के अवस्थानार्थ यह चौरासी संख्यक नरकों में अलग-अलग स्थानों की व्यवस्था की गई है। (१) छोटे-छोटे पाप, (२) अपांक्तेयकरण, (३) मलिनीकरण, (४) जातिभ्रंशकर, (५) उपपातक, (६) अतिपाप तथा (७) महापाप—ये पातकों के सात भेद हैं। इन सात पापों में से यथाक्रमेण जो जैसे पाप का आचरण करता है, तदनुरूप वह नरक भोग करता है। हे द्विज! कार्तिक व्रती लोगों से तुम्हारा सम्पर्क हो गया था। अतः उस पुण्य प्रभाव से नरक तुम्हारे लिये निरस्त हो गये। इसमें संदेह नहीं है।।२१-२५।।

श्रीकृष्ण उवाच

दर्शयित्वेति निरयान्प्रेतपस्तमथाऽहरत्॥२६॥
धनेश्वरं यक्षलोकं यक्षश्चाऽभूत्स तत्र हि। धनदस्याऽनुगःसोऽयं धनयक्षेतिविश्रुतः॥२७॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रेतपति ने धनेश्वर को एवंविध नरकों का दर्शन कराया तथा उसे यक्षलोक में भेज दिया जहां धनेश्वर कुबेर का अनुगत यक्ष होकर यक्षलोक में धनयक्ष नाम से प्रसिद्ध हो गया।।२६-२७।।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा वासुदेवोऽसौ सत्यभामामतिप्रियम्।
सायं सन्ध्याविधिं कर्तुं जगाम जननीगृहम्॥२८॥

सूत जी कहते हैं—वासुदेव ने अतिप्रिय सत्यभामा से यह कहा तथा सायं सन्ध्या करने के लिये माता के गृह में चले गये।।२८।।

ब्रह्मोवाच

एवं प्रभावः खलु कार्त्तिकोऽयं मुक्तिप्रदो भुक्तिकरश्च यस्मात्।
प्रयान्त्यनेकार्जितपातकानि व्रतस्य सन्दर्शनतोऽपि मुक्तिम्॥२९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे धनेश्वरयक्षजन्मप्राप्तिवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः।।२९।।

ब्रह्मदेव कहते हैं—पुण्यप्रद कार्तिक मास का ऐसा प्रभाव है। कार्तिक मास मुक्तिप्रद तथा भुक्तिप्रद है। यह व्रत करने पर अनेक जन्मों का पातक नष्ट हो जाता है। यह व्रतविधि देखने वाला भी मुक्त हो जाता है।।२९।।

।।उनत्रिंश अध्याय समाप्त।।

त्रिंशोऽध्यायः

दत्त पुण्यपापफलवर्णन, मासोपवास, व्रतविधि

नारद उवाच

अद्भुतोऽयंत्वयाप्रोक्तोहिमाकार्त्तिकस्यतु। स्वस्यकर्तुमसामर्थ्यंकथमेतत्कृतम्भवेत्।।१।।

देवर्षि नारद कहते हैं—आपने कार्त्तिक मास के अद्‌भुद् माहात्म्य को कहा, तथापि यदि व्यक्ति यह व्रताचरण न कर सके तब यह कैसे अनुष्ठित हो सकेगा?।।१।।

ब्रह्मोवाच

नास्ति कर्तुं स्वसामर्थ्यमुपायाप्प्रात्यते फलम्।
द्रव्यं दत्त्वा ब्राह्मणाय गृह्णीयात्फलमुत्तमम्।।२।।
शिष्याद्वा भृत्यवर्गाद्वा स्त्रीभ्यो वाऽऽप्ताच्च कारयेत्।
तस्मादपि फलं गृह्णन्फलभाग्जायते नरः।।३।।

ब्रह्मा कहते हैं—यदि कार्त्तिक व्रत स्वयं करने की शक्ति न हो तब किसी व्रतकारी के व्रतोपाय की व्यवस्था करने से भी व्रतफल लाभ होता है। ब्राह्मण को व्रत के लिये उपयुक्त एवं उपयोगी द्रव्य प्रदान करने से उससे व्रतफल ग्रहण किया जा सकता है। मनुष्य अपने शिष्य, भृत्यवर्ग स्त्री अथवा किसी योग्य व्यक्ति से यह व्रत कराये तथा उससे व्रतफल ग्रहण करे। इससे वह व्यक्ति सम्पूर्ण व्रतफल का भागी हो जाता है।।२-३।।

नारद उवाच

अदत्तान्यपि पुण्यानिप्राप्यन्तेकेनचित्क्वचित्। एतदिच्छाम्यहं श्रोतुंकौतुकंममवर्तते।।४।।

देवर्षि नारद कहते हैं—अदत्त पुण्य क्या किसी ने प्राप्त किया है? हमें यह जानने हेतु अतीव कुतूहल हो रहा है।।४।।

ब्रह्मोवाच

अदत्तान्यपि पुण्यानि लभन्ते पातकान्यपि। येनोपायेन तद्वच्मिश्रृणुष्वैकमनाद्विज!।।५।।
सुकृतं वा दुष्कृतं वा कृतमेकेन यत्कृते। जायतेतस्य तद्राष्ट्रे त्रेतायां तु पुरो भवेत्।।६।।
द्वापरे वंशमध्ये तु कलौ कर्तैवकेवलम्। अज्ञानाद्यत्कृतं कर्म बाल्येस्वप्नेतुतत्फलम्।।७।।
अज्ञानाद्यच्चतारुण्येबाल्ये तस्य फलम्भवेत्। ज्ञानपूर्वकृतं कर्म आजन्मान्तञ्चतत्फलम्।।८।।
षण्मासं पापिसङ्गेननरःपापीप्रजायते। पापिनां वा धर्मिणां वा संसर्गाद्दशमासिकम्।।९।।
भोजनादेकपङ्क्तौचविंशांशःपुण्यपापयोः। एकासने द्वयोर्वासात्सहस्त्रांशेन लिप्यते।।१०।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे द्विज! अदत्त पाप तथा पुण्य जिस उपाय से प्राप्त होता है, उसे सुनों। सत्ययुग में जो क़ोई जो भी सुकृति अथवा दुष्कृति करता है, वह समस्त राजा का ही आश्रय ले लेता है (अर्थात् सुकृति-

दुष्कृति राजा के पास चले जाते हैं)। त्रेता में किसी के द्वारा पाप अथवा पुण्य करने पर उसका फल सम्पूर्ण नगर को भोगना पड़ता है। द्वापर की यह व्यवस्था नहीं है। द्वापर में वंश का कोई भी पाप अथवा पुण्य करेगा, उसके पूरे वंश को उसका फल प्राप्त होगा। लेकिन कलिकाल में केवल कर्त्ता को ही पाप करने अथवा पुण्य करने का फलभोग होता है। पूर्वजन्म की बाल्यावस्था में अज्ञानतः जो कुछ भी कर्म किया गया है, उसका फलाफल स्वप्न में मिलेगा। लेकिन जानबूझ कर किये गये कर्म का फल तो मिलकर रहेगा। तारुण्यकाल में पूर्वजन्म के कृतकर्म का फलभोग इस जन्म में बाल्यावस्था में मिलेगा। मनुष्य छ महीना तक पापी के साथ रहकर पापी हो जाता है। धार्मिक अथवा पापी के संग का यह नियम है कि उसके साथ दस मास का संसर्ग तथा एक पंक्ति में भोजन करने पर उस व्यक्ति के पाप अथवा पुण्य के $\frac{१}{२०}$ का फल भोगना ही होगा। जो व्यक्ति किसी पापी अथवा पुण्यवान् के साथ एक मास साथ बैठता है, वह उस पापी किंवा पुण्यवान् के पाप-पुण्य के $\frac{१}{१०००}$ भाग का भागी हो जाता है।।५-१०।।

यो वै यस्यान्नमश्नाति स भुङ्क्ते तस्य किल्बिषम्।
जपादौ पापिसंसर्गात्षोडशांऽशो विनश्यति॥११॥

परस्य स्तंवनाद्यानादेकपात्रस्थभोजनात्। एकशय्याप्रावरणात्षष्ठांशःपुण्यपापयोः॥१२॥

जो जिस व्यक्ति के अन्न का भोजन करता है, वह उसके पापों का भोजन कर रहा है। जपकाल में पापी का संसर्ग जप के $\frac{१}{१६}$ फल का नाश करता है। पापी अथवा पुण्यात्मा अन्य की स्तुति, अन्य के वाहन पर गमन, अन्य के साथ एकपात्र में भोजन, एक शय्या पर शयन करते हैं, तब उनके पुण्य अथवा पाप का १/६ नष्ट हो जायेगा।।११-१२।।

पुरुषो हरते सर्वं भार्याया औरसस्य च। अर्द्धं शिष्याच्चतुर्थांशं पापम्पुण्यं तथैव च॥१३॥
भर्तुराज्ञाकरी नारी भर्तुरर्द्धं वृषं हरेत्। यद्धस्तपक्वं भुञ्जीयाद्दशांशं तदधं हरेत्॥१४॥
वर्षाऽशनं तु यो दत्ते तदर्धाघस्यभागयम्। वर्षाशनार्द्धंपुण्यं तु भुङ्क्ते वर्षाशनीनरः॥१५॥
पुरोहितस्य षष्ठांशं पापं वा पुण्यमेव वा। यजमानो भुनक्त्येव तद्दशांशं पुरोहितः॥१६॥
उद्योगी चाऽनुमन्ता च यश्चोपकरणप्रदः। षष्ठांशं पुण्यपापापानामुपद्रष्टा दशांशकम्॥१७॥

व्यक्ति अपनी भार्य तथा अपने औरस पुत्र के पुण्य-पाप का $\frac{१}{२}$ भाग ग्रहण करता है। गुरु शिष्यकृत पाप-पुण्य का $\frac{१}{४}$ भाग ग्रहण करता है। जो नारी पति की आज्ञा का पालन करती है, वह स्वामी का $\frac{१}{२}$ भाग पुण्य हर लेती है। जिसके बनाये पके अन्न का भोजन किया जाता है, भोजनकारी उसके पापों का $\frac{१}{१०}$ भोग करता है। जिसके बनाये भोजन को १ वर्ष खाया जाये भोजन करने वाला उसके आधे पापों का भागी हो जाता है। भोजन के लिये अन्न देने वाला भोजन करने वाले का $\frac{१}{२}$ पुण्य प्राप्त कर लेता है। यदि पुरोहित पापा किंवा पुण्यात्मा है, तब यजमान उसके पाप अथवा पुण्य के $\frac{१}{६}$ का भोग करेगा। इसी प्रकार यदि यजमान पापी किंवा पुण्यात्मा है, तब पुरोहित उसके पाप-पुण्य के $\frac{१}{१०}$ भाग का भागी होगा।।१३-१७।।

यद्धस्तात्कार्यते कर्म नान्नमस्मै प्रयच्छति।
विना भृतकशिष्याभ्यां षष्ठांशम्पुण्यमाहरेत्॥१८॥

व्यवहारात्तथाप्रीत्यानित्यंसम्भाषणादिभिः। दशांशम्पुण्यपापानां लभतेनात्रसंशयः॥१९॥
संसर्गपुण्ययोगेन एकदन्तो द्विजाधमः। नरकान्विविधान्दृष्ट्वा स्वर्गम्प्रापतदैव हि॥२०॥

किसी अनुष्ठान कार्य का जो उद्योक्ता, अनुमन्ता अथवा उपकरण-सामग्री देने वाला है, उसे उस कार्य का $\frac{१}{६}$ पाप-पुण्य प्राप्त होगा। जो व्यवहार तथा संभाषण से यह कार्य करने वाला है, उसे $\frac{१}{१०}$ अंश पाप-पुण्य की प्राप्ति होती हैं। (अर्थात् जो वाणी से तथा कुछ व्यवहार से इस कार्य में योगदान देता है वह $\frac{१}{१०}$ पाप अथवा पुण्य लाभ करेगा)। बिना अन्न-वेतन लिये जो दो शिष्यों को विद्यादान करता है, वह दोनों शिष्यों के $\frac{१}{६}$ पुण्य का हरण कर लेता है। प्रेमपूर्वक व्यवहार करने से तथा नित्य वार्त्ता करने से वह व्यक्ति उस अन्य के पुण्य-पाप का $\frac{१}{६}$ भाग का हरण कर लेता है। इसमें संशय नहीं है। हे नारद! संसर्गजनित पुण्य के कारण एक अधम ब्राह्मण ने एकदण्ड पर्यन्त नाना नरकदर्शन करके स्वर्ग गमन किया।।१८-२०।।

नारद उवाच

ईदृशं कार्त्तिकव्रतमल्पायासं महत्फलम्। न कुर्वन्तिजनाःकेचित्किमर्थम्वै पितामह!॥२१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे पितामह! यदि कार्त्तिक व्रत इस प्रकार से अल्प प्रयास मात्र से महाफल प्रदान कर देता है, तब मनुष्य यह व्रत क्यों नहीं करता?।।२१।।

ब्रह्मोवाच

स्वसृष्टिवृद्धये वेधाधर्माऽधर्मौससर्ज ह। धर्ममेवाऽनुतिष्ठन्तः प्राप्नुवन्तिशुभाङ्गतिम्॥२२॥
अधर्ममनुतिष्ठन्तो यान्ति तेऽधोगतिंनराः। पुण्यकर्मफलंनाको नरकस्तद्विपर्ययः॥२३॥

ब्रह्मा उत्तर देते हैं—अपनी सृष्टि की वृद्धि हेतु विधाता ने धर्म-अधर्म—इन दोनों की सृष्टि किया है। जो धर्म का अनुष्ठान करते हैं, उनको शुभगति मिल जाती है। पापाचारी नरक में अधोगति का लाभ करते हैं। हे वत्स! पुण्य कार्य का फल स्वर्ग है। उसके विपरीत पापाचरण का फल नरक है।।२२-२३।।

तयोः पालनकर्तारौ द्वावेव विधिनाकृतौ। शतक्रतुयमौ तौ च पुण्यपापानुसारिणौ॥२४॥
गुरुतल्पादयःपुत्राः कामस्यप्रथिताभुवि। क्रोधस्यपितृघाताद्यालोभस्य तनयाञ्छृणु॥२५॥
ब्रह्मस्वहरणाद्याश्च एते नरकनायकाः। कृता यमेन तैर्व्याप्ता मनुजा नहि कुर्वते॥२६॥
व्रतादिधर्मकृत्यं यैस्तैर्मुक्तास्ते हि कुर्वते॥२७॥
श्रद्धा मेधा विघातिन्यौ वर्तते भुवि सर्वदा।
ताभ्यां व्याप्तस्तु मनुजः श्रीविष्णोः श्रवणादिकम्॥२८॥
न करोति सुदुर्मेधा येनाऽन्धं याति वै तमः। कृष्णेन सत्यभामायैयदुक्तं तद्वदामि ते॥२९॥

विधाता ने इन्द्र को पुण्यात्मा पालनार्थ तथा यम को पापियों के शासनार्थ नियुक्त किया है। पृथिवी पर काम के गुरुपत्नी गमनादि तथा क्रोध के पितृहत्यादि द्वादश पुत्र हैं। नरक देने वाले ब्रह्मस्वहरणादि लोभ के पुत्र हैं। यमराज ने मनुष्यगण को इन सबसे परिव्याप्त किया है। जो मानव काम-क्रोध तथा लोभाभिभूत नहीं होते, व्रतादि धर्म कार्य करते रहते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। हे नारद! काम-क्रोधादि की विघातक श्रद्धा तथा मेधा नामक

दो वस्तु भुवनों में स्थित है। भूतलस्थ समस्त लोकत्रय में श्रद्धा तथा मेधा है, तथापि जो मानव विष्णु का नाम श्रवणादि नहीं करते, उनको सुदुर्मेधा कहते हैं। ऐसे अन्ध बुद्धि मानव ही पापों में प्रवेश करते हैं। हे वत्स! कृष्ण ने सत्यभामा से जो कुछ कहा था, उसी का वर्णन तुमसे कर रहा हूं।।२४-२९।।

अध्यापनाद्याजनाद्वाऽप्येकपङ्क्त्यशनादपि। तुर्यांशं पुण्यपापानां परोक्षं लभते नरः।।३०।।
एकासनादेकयानान्निश्वासस्याङ्गसङ्गतः। षडंशं फलभागीस्यान्नियतम्पुण्यपापयोः।।३१।।
स्पर्शनाद्भाषणाद्वाऽपिपरस्यस्तवनादपि। दशांशम्पुण्यपापानांनित्यम्प्राप्नोतिमानवः।।३२।।
दर्शनश्रवणाभ्याञ्च मनोध्यानात्तथैव च। परस्य पुण्यपापानां शतांशं प्राप्नुयान्नरः।।३३।।
परस्य निन्दां पैशुन्यंधिक्कारञ्चकरोतियः। तत्कृतम्पातकम्प्राप्य स्वपुण्यंप्रददातिसः।।३४।।
कुर्वतःपुण्यकर्माणिसेवां यः कुरुते नरः। पत्नीभृतकशिष्येभ्योयदन्यःकोऽपिमानवः।।३५।।
तस्य सेवाऽनुरूपञ्च द्रव्यंकिञ्चिन्नदीयते। सोऽपि सेवानुरूपेणतत्पुण्यफलभाग्भवेत्।।३६।।
एकपङ्क्तिस्थितं यस्तु लङ्घयेत्परिवेषणम्। तत्पुण्यस्यषडंशञ्च लभेद्यस्तुविलङ्घितः।।३७।।

पापी अथवा पुण्यात्मा को पढ़ाना, याजन अथवा उनके साथ भोजन, मानव यह सब करके परोक्ष भाव से उनके पुण्य अथवा पाप के चतुर्थांश का भागी हो जाता है। एक आसन पर सदैव बैठना, एक वाहन में गमन, निश्वास का स्पर्श तथा अंग स्पर्श इसके द्वारा व्यक्ति उस व्यक्ति के पुण्य-पाप का $\frac{१}{६}$ का भागी हो जाता है। निरन्तर अन्य का स्पर्शन, स्तव, उनके साथ संभाषण, इन सब कार्य में उस व्यक्ति के पुण्य-पाप के $\frac{१}{१०}$ का भागी होता है। पापी अथवा पुण्यकारी के प्रति मन लगाने से उसके पाप तथा पुण्य के १/१०० भाग का भागी होना पड़ता है। जो मानव अन्य की निन्दा, अन्य को धिक्कारने का कार्य तथा अन्य के प्रति खलत्व का प्रदर्शन करता है, वह उस व्यक्ति के पापों को ग्रहण करता है तथा उसको अपने पुण्य प्रदान कर देता है।

मनुष्य पत्नी, वेतनभोगी भृत्य, शिष्य के अतिरिक्त अन्य किसी से सेवा लेकर यदि सेवानुरूप द्रव्य नहीं दे सकता, तब वह सेवक सेवा द्वारा ही उनके पुण्यफल को प्राप्त कर सकता है। एक पंक्ति में बैठते समय किसी बैठे व्यक्ति को लांघने वाले व्यक्ति का $\frac{१}{६}$ पुण्य बैठे व्यक्ति को प्राप्त हो जाता है।।३०-३७।।

स्नानसन्ध्यादिकं कुर्वन्यः स्पृशेद्वाऽथभाषते।
स कर्मपुण्यषष्ठांशं दद्यात्तस्मै विनिश्चितम्।।३८।।
धर्मोद्दिशेन यो द्रव्यमपरं याचते नरः। तत्पुण्यकर्मजं तस्य धनदस्त्वाप्नुयत्फलम्।।३९।।
अपहृत्य परद्रव्यं पुण्यकर्म करोति यः। कर्मकृत्पापभाक्तत्र धनिनस्तद्भवं फलम्।।४०।।
नाऽपकृत्य ऋणं यस्तु परस्य म्रियते नरः। धनी तत्पुण्यमादत्ते तद्धनस्याऽनुरूपतः।।४१।।
बुद्धिदाताऽनुमन्ताच यश्चोपकरणप्रदः। बलकृच्चाऽपि षष्ठांशं प्राप्नुयात्पुण्यपापयोः।।४२।।
प्रजाभ्यः पुण्यपापानां राजा षष्ठांशमुद्धरेत्।
शिष्याद् गुरुः स्त्रियोभर्ता पिता पुत्रात्तथैव च।।४३।।

मानव स्नान तथा संन्ध्याकाल में जिसे छूता है अथवा जिससे बातें करता है, वह अपने पुण्य का

$\frac{1}{6}$ भाग उस व्यक्ति को प्रदान कर देता है। इसमें संशय नहीं है। जो मनुष्य धर्म के लिये अन्य से धन मांगता है, धन देने वाला उस व्यक्ति के धर्मकृत्य के पुण्य को ग्रहण कर लेता है। जो पराया धन अपहरण करके पुण्यकर्म करता है, उसे मात्र अपहरणजनित पाप का ही फल मिलेगा, तथापि जिसका धन अपहृत किया गया, उसे उस पुण्य का पूर्ण फल प्राप्त होगा। अन्य के यहां से ऋण लेकर जो ऋणशोध के पूर्व ही मर जाता है, अपने बाकी धन के अनुरूप ऋणदाता को उस मृत व्यक्ति के पुण्य का फल मिलता है। कार्य की बुद्धि देने वाला, अनुमन्ता, उपकरण आदि देने वाला, बलप्रदाता, ये सभी तत्कर्मजनित पुण्य अथवा पाप के फल का $\frac{1}{6}$ प्राप्त करते हैं। राजा भी अपनी प्रजा के द्वारा किये पुण्य तथा पाप का $\frac{1}{6}$ भाग फल प्राप्त करता है। गुरु अपने शिष्य के, स्वामी पत्नी के तथा पिता पुत्र के पुण्य का आधा भाग प्राप्त करता है। इसी प्रकार से स्वामी के प्रति पूर्ण समर्पित, सतत् स्वामी का प्रिय करने वाली पत्नी भी स्वामी के पुण्य-पाप का आधा भाग प्राप्त करती है।।३८-४३।।

स्वपतेरपि पुण्यस्ययोषिदर्धमवाप्नुयात्। चित्तस्याऽनुव्रताशश्वद्वर्तते तुष्टिकारिणी।।४४।।

फरहस्तेन दानादि कुर्वन्तः पुण्यकर्मणः।
विना भृतकपुत्राभ्यां कर्ता षष्ठांशमुद्धरेत्।।४५।।

वृत्तिदोवृत्तिसम्भोक्तुः पुण्यं षष्ठांशमुद्धरेत्। आत्मनोवापरस्याऽपियदिसेवांनकारयेत्।।४६।।

इत्थं ह्यदत्तान्यपि पुण्यपापान्यायान्ति नित्यम्पारसञ्चितानि।
कलौ त्वयम्वै नियमो न कार्यः कर्तैव भोक्ता खलु पुण्यपापयोः।।४७।।

कलौ ज्ञानं दृढं नाऽस्ति कलौ गर्वेण सत्क्रिया।
कलौ दम्भाऽन्वितो योगो नश्यत्येव न संशयः।।४८।।

तपोनिष्ठः पुरा दम्भी सतीशुद्धप्रभावतः। पित्रोः पूजादर्शनेन चोर्जसेवी परंगतः।।४९।।

वेतनभोगी भृत्य तथा पुत्र को छोड़कर अन्य को पुण्यकर्म लेने हेतु दान देकर उनके पुण्य का $\frac{1}{6}$ ग्रहण कर सकते हैं। वृत्तिप्रदाता व्यक्ति यदि वृत्तिभोगी से अपनी किंवा अन्य की सेवा नहीं करता, तब उसे उस वृत्तिभोगी को पुण्य का $\frac{1}{6}$ प्राप्त हो जाता है। हे नारद! इस प्रकार अदत्त पुण्य तथा पाप नित्य संचित होते रहते हैं, तथापि कलिकाल में ऐसा नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि कलि में केवल कर्त्ता को ही पाप-पुण्य का भोग प्राप्त होता है। कलि में ज्ञान की दृढ़ता नहीं होती। लोग गर्व तथा प्रदर्शनार्थ सत्क्रिया सम्पादित करते हैं। कलिकाल में दम्भान्वित योग नष्ट हो जाता है। हे वत्स नारद! पूर्वकाल में एक दंभी तपस्वी ने पतिव्रता पत्नी की शुद्धि के कारण तथा पिता-माता की पूजा को देखकर कार्त्तिकव्रत का व्रताचरण किया तथा परमस्थान लाभ किया।।४४-४९।।

नारद उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामिव्रतानामुत्तमंव्रतम्। विधिंमासोपवासस्यफलञ्चास्ययथोचितम्।।५०।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे भगवान्! व्रतों में जो उत्तम है तथा मासपर्यन्त उपवास की जो विधि है, वह सुनने की इच्छा है।।५०।।

ब्रह्मोवाच

साधु नारद! सर्वं ते यत्पृष्टं प्रब्रूवेऽनघ। भक्त्या मतिमतांश्रेष्ठ! शृणुष्व गदतो मम॥५१॥
सुराणां च यथा विष्णुस्तपताञ्चयथारविः। मेरुः शिखरिणांयद्वद्वैनतेयश्चपक्षिणाम्॥५२॥
श्रेष्ठं सर्वव्रतानांतुतद्वन्मासोपवासनम्। सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु चैव हि॥५३॥
सर्वदानोद्भवं चैव यज्ञैश्च भूरिदक्षिणैः। न तत्पुण्यमवाप्नोति यन्मासपरिलङ्घनात्॥५४॥
गुरोराज्ञांततोलब्ध्वाकुर्यान्मासोपवासनम्। अतिकृच्छ्रञ्चपाराकंकृत्वाचान्द्रायणंततः॥५५॥
मासोपवासंकुर्वीत ज्ञात्वादेहबलाबलम्। वानप्रस्थोयतिर्वाऽपि नारीवाविधवामुने!॥५६॥
मासोपवासं कुर्वीतगुरोर्विप्राज्ञया ततः। आश्विनस्याऽमले पक्षं एकादश्यामुपोषितः॥५७॥
व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु। अच्युतस्याऽऽलयेभक्त्यात्रिकालंपूजयेद्धरिम्॥५८॥
नैवेद्यधूपदीपाद्यैः पुष्पैर्नानाविधैरपि। मनसा कर्मणावाचा पूजयेद् गरुडध्वजम्॥५९॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! हे निष्पाप! तुम्हारा प्रश्न उत्तम प्रश्न है। हे भक्तप्रवर! मैं इसे कहता हूं, तुम भक्तिपूर्वक श्रवण करो। जैसे देवताओं में विष्णु, जैसे ताप प्रदाताओं में आदित्य श्रेष्ठ हैं, जैसे पर्वतों में मेरु, पक्षियों में गरुड़ श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार व्रतों में मास पर्यन्त उपवास व्रत श्रेष्ठ है। एकमात्र मासोपवास व्रत समस्त व्रतों, समस्त तीर्थाटनों, सर्व प्रकार के दान तथा प्रचुर दक्षिणायुक्त यज्ञों से प्रधान है। इन सबको करके भी मासोपवास के बराबर फललाभ नहीं होता। इसलिये गुरु आज्ञा लेकर मासोपवास व्रताचरण करना चाहिये। व्रत प्रारंभ करने के पहले (अपना) बलाबल जान लें। यथाक्रमेण अतिकृच्छ्र, पराक् तथा चान्द्रायण व्रताचरण करें। तदनन्तर मासोपवास करना चाहिये। हे मुनिवर! वानप्रस्थ, यति, सधवा, किंवा विधवा नारी चाहे जो हो, गुरु आज्ञा लेकर अथवा ब्राह्मण की आज्ञा लेकर व्रत करें। आश्विनमासीय शुक्ला एकादशी से व्रतारंभ करके जब तक तीस दिन पूर्ण न हो जाये, तब तक उपवास करे। हरिमन्दिर में जाकर नैवद्य, धूप, दीप तथा विविध पुष्पों द्वारा काया-मन-वाणी के द्वारा गरुड़ध्वज जनार्दन की त्रिकाल पूजा करनी चाहिये।।५१-५९।।

नरः स्वधर्मनिरतः सधवा च जितेन्द्रिया। नारी वाविधवासाध्वीवासुदेवंसमर्चयेत्॥६०॥
वस्त्वालोकनगन्धादिस्वादितं परिकीर्तितम्।
अन्यस्य वर्जयेद् ग्रासं ग्रासानां सम्प्रमोक्षणम्॥६१॥

स्वधर्मपरायण, जितेन्द्रिय मनुष्य, सधवा किंवा विधवा स्त्री मासोपवास व्रताचरण के साथ वासुदेव की सम्यक् पूजा करें। शास्त्रज्ञ कहते हैं कि वस्तु के देखने से भी उसकी गन्ध आदि का आस्वाद व्यक्ति ग्रहण कर लेता है। इसलिये व्रतकाल में कदापि पराया अन्न ग्रहण न करके अन्य को अन्न दान करना चाहिये।।६०-६१।।

गात्राभ्यङ्गंशिरोभ्यङ्गंताम्बूलंसविलोपनम्। व्रतस्थोवर्जयेत्सर्वंयच्चाऽन्यच्चनिराकृतम्॥६२॥
नव्रतस्थःस्पृशेत्कञ्चिद्विकर्मस्थंनचालपेत्। देवतायतनेतिष्ठन्गृहस्थश्चाऽऽचरेद्व्रतम्॥६३॥
कृत्वा मासोपवासं तु यथोक्तविधिना नरः। अन्यूनाधिकमेवं तुव्रतं त्रिंशद्दिनैरिति॥६४॥

ततोऽर्चयदेवपुण्यंद्वादश्यांगरुडध्वजम्। वस्त्रदानादिभिश्चैवभोजयित्वाद्विजोत्तमान्॥६५॥

दद्याच्च दक्षिणां तेभ्यः प्रणिपत्य क्षमापयेत्।
विप्रान्क्षमापयित्वा तु विसृज्याऽभ्यर्च्य पूज्य च॥६६॥

इस व्रतकाल में देह में उबटन आदि लगाना, मस्तक में तैलादि लगाना, ताम्बूल सेवन, शरीर पर गन्ध लेपादि लगाना वर्जित है। शास्त्र में और भी जो कुछ वर्जित कहा गया है, उसका त्याग करें। मासोपवास व्रत में स्थित होकर विकर्मी व्यक्ति को छूना तथा उससे वार्त्ता करना वर्जित है। केवल गृह में किंवा मन्दिर में रहकर व्रताचरण करना चाहिये। मानव यथोक्त विधानानुसार मासोपवास व्रत का संकल्प ग्रहण करके तीस दिन से कम अथवा अधिक दिन उपवास न करें। तदनन्तर द्वादशीतिथि के दिन पवित्रतापूर्वक गरुड़ध्वज जनार्दन की पूजा करके वस्त्र आदि का दान ब्राह्मण को देकर उनको भोजन करायें। उनको दक्षिणादान देकर क्षमा प्रार्थना भी करें। विप्रगण को दक्षिणा देकर तथा क्षमाप्रार्थना करने के उपरान्त उनको विदा करना चाहिये।।६२-६६।।

एवं मासोपवासान्ते वृत्वा विप्रांस्त्रयोदश। कारयेद्वैष्णवं यज्ञमेकादश्यामुपोषितः॥६७॥

ततोऽनुभोजयेद्विप्रान्नमसस्कारपुरःसरम् ।
ताम्बूलवस्त्रयुग्मानि भोजनाऽऽच्छादनानि च॥६८॥
योगपट्टानि सूत्राणि शय्यां सोपस्करां तथा।
दत्त्वा चैव द्विजाग्रेभ्यः पूजयित्वा विसर्जयेत्॥६९॥

विधिर्मासोपवासस्ययथावत्परिकीर्तितः। अतःपरं प्रवक्ष्यामिनवम्यादितिथौविधिम्॥७०॥

ऋषिभ्यो बालखिल्यैश्च प्रोक्तं तं शृणु! नारद!॥७१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे दत्तपुण्यपापफलप्राप्तिवर्णनपूर्वकंमासोपवासव्रतविधिकथनंनाम त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।

एवंविध तीस दिन उपवास करके अंतिम एकादशी को उपवासी रहकर त्रयोदश ब्राह्मणों का वरण करके वैष्णव याग करायें। तत्पश्चात् प्रणामोपरान्त ब्राह्मणों को भोजन, ताम्बूल प्रदान, प्रत्येक को दो वस्त्र, आच्छादन, योगपट्ट, सूत्र, सभी सज्जा के साथ शय्या प्रदान करके उनको विदा करना चाहिये। हे वत्स नारद! मैंने तुमसे मासोपवास विधान कह दिया। अब मैं नवमी आदि तिथियों का वर्णन कर रहा हूं। हे नारद! बालखिल्य ऋषियों ने इसका वर्णन किया था। अब इसे सुनो।।६७-७१।।

।।त्रिंश अध्याय समाप्त।।

एकत्रिंशोऽध्यायः

कूष्माण्ड नवमी, तुलसी विवाहविधि

बालखिल्या ऊचुः

कार्त्तिके शुक्लनवमी तत्राऽभूद्द्वापरं युगम्। पूर्वाऽपराह्णगाग्राह्याक्रमाद्दानोपवासयोः॥१॥

अत्र कूष्माण्डको नाम हतो दैत्यस्तु विष्णुना।
तद्रोमभिः समुद्भूता वल्ल्यः कूष्माण्डसम्भवाः॥२॥
तस्मात्कूष्माण्डदानेन फलमाप्नोति निश्चितम्।
अस्यामेव नवम्यां तु कुर्यात्कृष्णोत्सवं नरः॥३॥

स्वशाखोक्तेन विधिना तुलस्याः करपीडनम्। कन्यादानफलं तस्यजायतेनात्रसंशयः॥४॥
कार्त्तिके शुक्लनवमीमवाप्य विजितेन्द्रियः। हरिं विधायसौवर्णं तुलस्यासहितंशुभम्॥५॥
पूजयेद्विधिवद्भक्त्या व्रती तत्र दिनत्रयम्। एवंयथोक्तविधिना कुर्याद्वैवाहिकंविधिम्॥६॥
ग्राह्यं त्रिरात्रमत्रैवनवम्याद्यनुरोधतः। मयाह्नव्यापिनी ग्राह्या नवमी पूर्ववेधिता॥७॥

बालखिल्य ऋषिगण कहते हैं—कार्त्तिक मासीय शुक्लानवमी को द्वापर युग की उत्पत्ति हुई। यथाक्रमेण इस दिन पूर्वाह्न में दान तथा अपराह्न में उपवास होता है। विष्णु ने इस नवमी के दिन कूष्माण्ड नामक दैत्य का वध किया। इस दैत्य के रोमों ने ही लतारूपेण उद्भूत होकर कूष्माण्ड को जन्म दिया। अतएव इस नवमी के दिन कूष्माण्ड दान अतुलित फल प्रदाता है। श्रीकृष्ण ने इस नवमी के दिन स्ववेदोक्त विधान से तुलसी का पाणिग्रहण किया था। अतः जो मानव इस नवमी के दिन श्रीकृष्ण का उत्सव सम्पन्न करता है, उसे कन्यादानफल की प्राप्ति होती है। इसमें संशय नहीं है। इन्द्रियजित् मानव कार्त्तिकमासीय शुक्लानवमी के दिन स्वर्ण द्वारा तुलसी के साथ विष्णु की सुशोभन मूर्त्ति बनाकर विधिवत् पूजा करे तथा तीन दिन व्रतस्थ होकर यथाविधि विष्णु तथा तुलसी की विवाहविधि सम्पन्न करे। इस प्रकार त्रिरात्र व्रतस्थ होकर यथाविधि विष्णु तथा तुलसी की वैवाहिक विधि सम्पन्न करें। इस त्रिरात्र वैवाहिक विधि द्वारा नवम्यादि पूर्वविद्धा मध्याह्न व्यापिनी नवमी को ही ग्रहण करना चाहिये।।१-७।।

धात्र्यश्वत्थौ य एकत्र पालयित्वा समुद्वहेत्। ननश्यते तस्यपुण्यंकल्पकोटिशतैरपि॥८॥
कनकस्यसुता पूर्वमेकादश्यां किशोरिका। चकारभक्तितःसायंतुलस्युद्वाहजंविधिम्॥९॥

तेन वैधव्यदोषेण निर्मुक्ताऽऽसीत्सुलोचना।
तस्मात्सायं प्रकर्तव्यस्तुलस्युद्वाहजो विधिः॥१०॥

अवश्यमेव कर्तव्यः प्रतिवर्षं तुवैष्णवैः। विधिंतस्यप्रवक्ष्यामियथासाङ्गाक्रियाभवेत्॥११॥

विष्णोस्तु प्रतिमां कुर्यात्पलस्य स्वर्णजां शुभाम्।
तदर्द्धार्द्धं तदर्द्धार्द्धं यथाशक्त्या प्रकल्पयेत्॥१२॥

प्राणप्रतिष्ठां कृत्यैव तुलसीविष्णुरूपयोः। ततउत्थापयेद्देवंपूर्वोक्तैश्च स्तवादिभिः॥१३॥
उपचारैः षोडशभिः पूजयेत्पुरुषोक्तिभिः। देशकालौ ततःस्मृत्वागणेशं तत्र पूजयेत्॥१४॥
पुण्याहंवाचयित्वाऽथनान्दीश्राद्धंसमाचरेत्। वेदवाद्यादिनिर्घोषैर्विष्णुमूर्तिसमानयेत्॥१५॥

जो मानव धात्री तथा अश्वत्थ का एक साथ विवाह करता है, उसके पुण्यों का विनाश सैकड़ों करोड़ों कल्पों में भी नहीं होता। कनक की किशोरी कन्या ने पूर्वकाल में एकादशी के दिन तुलसी विवाह किया था, अतएव वह कन्या सुलोचना वैधव्य दोष से मुक्त हो गयी। तभी वैष्णवगण सायंकाल में यथाविधि प्रतिवर्ष तुलसी विवाह क्रिया सम्पन्न करें। अब वह तुलसी विवाह विधि अंगों के साथ कहता हूं, जिनके करने से तुलसी विवाहविधि साङ्गरूप से सम्पन्न हो जाती है। एक पल स्वर्ण से तुलसी की शोभन प्रतिमा बनाये। शक्ति अनुसार आधा पल किंवा $\frac{1}{4}$ पल द्वारा भी प्रतिमा बनाई जा सकती है। तत्पश्चात् विष्णुमूर्त्ति तथा तुलसी की प्राण प्रतिष्ठा करके पूर्वोक्त स्तव द्वारा विष्णुमूर्त्ति को उत्थापित करना चाहिये तथा पुरुषसूक्त मन्त्रों द्वारा षोडशोपचार पूजा करें। पूजा के पहले देश-काल आदि का उच्चारण करके (किस देश में किस तिथि में पूजा की जा रही है) गणपति पूजन, पुण्याहवाचन तथा नान्दीश्राद्ध कर्त्तव्य है। दैवी वाद्यों (उत्तम वाद्यों) की ध्वनि करते-करते विष्णुमूर्त्ति लानी चाहिये।।८-१५।।

तुलसीनिकटे सा तु स्थाप्या चाऽन्तर्हिता पटैः।
आगच्छ भगवन्देव! अर्चयिष्यामि केशव!॥१६॥
तुभ्यं दास्यामि तुलसीं सर्वकामप्रदोभव। दद्यात्त्रिवारमर्घ्यञ्च पाद्यंविष्टरमेव च॥१७॥
तत आचमनीयञ्च त्रिरुक्त्वा च प्रदापयेत्। ततो दधिघृतं क्षीरंकांस्यपात्रपुटीकृतम्॥१८॥
मधुपर्कं गृहाणत्वं वासुदेव! नमोऽस्तुते। हरिद्रालेपनाभ्यङ्गकार्यं सर्वं विधाय च॥१९॥
गोधूलिसमये पूज्यौ तुलसीकेशवौ पुनः। पृथक्पृथक्तथाकार्यौसम्मुखौमङ्गलंपठेत्॥२०॥

तत्पश्चात् मूर्त्ति की स्थापना तुलसी के पास करके एक वस्त्रखण्ड द्वारा तुलसी एवं विष्णुमूर्त्ति को युक्त करके यह मन्त्र कहे—"हे भगवान्! देवदेव! आप आगमन करिये। मैं आपकी अर्चना करके आपको तुलसी प्रदान करता हूं। आप मेरे लिये सर्वकामप्रद हो जायें।।" तदनन्तर तीन बार अर्घ्य, पाद्य तथा विष्टर प्रदान करके आचमनीय देना चाहिये। तब कांस्यपात्र में मिलित दधि, घृत तथा क्षीर कांस्यपात्र रखकर एक अन्य कांस्यपात्र से उसे ढाक देना चाहिये। तब साधक यह कहे—"हे वासुदेव! मधुपर्क ग्रहण करिये। आपको प्रणाम!" तदनन्तर हरिद्रा आदि की उबटन श्री विष्णु को लगाकर गोधूलि काल में तुलसी एवं केशव का पृथक्तः पूजन करके उनके समक्ष मंगलप्रद स्तुतिपाठ करे। इस प्रकार उनको प्रसन्न करे।।१६-२०।।

ईषद्दृश्ये भास्करे तु सङ्कल्पं तुसमुच्चरेत्। स्वगोत्रप्रवरानुक्त्वातथात्रिपुरुषादिकम्॥२१॥
अनादिमध्यनिधन! त्रैलोक्यप्रतिपालक!। इमां गृहाण तुलसीं विवाहविधिनेश्वर!॥२२॥
पार्वतीबीजसम्भूतां वृन्दाभस्मनि संस्थिताम्।
अनादिमध्यनिधनां वल्लभां ते ददाम्यहम्॥२३॥
पयोघटैश्च सेवाभिःकन्यावद्वर्धितामया। त्वत्प्रियांतुलसींतुभ्यंददामित्वंगृहाणभोः॥२४॥

एवं दत्त्वा च तुलसीं पश्चात्तौ पूजयेत्ततः। रात्रौजागरणंकुर्याद्विवाहोत्सवपूर्वकम्॥२५॥
ततः प्रभातसमये तुलसीं विष्णुमर्चयेत्। वह्निसंस्थापनं कृत्वा द्वादशाक्षरविद्यया॥२६॥
पायसाऽऽज्यक्षौद्रतिलैर्जुह्यादष्टोत्तरंशतम्। ततःस्विष्टकृतंहुत्वादद्यात्पर्णाहुतिं ततः।
आचार्यञ्च समभ्यर्च्य होमशेषं समापयेत्॥२७॥
चतुरो वार्षिकान्मासान्नियमो येन यः कृतः।
कथयित्वा द्विजेभ्यस्तत्तथाऽन्यत्परिपूरयेत्॥२८॥

तदनन्तर जब आकाश में किंचित् सूर्योदय परिलक्षित हो, तब संकल्प में अपना गोत्र, प्रवर तथा तीन पीढ़ी के पूर्वजों का नाम लेकर कहे "हे अनादिमध्य निधन, हे ईश्वर! हे त्रैलोक्य प्रतिपालक! आप विवाह विधि के साथ तुलसी को ग्रहण करिये।" इस प्रकार विष्णु को तुलसी प्रदान करने के अनन्तर उनका पूजन करना चाहिये। उस रात्रि में विवाहोत्सव के साथ रात्रि जागरण भी करें। इसके पश्चात् प्रभातकाल में विष्णु-तुलसी पूजनोपरान्त द्वादशाक्षर मन्त्र द्वारा अग्निस्थापना करने के अनन्तर पायस-घृत-मधु-तिल द्वारा १०८ आहुति देनी चाहिये। तदनन्तर स्विष्टिकृत् होम करके पूर्णाहुति देकर कार्य समापन करे। इस प्रकार एक वर्ष तक प्रतिमास संयमित रूप से यह व्रताचरण करें तथा अन्त में ब्राह्मणों की प्रार्थना करके उनसे यह वचन लेना चाहिये कि जो अंग अपूर्ण रह गया, उसे आप पूर्ण कर दीजिये।।२१-२८।।

इदं व्रतं मया देव! कृतं प्रीत्यै तव प्रभो!। न्यूनं सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन॥२९॥
रेवतीतुर्यचरणे द्वादशीसंयुते नरः। नकुर्यात्पारणं कुर्वन्व्रतं निष्फलतां नयेत्॥३०॥
ततो येषां पदार्थनांवर्जनं तु कृतं भवेत्। चातुर्मास्येऽथवाचोर्जेब्राह्मणेभ्यःसमर्पयेत्॥३१॥
ततः सर्वं समश्नीयाद्यद्यत्त्यक्तं व्रते स्थितम्॥३१॥
दम्पतिभ्यां सहैवाऽत्र भोक्तव्यञ्च द्विजैः सह॥३२॥
ततो भुक्त्युत्तरं यानि गलितानि दलानि च।
तानि भुक्त्वा तुलस्याश्च स्वयं पापैः प्रमुच्यते॥३३॥

तदनन्तर इस वाक्य से प्रार्थना करके व्रत की न्यूनता अथवा व्रताधिक्य दोष को शान्त कराने हेतु कहे—"हे जनार्दन! आपकी प्रसन्नता हेतु मैं यह व्रत कर रहा हूं। यदि कोई अंग अपूर्ण रह गया हो, तब आपकी कृपा से पूर्ण जाये।" रेवती के चतुर्थपादयुक्त द्वादशी के दिन पारण करना होगा। इस समय जो पारण नहीं करता उसका व्रत निष्फल हो जाता है। तदनन्तर चातुर्मास्य किंवा कार्त्तिक व्रत में जिन द्रव्यों का व्रती ने त्याग किया हो, वह सब सामग्री ब्राह्मणगण को अर्पित कर देनी चाहिये। तदनन्तर जिनका चातुर्मास्य विधानकाल में त्याग किया था, वही सब द्रव्य ब्राह्मणों के साथ सपत्नीक भक्षण करे। तदनन्तर तुलसी के गलित दलों को खाने वाला व्रती स्वयं सर्वपापमुक्त हो जाता है।।२९-३३।।

इक्षुदण्डं तथा धात्रीफलं कोलिफलं तथा।
भुक्त्वा तु भोजनस्याऽन्ते तस्योच्छिष्टं विनश्यति॥३४॥
एषु त्रिषु न भुक्तं चेदेकैकमपियेन तु। ज्ञेय उच्छिष्टआवर्षं नरोऽसौ नाऽत्र संशयः॥३५॥

भोजन के अन्त में व्रती व्यक्ति आंवला, ईंख तथा कोलिफल भक्षण करे। इससे मुख का जूठन दूर करे। इन तीनों के भक्षण से मुख का उच्छिष्टभाव समाप्त हो जाता है। यदि ये तीनों न मिलें, तब इनमें से एक के ही भक्षण द्वारा कार्य होगा। यदि एक का भी भक्षण नहीं किया जाये, तब व्रती का मुख एक वर्ष तक उच्छिष्ट ही रह जायेगा। इसमें सन्देह ही नहीं है।।३४-३५।।

ततः सायं पुनः पूज्याविक्षुदडैश्च शोभितैः।
तुलसीवासुदेवौ च कृतकृत्यो भवेत्ततः।।३६।।
ततोविसर्जनं कृत्वा दत्त्वा दायादिकं हरेः। वैकुण्ठं गच्छभगवँस्तुलसीसहितःप्रभो।
मत्कृतं पूजनं गृह्य सन्तुष्टो भव सर्वदा।।३७।।
गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर!। यत्र ब्रह्मादयोदेवास्तत्रगच्छ जनार्दन!।।३८।।

तत्पश्चात् तुलसी तथा वासुदेव की पूजा उत्तम इक्षु (गन्ना) के दण्ड से करनी चाहिये। यह पूजा सायंकाल करने वाला मानव कृतार्थ हो जाता है। तदनन्तर धनादि दान करके हरि का विसर्जन करे। विसर्जन काल में हरि से यह प्रार्थना करनी चाहिये—"हे प्रभो! भगवान्! आप तुलसी के साथ वैकुण्ठ गमन करिये। आप मेरे द्वारा की गयी पूजा को ग्रहण करिये। मुझ पर सन्तुष्ट हो जाइये। हे परमेश्वर! आप अपने स्थान जायें। अपने लोक जायें। हे देवप्रवर जनार्दन! जहां ब्रह्मा आदि देवता स्थित हैं, आप वहां जाईये।"।।३६-३८।।

एवं विसृज्य देवेशमाचार्याय प्रदापयेत्। मूर्त्यादिकंसर्वमेवकृतकृत्यो भवेन्नरः।।३९।।
प्रतिवर्षं तु यः कुर्यात्तुलसीकरपीडनम्। भक्तिमान्धनधान्यैःसयुक्तोभवतिनिश्चितम्।
इहलोके परत्राऽपि विपुलञ्च यशोलभेत्।।४०।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे कूष्माण्डनवमीतुलसीविवाहविधि वर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः।।३१।।

इस प्रकार देवेश विष्णु का विसर्जन करके मूर्त्ति आदि समस्त द्रव्य आचार्य को अर्पित कर देना चाहिये। इस कार्य से मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। जो भक्तिमान् मानव तीन वर्ष तुलसी विवाह का अनुष्ठान सम्पन्न करता है, वह धनधान्य समन्वित होकर इहलोक तथा परलोक में विपुल यशभागी हो ज़ाता है।।३९-४०।।

।।एकत्रिंश अध्याय समाप्त।।

द्वात्रिंशोऽध्यायः

भीष्मपञ्चक व्रतमहिमा

बालखिल्या ऊचुः

कार्त्तिकस्याऽमले पक्षे स्नात्वा सम्यग्यतव्रतः।
एकादश्यां तु गृह्णीयाद् व्रतं पञ्चदिनात्कम्॥१॥
शरपञ्जरसुप्तेन भीष्मेण तु महात्मना। राजधर्मा मोक्षधर्मा दानधर्मास्ततः परम्।
कथिताः पाण्डुदायादैः कृष्णेनाऽपि श्रुतास्तदा॥२॥
ततः प्रीतेन मनसा वासुदेवेन भाषितम्।
धन्यधन्योऽसि भीष्म त्वं धर्माः संश्रावितास्त्वया॥३॥
एकादश्यां कार्त्तिकस्य याचितं च जलंत्वया। अर्जुनेनसमानीतंगाङ्गंबाणस्यवेगतः॥४॥
तुष्टानितवगात्राणि तस्मादद्यदिनावधि। पूर्णान्तंसर्वलोकास्त्वांतपंयन्त्वर्घ्यदानतः॥५॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मम सन्तुष्टिकारकम्। एतद्व्रतं प्रकुर्वन्तुभीष्मपञ्चकसञ्ज्ञितम्॥६॥
कार्त्तिकस्य व्रतं कृत्वा नकुर्याद्भीष्मपञ्चकम्। समग्रंकार्त्तिकव्रतंवृथातस्यभविष्यति॥७॥

बालखिल्यगण कहते हैं—व्रतरत मानव कार्तिक मास की शुक्ला एकादशी के दिन स्नानोपरान्त पञ्चदिनात्मक व्रत ग्रहण करे। महात्मा भीष्म जब शरशय्या पर शयन कर रहे थे, तब उन्होंने क्रमशः राजधर्म, मोक्षधर्म, दानधर्म का वर्णन किया था। पाण्डुपुत्रगण ने उस भीष्मकथित धर्मों को सुना था। भीष्म द्वारा कहे गये धर्म को सुनकर मन ही मन प्रसन्नतापूर्वक कृष्ण ने कहा—"हे भीष्म! आप धन्य हैं। आप धन्य हैं। आपने हमें श्रेष्ठ धर्म सुनाया है। आपने कार्तिक मास की एकादशी तिथि के दिन जल मांगा था। अर्जुन ने बाण के द्वारा जाह्नवी जल लाकर आपका शरीर शीतल किया। तब से सभी लोग एकादशी से पूर्णिमा पर्यन्त (पञ्चदिवस) अर्घ्य देकर आपको सन्तुष्ट करें। इसलिये सभी लोग सर्वप्रयत्न द्वारा मुझे प्रसन्नता प्रदाता इस भीष्मपञ्चक नामक व्रत का पालन करें। जो इस भीष्मपञ्चक व्रत को नहीं करेगा, उसका कार्तिक मासव्यापी समस्त व्रत निष्फल होगा।।१-७।।

अशक्तश्चेन्नरो भूयादसमर्थश्च कार्त्तिके। भीष्मस्य पञ्चकं कृत्वा कार्त्तिकस्य फलं लभेत्॥८॥
सत्यव्रताय शुचये गाङ्गेयाय महात्मने। भीष्मायैतद्ददाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे॥९॥
सव्येनाऽनेन मन्त्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम्॥१०॥

जो व्यक्ति कार्तिक व्रताचरण में असमर्थ हो, वह केवल भीष्मपञ्चक व्रत मात्र से समग्र कार्तिक व्रतफल प्राप्त कर सकता है। इस व्रत में पितृरीति से ही भीष्मतर्पण करना चाहिये। मन्त्र है। "पवित्र, गांगेय, सत्यव्रत, महात्मा, आजन्म ब्रह्मचारी, भीष्म को मैं यह अर्घ्य प्रदान करता हूं।" इस तर्पण का सभी वर्ण वालों को समान अधिकार है।।८-१०।।

व्रताङ्गत्वात्पूर्णिमायां प्रदेयः पापपूरुषः। अपुत्रेण प्रकर्तव्यं सर्वथा भीष्मपञ्चकम्॥११॥
यः पुत्रार्थं व्रतं कुर्यात्सस्त्रीको भीष्मपञ्चकम्। प्रदत्वा पापपुरुषंवर्षमध्ये सुतं लभेत्॥१२॥
अवश्यमेवकर्तव्यंतस्माद्भीष्मस्यपञ्चकम्। विष्णुप्रीतिकरंप्रोक्तंमयाभीष्मस्यपञ्चकम्॥१३॥

पूर्णिमा के दिन एक पापपुरुष प्रदान करें। यह व्रत का विशेष अंग है। इस व्रत के प्रभाव से व्रती को एक वर्ष में पुत्रलाभ होगा। मैंने इस भीष्मपञ्चक व्रत का एवंविध वर्णन किया। यह व्रत मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसलिये मानव इसे अवश्य सम्पन्न करे।।११-१३।।

सूत उवाच

शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे विशेषो भीष्मपञ्चके। कार्त्तिकेयायरुद्रेणपुराप्रोक्तःसविस्तरात्॥१४॥

सूत जी कहते हैं—हे ऋषिगण! आप इसे विशेषरूपेण सुनें! रुद्रदेव ने प्राचीनकाल में कार्त्तिकेय से इस व्रत का वर्णन विशेषतया किया था।।१४।।

ईश्वर उवाच

प्रवक्ष्यामि महापुण्यं व्रतं व्रतवताम्बर!। भीष्मेणैतद्यतः प्राप्तं व्रतं पञ्चदिनात्मकम्॥१५॥
सकाशाद्वासुदेवस्यतेनोक्तंभीष्मपञ्चकम्। व्रतस्याऽस्यगुणान्वक्तुंकःशक्तः केशवादृते॥१६॥
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु शृणेधर्मं पुरातनम्। वसिष्ठभृगुगर्गाद्यैश्चीर्णंकृतयुगादिषु॥१७॥
अम्बरीषेण भोगाद्यैश्चीर्णं त्रेतायुगादिषु। ब्राह्मणैर्ब्रह्मचर्येण जपहोमक्रियादिभिः॥१८॥
क्षत्रियैश्च तथा वैश्यैः सत्यशौचपरायणैः। दुष्करंसत्यहीनानामशक्यंबालचेतसाम्॥१९॥

ईश्वर कहते हैं—हे व्रताग्रणी! पांच दिनों वाले इस महापुण्यात्मक व्रत को भीष्म ने जैसे प्राप्त किया था, वह कहता हूं। भीष्म ने वासुदेव से यह व्रत प्राप्त किया था। स्वयं विष्णु ने उनसे इसका वर्णन किया था। इसलिये केशव के सिवाय इस व्रत के गुण को कौन कह सकेगा? तथापि इस पुरातन धर्म को सुनो। सत्ययुग के प्रारंभकाल में भृगु, गर्ग तथा वसिष्ठ आदि ऋषिगण ने तथा त्रेतायुग के प्रथमकाल में अम्बरीष, भोग आदि राजाओं ने कार्त्तिक शुक्लपक्ष में इस व्रत को किया था। इनके अतिरिक्त अनेक व्रताचारी ब्रह्मचारी ब्राह्मणों ने, सत्य एवं शौचयुक्त क्षत्रियों ने तथा वैश्यों ने जपहोमादि द्वारा इस व्रत को सम्पन्न किया। विद्वानों का कथन है कि यह भीष्मव्रत उनके लिये दुर्लभ है, जो सत्यच्युत हैं। यह बाल स्वभाव मनुष्यों के लिये असाध्य है।।१५-१९।।

दुष्करं भीष्ममित्याहुर्नशक्यं प्राकृतैर्नरैः। यस्मात्करोतिविप्रेन्द्र! तेनसर्वकृतं भवेत्॥२०॥
व्रतं चैतन्महापुण्यं महापातकनाशनम्। अतो नरैः प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम्॥२१॥
कार्त्तिकस्याऽमले पक्षे स्नात्वा सम्यग्विधानतः।
एकादश्यां तु गृह्णीयाद् व्रतं पञ्चदिनात्मकम्॥२२॥
प्रातः स्नात्वा विशेषेण मध्याह्नेच तथा व्रती। नद्यांनिर्झरतोयेवासमालभ्यचगोमयम्॥२३॥
यवव्रीहितिलै सम्यक्पितृसन्सन्तर्पयेत्क्रमात्। स्नात्वामौनंनरःकृत्वाधौतवासादृढव्रतः॥२४॥

भीष्मायोदकदानञ्च अर्घ्यञ्चैवप्रयत्नतः। पूजा भीष्मस्य कर्तव्या दानं दद्यात्प्रयत्नतः॥२५॥
पञ्चरत्नं विशेषेण दत्वा विप्राययत्नतः। वासुदेवोऽपिसम्पूज्योलक्ष्मीयुक्तःसदाप्रभुः॥२६॥
पञ्चके पूजयित्वा तु कोटिजन्मानि तुष्यति॥२७॥

सामान्य लोग इसे कदापि नहीं कर पाते। हे विप्रप्रवर! जो यह भीष्म व्रत करते हैं, उन्होंने मानो सब कुछ कर लिया। यह महापुण्यप्रद व्रत है। यह महापाप नाशक भी है। मनुष्यगण को सभी प्रयत्नों द्वारा यह भीष्मपंचक व्रत करना चाहिये। कार्त्तिक शुक्ला एकादशी के दिन यथाविधि स्नानोपरान्त पञ्चदिनात्मक भीष्म व्रत करें। व्रतग्रहण वाले दिन व्रती मानव देह में गोमय लिप्त करके नदी अथवा निर्झर जल में स्नान करके जल में ही यव, व्रीहि तथा तिल से क्रमशः पितरों का तर्पण सविधि-सम्पन्न करे। व्रती दृढ़बुद्धि मनुष्य स्नानान्त में मौन होकर श्वेत वस्त्र धारण करके यत्नतः भीष्म को जल तथा अर्घ्यदान करे। तदनन्तर यत्नतः भीष्म की पूजा करे तथा नाना प्रकार का दान करे। विशेषतः आदरपूर्वक भीष्मपूजा तथा विविध दान करना चाहिये। इस व्रत के दिन ब्राह्मण को पञ्चरत्न का दान देना चाहिये। इस व्रतकाल में लक्ष्मी के साथ प्रभु वासुदेव की अर्चना करनी चाहिये। इस व्रत में मानव की पूजा से लक्ष्मी-जनार्दन उस व्रती के प्रति कोटि-जन्मपर्यन्त प्रसन्न रहते हैं।।२०-२७।।

यत्किञ्चिद्ददते मर्त्यः पञ्चधातुप्रकल्पितम्।
सम्वत्सरव्रतानां स लभते सकलंफलम्॥२८॥
कृत्वातुदकदानं तु तथाऽर्घ्यस्यचदापनम्। मन्त्रेणाऽनेन यःकुर्यान्मुक्तिभागीभवेन्नरः॥२९॥
वैयाघ्रपादगोत्राय साङ्कृत्यप्रवराय च। अनपत्याय भीष्माय उदकं भीष्मवर्मणे॥३०॥
वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च। अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे॥३१॥

मानवगण भीष्मपंचक व्रत में पञ्चधातु युक्त जो भी पंचरत्न दान करते हैं, उस दान फल से उनको एक वर्ष के कार्त्तिक व्रताचरण का पूर्ण फललाभ होता है।

"वैयाघ्रपाद गोत्राय साङ्कृत्य प्रवराय च। अनपत्याय भीष्माय उदकं भीष्मवर्मणे।

वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च। अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्म ब्रह्मचरिणे।। —यह अर्घ्य मन्त्र है। इससे अर्घ्य देना चाहिये।।२८-३१।।

इत्यर्घ्यमन्त्रः

अनेन विधिना यस्तु पञ्चकं तु समापयेत्। अश्वमेधसमं पुण्यं प्राप्नोत्यत्र न संशयः॥३२॥
पञ्चाऽहमपि कर्तव्यं नियमञ्च प्रयत्नतः। नियमेन विना यत्र न भाव्यं वरवर्णिना॥३३॥
उत्तरायणहीनाय भीष्माय प्रददौ हरिः। उत्तरायणहीनेऽपि शुद्धलग्नं सुतोषितः॥३४॥
ततः सम्पूजयेद्देवं सर्वपापहरं हरिम्। अनन्तरं प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम्॥३५॥
स्नापयेतजलैर्भक्त्या मधुक्षीरघृतेन च। तथैव पञ्चगव्येन गन्धचन्दनवारिणा॥३६॥
चन्दनेन सुगन्धेन कुङ्कुमेनाऽथ केशवम्। कर्पूरोशीरमिश्रेण लेपयेद्गरुडध्वजम्॥३७॥

जो मानव यहां कही गयी विधि के अनुसार सम्यक् रूप से भीष्मपञ्चक व्रताचरण करता है, वह अश्वमेध

के समान फललाभ करता है। इसमें संशय नहीं है। एकादशी से पूर्णिमा पर्यन्त पांच दिन यत्नपूर्वक नियम बद्ध रहे। क्योंकि नियम त्याग करने से व्यक्ति कदापि श्रेष्ठ नहीं होता। जब हरि ने भीष्म पर प्रसन्न होकर उनको यह व्रत बतलाया था, तब उत्तरायण नहीं था। अतः इस व्रत का आचरण दक्षिणायन में उपदिष्ट होने पर भी विष्णुदेव का आदेश होने के कारण यह नित्य शुद्ध लग्न माना जाता है। तदनन्तर व्रतारंभ करते ही सर्वपापहारी हरि की पूजा करके तदनन्तर यत्नतः भीष्मपञ्चक व्रत में निरत होना चाहिये। व्रत के दिन गरुड़ वाहन विष्णु को भक्ति के साथ जल-मधु-क्षीर-घृत-गोमूत्रादि पञ्चगव्य तथा गन्धचन्दनयुक्त जल द्वारा स्नान कराये। तत्पश्चात् सुगन्धित द्रव्य, चन्दनादि, कुंकुम, उशीर, कर्पूर को मिलाकर भगवान् के शरीर में लेप करें।।३२-३७।।

अर्चयेद्रुचिरैः पुष्पैर्गन्धधूपसमन्वितैः। गुग्गुलुंसुतसंयुक्तं ददेत्कृष्णाय भक्तिमान्॥३८॥
दीपकं तु दिवा रात्रौ दद्यात्पञ्चदिनानि तु। नैवे देवदेवस्य परमान्नं निवेदयेत्॥३९॥
एवमभ्यर्चयेद्देवं संस्मृत्य चप्रणम्य च। ॐ नमो वासुदेवायेति जपेदष्टोत्तरं शतम्॥४०॥

इसके पश्चात् भक्तियुक्त मनुष्य मनोहर सुगन्धित पुष्प तथा धूप-दीप से हरि की पूजा करके घृतयुक्त गुग्गुल उनको प्रदान करे। इन पांचो दिन, दिन-रात दीप-दान करना होगा। साथ ही घृताक्त गुग्गुल भगवान् को अर्पित करें। भगवान् को पायसान्न भी निवेदित किया जाये। इस प्रकार से हरि की पूजा करके उनका नाम स्मरण तथा प्रणाम करके "ॐ नमो वासुदेवाय" मन्त्र का १०८ जप करें।।३८-४०।।

जुहुयाच्चघृताऽभ्यक्तैस्तिलव्रीहियवादिभिः। षडक्षरेणमन्त्रेण स्वाहाकाराऽन्वितेनच॥४१॥
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां प्रणम्य गरुडध्वजम्।
जपित्वा पूर्ववन्मत्रं क्षितिशायी भवेत्सदा॥४२॥
सर्वमेतद्विधानं तु कार्यं पञ्च दिनानि तु। विशेषोऽत्रव्रतेह्यस्मिन्यदन्यूनं श्रृणुष्वतत्॥४३॥
प्रथमेऽह्नि हरेः पादौ पूजयेत्कमलैर्व्रती। द्वितीये बिल्वपत्रेण जानुदेशं समर्चयेत्॥४४॥
ततोऽनुपूजयेच्छीर्षं मालत्या चक्रपाणिनः। कार्त्तिक्यांदेवदेवस्यभक्त्यातद्गतमानसः॥४५॥
अर्चित्वा तं हृषीकेशमेकादश्यां समासतः। निःप्राश्यगोमयंवम्यगेकादश्यामुपावसेत्॥४६॥
गोमूत्रं मन्त्रवद्भूमौ द्वादश्यां प्राशयेद्व्रती। क्षीरंचैवत्रयोदश्यांचतुर्दश्यांतथादधि॥४७॥
सम्प्राश्यकायशुद्ध्यर्थंलङ्घयित्वाचतुर्दिनम्। पञ्चमेदिवसेस्नात्वाविधिवत्पूज्यकेशवम्।
भोजयेद् ब्राह्मणान्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्॥४८॥
पापबुद्धिं परित्यज्य ब्रह्मचर्येण धीमता।
मद्यं मांसं परित्याज्यं मैथुनं पापकारणम्॥४९॥

तदनन्तर षडक्षर मन्त्र को स्वाहा युक्त करके घृतयुक्त तिल-ब्रीहि तथा यव के द्वारा विष्णु के लिये होम करें। तत्पश्चात् व्रतकारी व्यक्ति सन्ध्याकाल में सायं सन्ध्या की उपासना करके गरुड़ध्वज को पूर्ववत् प्रणामोपरान्त पूर्ववत् जप करें तथा रात्रि में भूमि पर शयन करें। पांचवें दिन इसी प्रकार व्रतपालन करना चाहिये। इनमें से जिस कार्य में पुण्य की अधिकता है, उसे सुनों। व्रती मनुष्य पहले दिन कमल से चक्रपाणी वासुदेव के पादपद्म

की, द्वितीय दिन विशेष बिल्वपत्र से उनके जानुप्रदेश की, तृतीय-चतुर्थ-पञ्चम दिन में मालती के पुष्प से हरि के शीर्ष (शिर) की पूजा करें। तत्पश्चात् हरिपरायण व्रतकर्त्ता भक्तिभाव से कार्त्तिकशुक्ला एकादशी के दिन हृषीकेश का पूजन सम्यक्तः संक्षेप में करके कायशुद्धि हेतु केवलमात्र मन्त्रपूत गोमय का प्राशन करके उपवासी रहे। इसी प्रकार द्वितीय दिन द्वादशी के दिन गोमूत्र, तृतीय दिन त्रयोदशी के दिन दुग्ध का तथा चतुर्थ दिन चतुर्दशी के दिन दधि का प्राशन करके चार दिन अतिवाहित करना चाहिये। इस प्रकार चार दिन व्यतीत करें। इस प्रकार से अपनी शुद्धि हेतु चार दिन व्यतीत करना चाहिये। पांचवें दिन स्नानोपरान्त विधिवत् केशव की पूजा करें तथा विधिवत् भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराकर उनको दक्षिणा प्रदान करें। धीमान् व्रती व्यक्ति व्रतकाल में पापबुद्धि छोड़कर सतत् ब्रह्मचर्य का आचरण करे। मद्य-मांस-मैथुन ही पाप का कारण है। अतएव मानव उसे पूर्णतः त्यागे।।४१-४९।।

शाकाहारेण मुन्यन्नैः कृष्णार्चनपरो नरः। ततो नक्तं समश्नीयात्पञ्चगव्यपुरःसरम्।।५०।।
एवं सम्यक्समाप्यं स्याद्यथोक्तं फलमाप्नुयात्।।५१।।
मद्यपो यः पिबेन्मद्यं जन्मनो मरणाऽन्तिकम्।
एतद्भीष्मव्रतं कृत्वा प्राप्नोति परमम्पदम्।।५२।।
स्त्रीभिर्वाभर्तृ वाक्येनकर्तव्यंधर्मवर्धनम्। विधवाभिश्चकर्तव्यंमोक्षसौख्याऽतिवृद्धये।।५३।।
अयोध्यायाम्पुरा कश्चिदतिथिर्नाम वै नृपः। वसिष्ठवचनात्कृत्वा व्रतमेतत्सुदुर्लभम्।
भुक्त्वेह निखिलान्भोगानन्ते विष्णुपुरं ययौ।।५४।।
इत्थं कुर्याद्व्रतं नित्यं पञ्चकंभीष्मसञ्ज्ञितम्। नियमेनोपवासेन पञ्चगव्येन वा पुनः।।५५।।
पयोमूलफलाऽऽहारैर्हविष्यैर्व्रततत्परः। पौर्णमासीदिने प्राप्ते पूजां कृत्वा तु पूर्ववत्।
ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या गाञ्च दद्यात्सवत्सकाम्।।५६।।
यद्भीष्मपञ्चकमिति प्रथितम्पृथिव्यामेकादशीप्रभृति पञ्चदशीनिरुद्धम्।
उक्तं न भोजनपरस्य तदा निषेधस्तस्मिन्व्रते शुभफलं प्रददाति विष्णुः।।५७।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डेकार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे भीष्मपञ्चकव्रतमाहात्म्यवर्णनंनाम द्वात्रिंशोऽध्यायः।।३२।।

व्रती व्यक्ति हरिपूजा तत्पर होकर शाकाहार परायण होकर कृष्णार्चन करे। व्रती व्यक्ति पहले रात्रि में पञ्चगव्य पान करके तब आहार करे। इस प्रकार से भीष्मपञ्चक व्रत करने पर यथोक्त फललाभ होता है। जो मद्यप व्यक्ति जन्म से मृत्यु पर्यन्त मद्यपान करता है, ऐसा मनुष्य भी भीष्मपञ्चक व्रताचरण द्वारा परमपद लाभ करता है। रमणीगण स्वामी का आदेश लेकर यह धर्मवर्द्धन व्रत करें। विधवा भी मोक्ष एवं सुखवृद्धि हेतु यह व्रत करें। पूर्वकाल में अयोध्या राज्य में अतिथि नामक एक नृप थे। वे वसिष्ठ वाक्य से यह सुदुर्लभ भीष्मपञ्चक व्रत किया करते थे। इसके प्रभाव से उन्होंने वैकुण्ठ लाभ किया। यथाविधि नियम से रहना, उपवास, पञ्चगव्यपान, जल, फल, मूल तथा हविष्यान्न भोजन प्रभृति यथोक्त नियम से व्रत तत्पर होकर, तथा पूर्णिमा काल में यथोक्त नियम

से व्रत करते हुये विष्णु पूजा द्वारा भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराकर उनको सवत्सा गौ प्रदान करें। यह भीष्मपञ्चक व्रत पृथिवी में विख्यात है। एकादशी से पूर्णिमा पर्यन्त इसे करना चाहिये। यह सतत् भोजन में लगे मानव हेतु नहीं कहा गया, यह तो भोजन से निषिद्धव्रत है। यदि उपवास से अधिक कष्ट हो, तब मात्र शाक-मूलादि का ही भक्षण करें। सामान्यतः पञ्चगव्य पान का ही नियम है। इन पांच दिन जो उपवासी रहते हैं, विष्णु उनको शुभफल देते हैं।।५०-५७।।

।।द्वात्रिंश अध्याय समाप्त।।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

प्रबोधिनी एकादशी माहात्म्य, प्रबोध मनुद्वादशी कृत्य वर्णन

ईश्वर उवाच

प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नंपुण्यवर्धनम्। मुक्तिदंतत्त्वबुद्धीनां शृणुष्वसुरसत्तम।।१।।
तावद्गर्जतिसेनानीर्गङ्गाभागीरथीक्षितौ यावत्प्रयाति पापघ्नी कार्त्तिकेहरिबोधिनी।।२।।
तावद्गर्जन्ति तीर्थानि आसमुद्रसरांसि वै।
यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नाऽऽयाति कार्त्तिके।।३।।
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च। एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्या यथाऽभवत्।।४।।
दुर्लभञ्चैव दुष्प्राप्यं त्रैलोक्ये सचराचरे। तदपि प्रार्थितग्विप्र! ददाति प्रतिबोधिनी।।५।।
ऐश्वर्यं सन्ततिं ज्ञानं राज्यञ्च सुखसम्पदः। ददात्युपोषिता विप्र हेलया हरिबोधिनी।।६।।
मेरुमन्दरतुल्यानि पापान्युपार्जितानि च। एकेनैवोपवासेन दहते हरिबोधिनी।।७।।

ईश्वर कहते हैं—हे सुरश्रेष्ठ! प्रबोधिनी का माहात्म्य सुनों। इसका माहात्म्य पाप हरने वाला, पुण्यप्रद तथा तत्वज्ञानियों को मुक्ति देने वाला है। हे सेनानी! जब तक कार्त्तिक की पापहारिणी एकादशी नहीं आती तब तक पृथिवी पर भागीरथी गंगा अपनी प्रधानता के कारण गर्व करती है। जब तक विष्णु की हरिबोधिनी कार्त्तिकी एकादशी का आगमन नहीं होता, तब तक समुद्र से लगाकर सरोवर पर्यन्त के तीर्थ गर्जन करते हुये अपनी प्रधानता का ज्ञापन करते रहते हैं। किम्बहुना, एकमात्र हरिप्रबोधिनी को उपवासी रहने का जो फल है, हजारों अश्वमेध तथा सैकड़ों राजसूय यज्ञ करने पर भी वैसा फल नहीं मिलता। हे विप्र! हरिप्रबोधिनी वांछित फल प्रदातृ है। मानव के इस दिन उपवासी रहने पर यह हरिबोधिनी उसे ऐश्वर्य, संगति, ज्ञान, राज्य तथा नाना सुख सम्पत्ति प्रदान करती है। यहां तक कि एकमात्र हरिबोधिनी के दिन जो उपवासी रहता है, मेरु-मन्दर गिरि के समान राशि-राशि अर्जित उसके पाप भी दग्ध हो जाते हैं।।१-७।।

उपवासम्प्रवोधिन्यां यः करोति स्वभावतः। विधिना नरशार्दूल! यथोक्तं लभते फलम्॥८॥
पूर्वजन्मसहस्त्रेषु पापं यत्समुपार्जितम्। जागरेण प्रबोधिन्यां दह्यते तुलराशिवत्॥९॥
शृणु षण्मुख! वक्ष्यामि जागरस्य च लक्षणम्। तस्य विज्ञानमात्रेणदुर्लभोनजनार्दनः॥१०॥
गीतम्वाद्यञ्च नृत्यञ्च पुराणपठनं तथा। धूपं दीपञ्च नैवेद्यं पुष्पगन्धाऽनुलेपनम्॥११॥

फलमर्घ्यं च श्रद्धा च दानमिन्द्रियसंयमम्।
सत्यान्वितं विनिन्दं च मुदायुक्तं क्रियन्वितम्॥१२॥

साश्चर्यञ्चैव प्रोत्साहमालस्यादिविवर्जितम्। प्रदक्षिणादिसंयुक्तं नमस्कारपुरःसरम्॥१३॥
नीराजनसमायुक्तमनिर्विण्णेन चेतसा। यामेयामे महाभाग! कुर्वन्नीराजनं हरेः॥१४॥

हे नरशार्दूल! जो मानव प्रबोधिनी एकादशी के दिन यथाविधि स्वभावतः उपवासी रहता है, उसे यथोक्त फल की प्राप्ति होती है। हरिप्रबोधिनी के दिन जो जागरण करता है, उसके सहस्रों पूर्वजन्म में अर्जित पाप भी मुहूर्त्त मात्र में जल जाते हैं, जैसे मकड़ी का जाला अग्नि से क्षणमात्र में दग्ध हो जाता है। हे षडानन! अब जागरण लक्षण सुनो। इस जागरण की विधि ज्ञात होने पर उस व्यक्ति हेतु जनार्दन भी दुर्लभ नहीं हैं। हे महाभाग! जागरण के दिन श्रद्धायुक्त होकर तथा जितेन्द्रिय होकर गीत-वाद्य-नृत्य तथा पुराणपाठ करे। धूप-दीप-नैवेद्य-पुष्प-चन्दन-अनुलेपन-फल तथा अर्घ्य प्रदान करे। सतत् सत्ययुक्त होकर मुदित रहे तथा अनिन्दित कार्य ही करे। सदा उत्साह समन्वित तथा आलस्य रहित होकर आश्चर्य के साथ नमस्कार एवं प्रदक्षिणा आदि सम्पन्न करना चाहिये। अनिर्विण्ण मन से भगवान् का नीराजन करें। प्रत्येक याम में हरि का नीराजन करना ही चाहिये।।८-१४।।

एतैर्गुणैः समायुक्तं कुर्याज्जागरणम्विभोः। एकाग्रमनसायस्तु न पुनर्जायते भुवि॥१५॥
य एवं कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः। जागरम्वासरे विष्णोर्लीयते परमात्मनि॥१६॥
पुरुषसूक्तेन यो नित्यंकार्त्तिकेऽथार्चयेद्धरिम्। वर्षकोटिसहस्त्राणि पूजितस्तेनकेशवः॥१७॥
यथोक्तेन विधानेन पञ्चरात्रोदितेन वै। कार्त्तिके त्वर्चयेन्नित्यं मुक्तिभागी भवेन्नरः॥१८॥

नमोनारायणायेति कार्त्तिकेयोऽर्चयेद्धरिम्।
स मुक्तोनारकैर्दुःखैः पदंगच्छत्यनामयम्॥१९॥

जो मनुष्य इन गुणों से युक्त होकर हरि के लिये एकाग्र होकर नीराजन करता है, वह गुणान्वित व्यक्ति पुनः पृथिवी पर जन्म नहीं लेता। इसमें वित्तशाठ्य (कंजूसी) नहीं करनी चाहिये। जो इस प्रकार भक्तिपूर्वक रात्रि जागरण करता है, वह उस दिन से ही विष्णु में लीन हो जाता है। कार्त्तिकमास में जो मनुष्य पुरुषसूक्त द्वारा सतत् हरिपूजा करता है, इसे सहस्रकोटिवर्ष जनित ही पूजा लाभ होता है। जो यथोक्त भीष्मपञ्चक विधान से पांच दिन पर्यन्त हरिपूजनरत रहता है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है। जो मानव कार्त्तिक में "नमो नारायण" मन्त्र से विष्णु की अर्चना करता है, वह नरक पीड़ा से मुक्त होकर अनामय पद की प्राप्ति करता है।।१५-१९।।

हरेर्नामसहस्त्रञ्च गजराजस्य मोक्षणम्। कार्त्तिके पठते यस्तु पुनर्जन्म न विन्दति॥२०॥
युगकोटिसहस्त्राणि मन्वन्तरशतानि च। द्वादश्यांकार्त्तिकेमासि जागरी वसतेदिवि॥२१॥

कुले तस्य च ये जाताः शतशोऽथ सहस्रशः।
प्राप्नुवन्ति पदम्विष्णोस्तस्मात्कुर्वीत जागरम्॥२२॥
कार्त्तिके पश्चिमे यामे स्तवं गानंकरोति यः। श्वेतद्वीपे तु वसते पितृभिःसहसुव्रत॥२३॥

कार्त्तिक मास में जो लोग हरिसहस्रनाम तथा गजेन्द्रमोक्ष का पाठ करते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। कार्त्तिक द्वादशी के दिन जागरण परायण व्यक्ति सहस्रकोटियुग तथा सौ मन्वन्तर पर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है। उसके वंश में जो सैकड़ों हजारों लोग जन्म लेते हैं, वे भी विष्णुपदलाभ करते हैं। अतः कार्त्तिक में हरिजागरण अवश्य करें। हे सुव्रत! कार्त्तिक के पश्चिम याम में जो मानव स्तव तथा भक्तिगायन करता है, वह अपने पितरों के साथ श्वेतद्वीपवासी हो जाता है।।२०-२३।।

नैवेद्यदानं हरये कार्त्तिके दिनसङ्क्षये। युगानि वसते स्वर्गे तावन्ति मुनिसत्तमाः॥२४॥
अक्षयं मुनिशार्दूल! मालतीकमलार्चनम्। अर्चयेद्देवदेवेशं स याति परमम्पदम्॥२५॥
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु कृत्वाह्येकादशींनरः।
प्रातर्दत्त्वाशुभान्कुम्भान्सयातिममममन्दिरम् ॥२६॥

भगवान् विष्णु बालखिल्यों से कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! कार्त्तिक मास के सन्ध्याकाल में हरि को नैवेद्य दान करने से जितना नैवेद्य है, उतने युगों तक स्वर्ग लाभ होता है। हे मुनिप्रवरगण! मालती पुष्पों से हरि की अर्चना अक्षय हो जाती है। जो देवदेव का पूजन मालती पुष्पों द्वारा करता है, वह परमपदलाभ करता है। मानव कार्त्तिक शुक्ला एकादशी के दिन उपवासी रहकर अगले दिन प्रातः शोभन कुंभदान करके मेरे लोक की प्राप्ति करता है।।२४-२६।।

अत्रैव तु प्रकर्तव्यः प्रबोधस्तु हरेः खग!। हतः शङ्खासुरो दैत्यो नभसः शुक्लपक्षके॥२७॥
एकादश्यां ततो विष्णुश्चातुर्मास्ये प्रसुप्तवान्।
क्षीराम्भोधौ जागृतोऽसावेकादश्यां तु कार्त्तिके॥२८॥
अतः प्रबोधनंकार्यमेकादश्यां तु वैष्णवैः। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द! उत्तिष्ठगरुडध्वज।
उत्तिष्ठ कमलाकान्त! त्रैलोक्यं मङ्गलं कुरु॥२९॥

श्रीहरि गरुड़ से कहते हैं—हे खग! कार्त्तिक शुक्ला एकादशी के दिन शंखासुर का वध हुआ था। रमापति चार मास तक क्षीरसागर में शयनरत रहकर कार्त्तिकी शुक्ला एकादशी को जागते हैं। अतः इसी दिन हरि का प्रबोधन करना चाहिये। वैष्णवगण भी इस प्रार्थना मन्त्र से इसी दिन हरि का प्रबोधन कार्य करते हैं। मन्त्र है—हे गोविन्द! जागिये! हे गरुड़ध्वज! उठिये! हे कमलाकान्त! आप उठकर त्रैलोक्य मंगल करिये।।२७-२९।।

इत्युक्त्वा शङ्खभेर्यादि प्रातःकालेतुवादयेत्। वीणावेणुमृदङ्गादिनृत्यगीतादिकारयेत्॥३०॥
उत्थापयित्वा देवशं पूजांतस्यविधायच। सायंकालेप्रकर्तव्यस्तुलस्युद्वाहजोविधिः॥३१॥
सर्वदैकादशी पुण्या विशेषात्कार्त्तिकी स्मृता।
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च॥३२॥

अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति सम्प्राप्ते हरिवासरे। स केवलमघंभुङ्क्तेयोभुङ्क्तेहरिवासरे॥३३॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्यादेकादशीव्रतम्। न कुर्याद्यदि मोहेन उपवासं नराधमः॥३४॥
नरके नियतं वासः पितृभिः सह तस्य वै। सूतके मृतकेवाऽपि नोपवासंत्यजेद्बुधः॥३५॥
दशमीवेधसंयुक्ता त्यात्या चैकादशीव्रते। गान्धार्याऽपिपुरातस्यामुपवासःकृतोगुह॥३६॥
तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां वेधजां त्यजेत्। एकादशीमुपवसेत्स्नानदानपुरःसरम्॥३७॥

प्रभातकाल में एवंविध प्रार्थना करके शंख-भेरी-वीणा-वेणु तथा मृदङ्ग आदि का वादन तथा नृत्य-गीतादि द्वारा देवदेव का उत्थापन एवं पूजन करके सायंकाल में तुलसी की वैवाहिक विधि का अनुष्ठान करें। एकादशी सर्वदा पुण्या है। विशेषरूप से कार्त्तिक एकादशी पुण्यमयी है। ब्रह्महत्यादि सर्वपाप हरिवासरी एकादशी के दिन अन्न में समा जाते हैं। जो मानव एकादशी के दिन अन्न भोजन करता है, वह केवल पाप ही खाता है। इसलिये सर्वप्रयत्नपूर्वक एकादशी व्रत करना चाहिए। जो नराधम मोह के कारण एकादशी के दिन उपवासी नहीं रहता, अपने पितृगण के साथ वह नरकगामी हो जाता है। ज्ञानी मानव जनन तथा मरणाशौच में भी एकादशी के उपवास का त्याग न करें। एकादशी व्रत में दशमीवेधयुता तिथि ग्राह्य नहीं है। हे गुह! पूर्वकाल में गान्धारी ने दशमीयुक्ता एकादशी के दिन व्रत किया था। तभी उसके १०० पुत्र मृत हो गये। अतः दशमी वेधा एकादशी त्याज्य है। एकादशी के दिन स्नान-दान के साथ उपवास करना चाहिये।।३०-३७।।

रुक्माङ्गदोऽपि राजर्षिर्मोहिन्याःसङ्गमेनच। इहलोकेसुखंभुक्त्वाचाऽन्तेविष्णुपुरंययौ॥३८॥
द्वादशी पुण्यदा प्रोक्ता सर्वाऽघौघविनाशिनी।
किं दानैः किं तपोभिश्च किमु पोष्यैर्व्रतैश्च किम्॥३९॥
किमिष्टैश्चैव पुत्रैश्च द्वादशी येन सेविता। गङ्गायां चैव दुर्भिक्षे प्रत्यहंकोटिभोजनात्॥४०॥
यत्फलं तदवाप्नोति द्वादश्यामेकभोजनात्। यद्दत्तं चार्हते दानं द्वादश्यां तुसितेशुभे॥४१॥
सिक्थेसिक्थे च वैकस्य कतिब्राह्मणभोजनम्। तदहंनैवजानामिमहिमानं हिसुव्रत॥४२॥
शालग्रामशिलादानं यः कुर्याद्द्वादशीदिने। सप्तद्वीपवतीं भूमिं गङ्गायाञ्च रविग्रहे।
दत्त्वा यत्फलमाप्नोति तत्फलं लभते नरः॥४३॥

राजर्षि रुक्मांगद ने एकादशी का उपवास करके इस लोक में मोहिनी के साथ विविध भोगों का उपभोग किया तथा अन्त में वे विष्णुलोक चले गये। यह प्रबोधोत्सव मैंने कहा। अब द्वादशी माहात्म्य कहता हूं। द्वादशी पुण्यप्रदा तथा सर्वपापनाशिनी है। जो द्वादशी व्रत करते हैं, उनको दान-तप-उपवास-व्रत एवं वांछित पुत्र का क्या प्रयोजन! उसे तो द्वादशी व्रत से ही इनकी सर्वसिद्ध स्थिति प्राप्त हो जाती है। द्वादशी के दिन मात्र एक ब्राह्मण भोजन से ही पुण्यतीर्थ गंगा स्नान का फल तथा दुर्भिक्ष काल में करोड़ों मानवों को भोजन कराने के समान पुण्यफल प्राप्त होता है। हे सुव्रत! शुक्ला द्वादशी के दिन दान के उपयुक्त पात्र को जो दान करते हैं, उस दान के एक-एक पके दाने से ही अनेक ब्राह्मण भोजन का फल मिलता है। मुझे भी इसकी पूर्ण महिमा ज्ञात नहीं है। जो द्वादशी के दिन शालग्राम शिला दान करता है, वह मनुष्य सूर्यग्रहण काल में सप्तद्वीपयुक्त धरती दान इतना फल लाभ करता है।।३८-४३।।

पञ्चामृतैस्स्युयोविष्णुंभक्त्यासंस्नापयेद्द्विज!। ससर्वकुलमुद्धृत्यविष्णुलोकेमहीयते॥४४॥
शुक्ले कार्त्तिकमासस्य द्वादश्यांपरमोत्सवे। प्रातरारभ्ययःकुर्यात्स्नानदानादिकंतथा।
स तु मोक्षमवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा॥४५॥
द्वादश्यां कार्त्तिके मासि स्नानसन्ध्यादिकर्म च।
कृत्वा दामोदरं पूज्य भक्तिश्रद्धासमन्वितः॥४६॥
यस्तस्यां सूपनैवेद्यं न ददाति नराधमः। नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रम॥४७॥
तस्मात्सूपस्य नैवेद्यं द्वादश्यांकार्त्तिके शुभे। दद्याद्भक्तियुतोब्रह्मंश्चान्यथानरकं व्रजेत्॥४८॥
यस्तस्यां दम्पतीनां तु भोजनं कुरुते नरः। न तस्यफलविश्रान्तिमेयावक्तुंतुशक्यते॥४९॥

जो मानव द्वादशी के दिन भक्ति के साथ पंचामृत से विष्णु को स्नान कराते हैं, वे समस्त कुल का उद्धार करके विष्णुलोक प्राप्त करते हैं। कार्तिक शुक्लाद्वादशी का उत्सव श्रेष्ठ उत्सव है। जो इस उत्सव के दिन प्रभात से आरंभ करके स्नान, दान आदि प्रदान करता है, उसे अवश्य मोक्ष लाभ होता है। इसमें क्या सन्देह! कार्तिक मासीय द्वादशी को स्नान-सन्ध्या आदि नित्यकर्म करके भक्ति श्रद्धा के साथ दामोदर की पूजा करनी चाहिये। जो नराधम द्वादशी के दिन दामोदर को सूप नैवेद्य प्रदान नहीं करता, हमने सुना है कि वह दीर्घकालपर्यन्त नरकवास करता है। हे ब्रह्मन्! मैंने सुना है कि इस दिन जो मनुष्य दम्पत्ति को भोजन प्रदान करता है, उसे फल की सीमा नहीं है। अतः मैं भी उस फल को नहीं कह सकता।।४४-४९।।

धात्रीच्छायां गतो यस्तु द्वादश्यां पूजयेद्धरिम्।
तत्रैव भेजनं यस्तु ब्राह्मणानां तु कारयेत्॥५०॥
स्वयञ्च तत्र भुङ्क्तेयः सूपभक्ष्यादिकं तथा। न तस्य पुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि॥५१॥
एवं प्रातर्विधायाऽथ पूजां दामोदरस्य हि। रात्रौ पुनः प्रकर्तव्यं पूजाकर्म हरेर्द्विज॥५२॥
तुलसीसन्निधौ कृत्वा पताकाध्वजशोभितम्।
पुष्पमालासमाकीर्णं नानारत्नोपशोभितम्॥५३॥
मुक्तादामभिराच्छन्नं कृत्वा मण्डपमुत्तमम्। पूजयेद्विष्णुमव्यग्रस्तद्गतैकाग्रमानसः॥५४॥
पञ्चरात्रोक्तमार्गेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः। नवनीतं दधिक्षीरं तथैव च घनं घृतम्॥५५॥
विविधैः खाद्यनैवेद्यैर्जलेन च सुगन्धिना। युक्तं निवेदयेद्विष्णोस्ताम्बूलंसलवङ्गकम्॥५६॥
पुष्पाणि चविवित्राणिसुगन्धीनिबहूनिच। प्रोक्षयित्वाचविधिपदर्पयित्वादलैःशुभैः॥५७॥
तुलस्याश्चापि धात्र्याश्चफलैश्चाऽपिप्रपूजयेत्। नीराजनंततःकृत्वामन्त्रपुष्पंसमर्पयेत्॥५८॥

जो मनुष्य आंवले की छाया में जाकर श्री हरिपूजन करता है तथा वहां ब्राह्मण भोजन कराकर स्वयं सूप आदि भक्ष्य का भोजन करता है, वह शत कल्पकोटि काल पर्यन्त जन्म नहीं लेता। हे द्विज! प्रातःकाल इस प्रकार से दामोदर की पूजा समाप्त करके पुनः रात्रि में उनकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् तुलसी से युक्त स्थान में ध्वजा-पताकादि से शोभित, पुष्पमाला तथा रत्नों से युक्त, मुक्तादाम से समाच्छन्न एक उत्तम मण्डल निर्माण

करके व्यग्रता छोड़कर एकाग्र मन से उस मण्डप में दामोदर विष्णु की पूजा करें। यह पूजा पञ्चरात्रोक्त विधान से गन्धपुष्प तथा अक्षतादि से करनी चाहिये। तदनन्तर विष्णु के उद्देश्य से विविध खाद्यद्रव्य तथा सुगन्धित जल के साथ नवनीत, दधि, क्षीर, धन, घृत प्रस्तुत करके लवंगयुक्त ताम्बूल का निवेदन करना चाहिये। इसके पश्चात् अनेक सुगन्धि, विभिन्न पुष्प अर्पित करें। प्रोक्षण, तुलसीदल तथा धात्री फल से हरिपूजन करके नीराजन करें। तदनन्तर मन्त्रपुष्प प्रदान करें।।५०-५८।।

अभिषेकं विना सर्वपूजां कृत्वा विधानतः।
विष्णोः पूजां समाप्याऽथ ब्राह्मणानां प्रपूजनम्।।५९।।
कुर्याद्भक्तियुतो विप्र! दद्याच्चैव फलादिकम्।
ताम्बूलं च ततो दत्त्वा दक्षिणां शक्तितोऽर्पयेत्।।६०।।

हे विप्र! तत्पश्चात् विष्णु के अभिषेक की क्रिया को छोड़कर बाकी पूजा यथाविधि सम्पन्न करके भक्तिभाव के साथ ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये। उनको फल-ताम्बूल तथा शक्ति के अनुसार दक्षिणा प्रदान करें।।५९-६०।।

ततो वृद्धान्पितॄन्मातॄःपूजयित्वाविधानतः। ततःस्वयं स्वभार्याभिर्नैवेद्यभक्षयेत्सुधीः।।६१।।
इत्येवं तुविधानेनयःकुर्याद्द्वादशीव्रतम्। नतस्यलोकाः क्षीयन्ते कल्पकोटिशतैरपि।।६२।।
पुत्रपौत्रैः परिवृतो भुक्त्वा भोगान्मनोहरान्। भोगान्ते च व्रजेन्मोक्षमतीतकुलसप्तके।।६३।।
तस्मान्नारद! माहात्म्यं द्वादश्याः कार्त्तिकस्य च।
न मया शक्यते वक्तुं किमन्यैर्मनुजैरपि।।६४।।
द्वादश्या ह्युत्तमं पुण्यं माहात्म्यंयःपठेन्नरः। श्रृणुयाद्वामुनिश्रेष्ठ! सयातिपरमांगतिम्।।६५।।
राजर्षिरम्बरीषोऽपि चकारैतद्व्रतंशुभम्। यथाविधि तपोनिष्ठस्तेन मोक्षमवाप्तवान्।।६६।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे प्रबोधनोत्सवद्वादशीतिथिकृत्यवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।।३३।।

तत्पश्चात् सुधीव्रती यथाविधि वृद्ध माता-पिता की पूजा करके पत्नी सहित स्वयं विष्णुदेव के प्रसाद का भोजन करें। जो मानव इस प्रकार विधिवत् द्वादशी व्रत करता है, शतकोटि कल्प में भी वह स्वर्गादिलोक से च्युत नहीं होता। वह मनुष्य पुत्र तथा पौत्रगण से परिवृत होकर मनोहर भोग्य का उपभोग करके भोगान्त में अपनी पूर्व सात पीढ़ी के साथ मोक्षलाभ करता है। हे नारद! अतः अन्य लोगों की तो बात ही क्या? कार्त्तिक शुक्लाद्वादशी के माहात्म्य को मैं नहीं कह सकता। हे मुनिप्रवर! जो मनुष्य द्वादशी के उत्तम माहात्म्य का पाठ करता है, अथवा इसे सुनता है, उसे परमगति प्राप्त होती है। राजर्षि अम्बरीष ने तपोनिष्ठ होकर यथाविधि शुभ द्वादशीव्रत को किया था। वे इस व्रतपुण्य के प्रभाव से मोक्षगामी हो गये।।६१-६६।।

।।त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

व्रत की उद्यापनविधि

नारद उवाच

व्रतानामपि सर्वषांब्रह्मन्नुद्यापनंश्रुतम्। अभावेतूद्यापनस्यफलंनैवऽऽप्नुयात्क्वचित्।।१।।
कृतव्रतफलाप्त्यर्थं कुर्यादुद्यापनम्बुधः। अन्यथा निष्फलं याति कृतं व्रतमनुत्तमम्।।२।।
कार्त्तिकेऽपि कृतंदेवव्रतानामुत्तमंव्रतम्। न तस्योद्यापनाऽभावेव्रतोक्तफलमाप्नुयात्।।३।।
तस्मात्कार्त्तिकमासस्यचोद्यापनविधिं प्रभो!। वदमे शिष्यवर्याय प्रपन्नायाऽनुवर्तिने।।४।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! व्रत समूह के उद्यापन की विधि सुना। हे तात! व्रत का उद्यापन किये बिना वह कदापि सफल नहीं होता। यही आपने कहा था। इसलिये बुद्धिमान व्रती मानव आचरित व्रत की फलप्राप्ति हेतु उसका उद्यापन अवश्य करें। उद्यापन के अभाव में अत्युत्तम व्रत भी निष्फल हो जाता है। हे देव! अत्युत्तम कार्त्तिक व्रत करके भी उद्यापन किये बिना उसका फललाभ नहीं होता। हे प्रभो! मैं आपके शिष्यों में प्रधान हूं। आपका पूर्ण अनुवर्त्ती तथा शरणापन्न हूं।।१-४।।

ब्रह्मोवाच

अथोर्जोद्यापनं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम्। तच्छृणुष्व महाभक्त्या सविधानं समासतः।।५।।
ऊर्जे शुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती। व्रतसम्पूरणार्थाय विष्णुप्रीत्यर्थहेतवे।।६।।
तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मण्डपिकां शुभाम्।
कदलीस्तम्भसंयुक्तां नानाधातुविचित्रिताम्।।७।।
दीपमाला चतुर्दिक्षु कार्या तत्र सुशोभना। सुतोरणाश्चतुर्द्वारः पुष्पचामरशोभिताः।।८।।
द्वारेषु द्वारपालांश्च पूजयेन्मृण्मयान्पृथक्। जयश्च विजयश्चैव चण्डश्चैव प्रचण्डकः।।९।।
नन्दश्चैव सुनन्दश्च कुमुदः कुमुदाक्षकः। एतांश्चतुर्षु द्वारेषु पूजयेद्भक्तिसंयुतः।।१०।।

ब्रह्मा कहते हैं—वत्स नारद! तत्पश्चात् कार्त्तिकव्रत की सर्वपापनाशक, उद्यापनविधि संक्षेप में कहता हूं। तुम अत्यन्त भक्ति के साथ उसे सुनो। कार्त्तिकव्रती हरि की प्रसन्नतार्थ तथा व्रत के सम्पन्न होने के लिये कार्त्तिक शुक्ला चतुर्दशी के दिन उद्यापन करें। इस हेतु एक मनोरम छोटा मण्डप बनाये। यह मण्डप नाना धातु चित्रित हो तथा उसके द्वार को कदली स्तम्भ से सज्जित करें। उसके मध्य में तुलसी वृक्ष रखें। मण्डप के चतुर्दिक् शोभित दीपमाला जलाये। मण्डप के चतुर्दिक् चार मनोरम तोरणद्वारों को बनाये। प्रत्येक द्वार पुष्प तथा चामर द्वारा उपशोभित करना चाहिये। तोरणद्वार चतुष्टय पर मिट्टी के बने अनेक द्वाररक्षक हों। उनका नाम होगा जय, विजय, चण्ड, प्रचण्ड, नन्द, सुनन्द, कुमुद तथा कुमदाक्षत। भक्तिभाव के साथ चारों द्वार पर स्थित इन मृण्मय द्वारपालों की अलग-अलग पूजा करें।।५-१०।।

तुलसीमूलदेशेतुसर्वतोभद्रसञ्ज्ञितम्। चतुर्भिर्वर्णकैःसम्यक्छोभाढ्यं समलङ्कृतम्।।११।।

तस्योपरिष्टात्कलशं पूर्णरत्नसमन्वितम्। तत्रसम्पूजयेद्देवं शङ्खचक्रगदाधरम्॥१२॥
कौशेयपीतवसनं लक्ष्म्या युक्तं प्रपूजयेत्। इन्द्रादिलोकपालांश्च मण्डपे पूजयेद्व्रती॥१३॥
तस्यामुपवसेद्भक्त्या शान्तः प्रणतमानसः। रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमङ्गलैः॥१४॥
गीतं कुर्वन्ति ये भक्त्याजागरेचक्रपाणिनः। जन्मान्तरशतोद्भूतैस्तेमुक्ताःपापसञ्चयैः॥१५॥
ततस्तु पूर्णिमायां तु सपत्नीकान्द्विजोत्तमान्।
त्रिंशन्मितानथैकम्वा ब्राह्मणांश्च निमन्त्रयेत्॥१६॥
प्रातःस्नानं ततः कृत्वादेवपूजांतथैवच। स्थण्डिलञ्चततःकृत्वासमाधायाऽग्निमत्रहि॥१७॥
अतो देवीति मन्त्रेण जुहुयात्तिलपायसम्। प्रीत्यर्थं देवदेवस्य देवानाञ्च पृथक्पृथक्॥१८॥

तुलसी के मूल में वर्ण चतुष्ठय से सर्वतोभद्र नामक मण्डल निर्माण करें। यह मण्डप सम्यक् शोभा युक्त तथा अलंकृत हो तत्पश्चात् मण्डप के ऊपर पंचरत्न समन्वित एक कलस स्थापित करके उस कलस पर कौषेय पीतवासा (पीतवस्त्रधारी) शंख-चक्र-गदाधारी हरि की पूजा लक्ष्मी के साथ करें। तत्पश्चात् व्रती होकर मण्डप में इन्द्रादि लोकपालों की पूजा करके सभक्ति युक्त होकर उस दिन उपवासी रहे तथा शान्त एवं प्रणतमानस होकर मंगल गीत-वाद्य करते हुये रात्रि जागरण करें। जो व्यक्ति चक्रपाणि के जागरण दिन (कार्त्तिक शुक्ल एकादशी के दिन) भक्तिपूर्वक गायन करता है, वह १०० जन्मों के संचित पाप से मुक्त हो जाता है। तदनन्तर पूर्णिमा के दिन ३० किंवा १५ श्रेष्ठ ब्राह्मण दम्पत्तियों को बुलाये। (निमन्त्रित करें)। प्रातःस्नान तथा देवपूजनोपरान्त एक स्थण्डिल बनाकर उस पर अग्नि स्थापित करें। तत्पश्चात् "अतो देवी" इत्यादि मन्त्रों द्वारा—देवदेव की प्रसन्नतार्थ तिल एवं पायस से देवगण के लिये आहुति प्रदान करें। देवताओं की आहुति पृथक्तः देनी चाहिये।।११-१८।।

होमशेषंसमाप्याऽथब्राह्मणान्पूज्यभक्तितः। ब्राह्मणेभ्योयथाशक्त्याप्रदद्याद्दक्षिणांनरः॥१९॥
ततो गां कपिलां तत्र पूजयेद्विधिवद्व्रती। सवत्सांगांतथादद्याद्विप्रायचकुटुम्बिने॥२०॥
गुरुं व्रतोपदेष्टारं वस्त्रालङ्कारभूषणैः। सपत्नीकं समभ्यर्च्यतांश्च विप्रान्क्षमापयेत्॥२१॥
युष्मत्प्रसादाद्देवेशः प्रसन्नोऽस्तु सदा मम। व्रतादस्माच्च यत्पापं सप्तजन्मकृतं मया॥२२॥
तत्सर्वं नाशमायातु स्थिरा मे चाऽस्तु सन्ततिः।
मनोरथास्तु सफलाः सन्तु भक्तिर्हरौ भवेत्॥२३॥
सतां समागमो भूयान्ममजन्मनिजन्मनि। इतिक्षमाप्यतान्विप्रान्प्रसाद्यचविसर्जयेत्॥२४॥

इस प्रकार से व्रती व्यक्ति होम सम्पन्न करने के पश्चात् भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करके उनको यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे। इसके पश्चात् व्रत करने वाला बछड़े के साथ दुग्धवती गौ को लाकर उसकी यथोचित पूजा करके यह धेनु किसी आत्मीय द्विज को प्रदान करें। तदनन्तर व्रतोपदेष्टा व्यक्ति सपत्नीक गुरु की पूजा वस्त्रालंकार से करके विप्रगण से इस वाक्य द्वारा क्षमा मांगे। प्रार्थना यह है—"हे विप्रगण! आपकी कृपा से मेरे ऊपर देवेश विष्णु सदा प्रसन्न रहें। इस व्रत के प्रभाव से मेरे सभी पाप नष्ट हो जायें। मेरी सन्तति परम्परा अटूट बनी रहे। हरि के प्रति मेरी अचला भक्ति हो। मेरे सभी मनोरथ सफल हों। मुझे प्रत्येक जन्मों से साधु-

संग मिलता रहे।" भक्तिमान् व्रती व्यक्ति ब्राह्मणगण से क्षमा प्रार्थना करे तथा उनको सन्तुष्ट करके विदा करे।।१९-२४।।

प्रतिमां तां गुरोर्दद्यात्सवस्त्रां मुनिपुङ्गव। ततः सुहृद्गुरुयुतः स्वयंभुञ्जीतभक्तिमान्।।२५।।
द्वादश्यां प्रतिबुद्धोऽसौ त्रयोदश्यां युतैः सुरैः।
दृष्टोऽर्च्चितश्चतुर्दश्यां तस्मात्पूज्यस्तिथाविह।।२६।।
पूजयेद्देवदेवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया। पराऽत्र पौर्णमास्यां तु यात्रा स्यात्पुष्करस्य तु।।२७।।
वरान्दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्वरूपोऽभवत्ततः। तस्यां दत्तं हुतंजप्तंतदक्षय्यफलंभवेत्।।२८।।

पूजा की गयी प्रतिमा को वस्त्र के साथ गुरुदेव को अर्पित करने के उपरान्त सुहृद् तथा गुरु के साथ स्वयं भोजन करना चाहिये। श्री हरि द्वादशी के दिन प्रबुद्ध होते हैं तथा त्रयोदशी के दिन देवगण को दर्शन प्रदान करते हैं। तदनन्तर देवगण द्वारा भगवान् चतुर्दशी को पूजित होते हैं। अतः गुरु की आज्ञा लेकर इन तिथियों पर हरि की स्वर्ण प्रतिमा की पूजा करनी चाहिये। पूर्णिमा के दिन हरि की परम उत्तम पुष्कर यात्रा होती है। श्री हरि ने देवगण को वर देकर इसी पूर्णिमा के दिन मत्स्यरूप धारण किया था। इसलिये पूर्णिमा तिथि पर जो कुछ दान, होम तथा जप आदि किया जाता है, वह अक्षय फलप्रद होता है।।२५-२८।।

कार्त्तिके मासि कर्तव्यो विधिरेषु हिनारद!। एवं यः कुरुतेसम्याक्कार्त्तिकस्यव्रतंनरः।।२९।।
यत्फलं तदवाप्नोति व्रतंकृत्वातुकार्त्तिके। तेधन्यास्तेसदापूज्यास्तेषांवैसफलोदयः।।३०।।
विष्णुभक्तिरता ये स्युः कार्त्तिके व्रतचारिणः।
देहस्थितानि पापानि विलयं यान्ति तत्क्षणात्।।३१।।
क्व यामोऽद्य भवत्येष यदूर्जव्रतकृन्नरः। इतिसर्वाणि पापानि रटन्तीह पुनःपुनः।।३२।।
तस्मात्कार्त्तिकमासस्य सदृशं नहि विद्यते। सर्वपापस्य दहने अग्नेः सदृशउच्यते।।३३।।
ऊर्जोद्यापनमाहात्म्यं शृणुयाच्छ्रद्धयाऽन्वितः।
श्रावयेद्वा पुमान्यस्तु विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्।।३४।।

हे वत्स नारद! कार्त्तिक मास में इन सब अनुष्ठान को करना चाहिये। जो मनुष्य भक्तिभाव के साथ इस प्रकार से सम्यक्तः कार्त्तिक व्रत करता है, उसे यथार्थ कार्त्तिक व्रत फल लाभ होता है। जो सब विष्णु भक्त मानव कार्त्तिकव्रत आचरण करते हैं, वे धन्य हैं। उनकी पूजा, उनकी समस्त क्रिया से फल का उदय होता है। उनके देह का पाप सद्यः विलीन हो जाता है। पाप समूह कार्त्तिक व्रती मानव को देखकर कहते हैं—"यह जो कार्त्तिक व्रती मेरे सामने आया है, अब हम कहां जायें?" तब पापसमूह पुनः-पुनः यही रटते हैं। इसलिये कार्त्तिक मास के समान पुण्यप्रद कुछ भी नहीं है। कार्त्तिक कलुषराशि को भस्म कर देने में समर्थ है। अतः कार्त्तिकमास को इस कार्य के लिये अग्निस्वरूप कहा गया। जो मानव श्रद्धापूर्वक कार्त्तिक व्रत का उद्यापन माहात्म्य सुनता है अथवा सुनाता है, उसे विष्णु सायुज्य की प्राप्ति होती है।।२९-३४।।

नारद उवाच

ऊर्जे व्रतोद्यापनादावशक्तः सिद्धिभाक्कथम्। कथंविमुच्यतेजन्तुर्दुःखसंसारसागरात्।।३५।।

देवर्षि नारद कहते हैं—जो व्यक्ति कार्त्तिक व्रत के उद्यापन में समर्थ नहीं है, उसे कैसे सिद्धिलाभ होगा? तथा प्राणीगण किस प्रकार से दुःखपूर्ण संसार को पार करेंगे।।३५।।

ब्रह्मोवाच

शृणुयादूर्जमाहात्म्यं नियमेन शुचिः पुमान्। उद्यापनफलम्प्राप्यविष्णुलोके सेच्चसः।।३६।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे व्रतोद्यापनविधिकथनंनाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।।३४।।

ब्रह्मा कहते हैं—पवित्र मानव नियमपूर्वक कार्त्तिक व्रत का वर्णन सुने तथा इस व्रत का उद्यापन माहात्म्य सुने। उसे इसी श्रवण फल से विष्णुलोक की प्राप्ति होगी।।३६।।

।।चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

वैकुण्ठ चतुर्दशी, त्रिपुरी पूर्णिमा विधान

ब्रह्मोवाच

वैकुण्ठाख्यचतुर्दश्यामाहात्म्यंतेवदाम्यहम्। बालखिल्यैपुराःप्रोक्तंसंक्षेपेणशृणुष्वतत्।।१।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! अब मैं वैकुण्ठ-चतुर्दशी महिमा वर्णन करता हूं। पूर्वकाल में बालखिल्य ऋषियों ने इसे कहा था। तुम उसे सुनो।।१।।

बालखिल्या ऊचुः

कार्त्तिकस्य सिते पक्षेचतुर्दश्यांसमागमत्। वैकुण्ठेशस्तु वैकुण्ठाद्वाराणस्यांकृतेयुगे।।२।।

रात्र्यां तुर्यांशशेषायां स्नात्वाऽसौ मणिकर्णिके।

गृहीत्वा हेमपद्मानां सहस्रम्वै ततोऽव्रजत्।।३।।

अतिभक्त्या पूजयितुं शिवया सहितंशिवम्। विधाय पूजां वैश्वेशींततःपद्मैरपूजयत्।।४।।

सहस्रसङ्ख्यां कृत्वादावेकनाम्ना ततः परम्। आरब्धं पूजनं तेन शिवस्तद्भक्तिमैक्षत।।५।।

एकं पद्मं पद्ममध्यान्निलीयाऽऽत्तं हरेण तु। ततः पूजितवान्विष्णुरेकोनंकमलंत्वभूत्।।६।।

इतस्ततस्तेन दृष्टं पद्मं तिष्ठति न क्वचित्। कमलेबुभ्रमो जातोऽथवा नामसु मे भ्रमः।।७।।

बालखिल्यगण कहते हैं—सत्ययुग के कार्त्तिकमास में शुक्ला चतुर्दशी के दिन वैकुण्ठेश प्रभु अपने

धाम से वाराणसी आये तथा रात्रि के अन्तिम चतुर्थ भाग में उन्होंने मणिकर्णिका में स्नान किया तथा १००० स्वर्ण कमलों से शिव एवं शिवा का पूजन करने गये। वैकुण्ठेश ने भक्तिपूर्वक पहले विश्वेश्वरी का पूजन किया तदनन्तर सहस्रपद्मार्पण का संकल्प लेकर शिव के सहस्र नाम में से एक-एक नाम का उच्चारण करके उन्होंने क्रमशः एक-एक कमल अर्पित करना प्रारंभ कर दिया। शिव ने उनकी भक्ति की परीक्षा के लिये उन पद्मों में से एक का हरण कर लिया। हरि ने पूजा करते यह पाया कि एक कमल कम हो गया। उन्होंने चतुर्दिक् दृष्टि दौड़ाया लेकिन उनको कहीं भी वह लुप्त पद्म नहीं मिला। वे सोचने लगे कि हो सकता है कि मुझे नामों को कहने में त्रुटि हो गई हो!।।२-७।।

क्षणं विचार्य स हरिर्न मैनामभ्रमोऽभवत्।
पद्मे चैव भ्रमो जातो विचार्यैवं पुनः पुनः॥८॥
सहस्रपद्मसङ्कल्पः पूजार्थन्तु कृतो मया। अर्च्यः कथं महादेव एकोनकमलैर्मया॥९॥
यद्यानेतुंगमिष्यामि भङ्गःस्यादासनस्य तु। अतःपरंकिंविधेयंचिन्तोद्विग्नोहरिस्तदा॥१०॥
एकः प्रकार उत्पन्नोहृदयेऽस्यमुनीश्वराः!। पुण्डरीकाक्षइत्येवं मां वदन्ति मुनीश्वराः॥११॥
नेत्रं मे पद्मसदृशं पद्मार्थे त्वर्पयाम्यहम्। इति निश्चित्य मनसा दत्त्वा तर्जनिकां सतु॥१२॥
नेत्रमध्यात्तदुत्पाट्य महादेवस्तु पूजितः। ततो महेश्वरस्तुष्टो वाक्यमेतदुवाच ह॥१३॥

हरि ने क्षणकाल चिन्तन करके यह उपलब्ध किया कि नाम में उनसे भ्रम नहीं हुआ है। पद्म में ही संख्या कम है। उन्होंने विचार से निश्चय किया कि उनको पद्म में ही भ्रम हो गया। उन्होंने स्थिर होकर यह निर्णय लिया कि मैं निश्चित रूपेण १००० पद्मों से शिवपूजा करूंगा, मैंने यह निश्चय किया था। अब मैं ९९९ पद्म से कैसे उनकी पूजा करूंगा? यदि मैं अब एक कमल जुटाने जाता हूं, तब आसनच्युत होना पड़ेगा। अब क्या करूं?" श्री हरि यह चिन्तन करते उद्विग्न हो गये। हे मुनीश्वरगण! तब उनके हृदय में एक बुद्धि उत्थित हो उठीं। उन्होंने निश्चय किया कि "मुनिगण मुझे कमलनयन कहते हैं। मेरे नेत्र कमल ऐसे हैं। अतएव मैं पद्म की जगह अपने नेत्र ही प्रदान करूंगा।" हरि ने यह निश्चय किया तथा अपने नेत्र में तर्जनी उंगली धंसाकर एक नेत्र उखाड़ा और उससे महेश्वर का पूजन सम्पन्न किया। इससे महादेव सन्तुष्ट होकर श्री हरि से कहने लगे।।८-१३।।

महादेव उवाच

त्वत्समो नास्ति मद्भक्तस्त्रैलोक्ये सचराचरे।
राज्यं दत्तं त्रिलोक्यास्ते भव त्वं लोकपालकः॥१४॥
अन्यं वरय भद्रं ते वरं यन्मनसेप्सितम्। अवश्यमेव दास्यामिनात्रकार्या विचारणा॥१५॥
मद्भक्तिं तु समालम्ब्य ये द्विषन्ति जनार्दनम्।
मे मद् द्वेष्या नरा विष्णो व्रजेयुर्नरकं ध्रुवम्॥१६॥

महादेव कहते हैं—हे हरि! समस्त त्रैलोक्य में आपके समान मेरा भक्त अन्य नहीं है। मैं आपको

त्रैलोक्यराज्य प्रदान करूंगा। आप अब लोकपालक हो जायें। हे भद्र! आपको यदि अन्य वर चाहिये तब आप प्रार्थना करिये। मैं उसे अवश्य प्रदान करूंगा। इसमें सन्देह नहीं है। जो केवल मेरे प्रति भक्ति करके विष्णु के प्रति विद्वेष करते हैं, वे मेरे शत्रु हैं। उनका नरकगमन निश्चित जानें।।१४-१६।।

विष्णुरुवाच

त्रैलोक्यरक्षाकरणं ममादिष्टं महेश्वर। दुर्मदाश्च महासत्त्वा दैत्याः मार्याः कथं मया।।१७।।

विष्णु कहते हैं—हे महेश्वर! आपने मुझे त्रैलोक्य के कार्यार्थ नियुक्त किया है, लेकिन मैं उन महापराक्रमी दुर्मद दैत्यों का नाश कैसे करूंगा?।।१७।।

शिव उवाच

एतत्सुदर्शनं चक्रं महादैत्यनिकृन्तनम्। गृहाणभगवन्विष्णो मयातुभ्यं निवेदितम्।।१८।।
अनेन सर्वदैत्यानां भगवन्कदनं कुरु। एवं चक्रं हरेर्दत्त्वा ततो वचनमब्रवीत्।।१९।।

शिव कहते हैं—"हे भगवान् विष्णु! मैं आपको यह सुदर्शन प्रदान करता हूं। यह चक्र महादैत्यों का उच्छेद करने में समर्थ है। आप इस चक्र से महादैत्यों को पराजित करिये।" इस प्रकार शिव ने यह चक्र देकर पुनः कहा।।१८-१९।।

शिव उवाच

वर्षे च हेमलम्बाख्ये मासे श्रीमति कार्त्तिके। शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामरुणाभ्युदयम्प्रति।।२०।।
महादेवतिथै ब्राह्मे मुहूर्ते मणिकर्णिके। स्नात्वा वैश्वेश्वरं लिङ्गं वैकुण्ठादेत्यपूजितम्।।२१।।
सहस्त्रकमलैस्तस्माद्भविष्यतिममप्रिया। विख्याता सर्वलोकेषुवैकुण्ठाख्याचतुर्दशी।।२२।।
अन्यं वरं प्रयच्छामि शृणुविष्णोवचोमम। पूर्वरात्रेषु ते पूजा कर्तव्यासर्वजातिभिः।।२३।।
उपवासं दिवाकुर्यात्सायंकाले तवार्चनम्। पश्चान्ममार्चनंकार्यमन्यथानिष्फलम्भवेत्।।२४।।
ग्राह्या तु हरिपूजायां रात्रिव्याप्ता चतुर्दशी। अरुणोदयवेलायां शिवपूजां समाचरेत्।।२५।।
सहस्त्रकमलैर्विष्णुरादौ यैः पूजितोनरैः। पश्चाच्छिवः पूजितश्चेज्जीवन्मुक्तास्तएवहि।।२६।।

शिव कहते हैं—हे विष्णु! आपने वैकुण्ठ से आकर हेमलम्ब नामक वर्ष के श्रीमान् कार्त्तिक मास में महादेव की तिथि शुक्ला चतुर्दशी के दिन अरुणोदय के समय ब्राह्म मुहूर्त्त में मणिकर्णिका में स्नान किया तथा १००० कमल से मेरे विश्वेश्वर लिंग की पूजा किया। यह तिथि मेरी प्रिय वैकुण्ठ चतुर्दशी के नाम से लोक विख्यात होगी। हे विष्णु! आप मेरा वचन सुनें। मैं एक और वर देता हूं। सभी जाति वाले इस पूजा को करें। सभी पहले आपकी पूजा करके तब मेरी पूजा करें। पूजकगण दिन में उपवासी रहकर पूर्वरात्रि के सायं ही आपकी पूजा करें। तब मेरी पूजा हो। इसके विपरीत जो पूजा करेगा, उसका पूजन निष्फल कहा जायेगा। हरिपूजा के सम्बन्ध में रात्रिव्यापिनी चतुर्दशी ही ग्राह्य मानें। अरुणोदय काल में शिवपूजा करनी चाहिये। जो मानव वैकुण्ठचतुर्दशी के समय दिन में १००० कमलों से हरि की पूजा करने के उपरान्त मेरी पूजा करते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं। इसमें सन्देह नहीं।।२०-२६।।

सायं स्नात्वा पञ्चनदे बिन्दुमाधवमर्चयेत्।
स्नात्वा यो विष्णुकाञ्च्याम्वाऽनन्तसेनं समर्चयेत्।।२७।।
रुद्रकाञ्च्यां ततः स्नात्वाप्रणवेशंसमर्चयेत्। आदौस्नात्वा वह्नितीर्थेजयेन्नारायणंततः।।२८।।
रेतोदके ततः स्नात्वा केदारेशंसमर्चयेत्। आदौ स्नात्वासूर्यपुत्र्यांवेणीमाधवमर्चयेत्।।२९।।
जाह्नव्याञ्च ततः स्नात्वा सङ्गमेशं प्रपूजयेत्।
सर्वाः श्रियस्तस्य वश्याः सत्यम्विष्णो! मयोदितम्।।३०।।

मनुष्य सायंकाल में पञ्चनद में स्नानोपरान्त विष्णु पूजन करें (पंचनद-वाराणसी का पंचगंगा घाट) तथा वहां विन्दुमाधव की पूजा करें अथवा विष्णुकाञ्ची में स्नानोपरान्त अनन्तसेन की सम्यक् पूजा करें, तदनन्तर रुद्रकाञ्ची में स्नान करके प्रणवेश की पूजा करें। तदनन्तर वह्नितीर्थ में स्नान करके केदारेश्वर की सम्यक् पूजा करें। तदनन्तर सूर्यपुत्री यमुना में स्नान करके वेणीमाधव की अर्चना करें। तत्पश्चात् जाह्नवी में स्नान करके संगमेश की पूजा करनी चाहिये। समस्त समृद्धि उस व्यक्ति के वश में हो जाती है। हे विष्णु! यह मेरा वाक्य होने के कारण सत्य है।।२७-३०।।

एवं तस्मै वरान्दत्त्वा ह्यन्तर्धानं ययौ शिवः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूज्यौहरिहरावुभौ।।३१।।
कलौदशसहस्राणि विष्णुस्त्यजतिमेदिनीम्। तदर्द्धं जाह्नवीतोयं तदर्द्धं ग्रामदेवताः।।३२।।
कार्त्तिक्यां पूर्णिमायांतुकुर्यात्त्रैपुरमुत्सवम्। दीपोदेयोऽवश्यमेवसायंकालेशिवालये।।३३।।
त्रिपुरोनामदैत्येन्द्रः प्रयागे तप आस्थितः। तपसा तस्य सन्तुष्टो ददौ ब्रह्मावरंपरम्।।३४।।

भगवान् शिव विष्णु को यह वर देकर अन्तर्हित् हो गये। तत्पश्चात् सर्वप्रयत्न से हरि एवं शिव, दोनों ही पूज्य हैं। विष्णुदेव कलिकाल के १०००० वर्ष व्यतीत हो जाने पर पृथिवी का त्याग करेंगे। जाह्नवी जल उसके पांच हजार वर्ष पश्चात् पृथिवी का त्याग करेगा। ग्राम्य देवता कलि के १७ $\frac{१}{२}$ हजार वर्ष व्यतीत होने पर पृथिवी का त्याग कर देंगे। कार्त्तिक मासीय पूर्णिमा के दिन त्रिपुरोत्सव मनाये। इस दिन सायंकाल शिवालय में अवश्यमेव दीपदान करें। दैत्येन्द्र त्रिपुर ने प्रयाग में तप किया था। ब्रह्मा उसके तप से प्रसन्न होकर आये तथा त्रिपुरासुर को वर दिया।।३१-३४।।

देवासुरमनुष्येभ्यो न ते मृत्युर्भविष्यति।
इति लब्धवरो दैत्यो विश्वकर्मविनिर्मितम्।।३५।।
त्रिपुराख्यं विमानं तमारुह्य भुवनत्रयम्। यदा वै पीडयामास तदा देवैः स्तुतो हरः।।३६।।
त्रिपुरं घातयामास बाणेनैकेन शत्रुहा। कार्त्तिक्यां पूर्णिमायां तु सर्वेदेवाःप्रतुष्टुवुः।।३७।।
तस्मिन्दिने सर्वदेवैर्दीपा दत्ता हराय च। सर्वथैव प्रदेयाश्च दीपास्तु हरतुष्टये।।३८।।

ब्रह्मा ने त्रिपुर से कहा—"तुम्हें सुर-असुर नहीं मार सकेंगे।" असुर ने यह वर पाकर विश्वकर्मा से एक पुरी बनवाया। यह पुरी थी त्रिपुर! यह पुर विमान ऐसा गतिमान् था। असुर त्रिपुर इस विमानरूपी पुर पर बैठकर त्रिभुवन को पीड़ित करने लगा। तब देवगण के स्तव से सन्तुष्ट होकर शत्रुसंहारक हरि ने उस असुर का एक बाण से वध कर दिया। कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन यह कार्य हुआ था। देवगण ने इस दिन शिव के उद्देश्य से दीपदान तथा उनकी स्तुति का गान किया था। इसलिये आशुतोष देव के सन्तोषार्थ इस दिन दीप जलायें।।३५-३८।।

विंशतिः सप्तशतकाः सहिता दीपवर्तयः। ददेद्दीपं पूर्णिमायां सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३९॥
पौर्णमास्यां तु सन्ध्यायां कर्तव्यस्त्रिपुरोत्सवः। दद्यादनेनमन्त्रेणप्रदीपांश्चसुरालये॥४०॥
कीटाः पतङ्गा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः।
दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवन्तु नित्यं श्वपचा हि विप्राः॥४१॥
कार्यस्तस्मात्पौर्णमास्थां त्रिपुराय महोत्सवः।
कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कुर्यात्स्वामिदर्शनम्॥४२॥
सप्तजन्म भवेद्विप्रोधनाढ्यो वेदपारगः। अत्र कृत्वा वृषोत्सर्गं नक्ताच्छैवपुरं व्रजेत्॥४३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे वैकुण्ठचतुर्दशीत्रिपुरीपूर्णिमाःव्रतविधानकथनंनाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।।३५।।

अब दीपदान विधि कहता हूं। ७२० दीपबत्ती जलाकर दीप प्रदान करें। पूर्णिमा के दिन एवंविध दीपदान द्वारा समस्त दुरित दूर हो जाते हैं। यही है त्रिपुरोत्सव। कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन इस मन्त्र से देवालय में उत्सव करें। मन्त्र है—"कीट, पतंग, मशक तथा वृक्ष पर और जल-स्थल में जितने प्राणी निवास करते हैं, वे दीपदर्शन करके जन्म ग्रहण न करें (आवागमन मुक्त हों) तथा चाण्डाल भी इस दीपदान को प्रदान करके ब्राह्मण जन्म प्राप्त करें।"

जो मानव कार्त्तिक में कृत्तिकायुक्त पौर्णमासी के दिन त्रिपुरदेव के उद्देश्य से दीपदानोत्सव करके उनका दर्शन करते हैं, वे सात जन्म तक धनी तथा वेदज्ञ ब्राह्मण होते हैं। इस पूर्णिमा के दिन जो रात्रि में वृषोत्सर्ग अथवा रात्रिव्रत (नक्तव्रत) करता है, वह शिवलोक प्राप्त करता है।।३९-४३।।

।।पञ्चत्रिंश अध्याय समाप्त।।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

तिथित्रय माहात्म्य, पुराण श्रवण महिमा

ब्रह्मोवाच

यास्तिस्त्रस्तिथयः पुण्या अन्तिके शुक्लपक्षके। कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र! पूर्णिमान्ताः शुभावहाः॥१॥
अतिपुष्करिणीसञ्ज्ञासर्वपापक्षयावहा। कार्त्तिके मासि सम्पूर्णंयोवैस्नानं करोतिह॥२॥
तिथिष्वेतासुसःस्नानात्पूर्णमेवफलं लभेत्। सर्वेवेदास्त्रयोदश्यांगत्वाजन्तून्पुनन्तिहि॥३॥
चतुर्दश्यां सयज्ञाश्च देवा जन्तून्पुनन्ति हि।
पूर्णिमायां सुतीर्थानि विष्णुना संस्थितानि हि॥४॥

ब्रह्मघ्नान्वासुरापान्वासर्वाञ्जन्तून्पुनन्तिहि। उष्णोदकेनयःस्नायात्कार्त्तिक्यादिदिनत्रये।।५।।
रौरवं नरकं याति यावदिन्दाश्चतुर्दश। आमासनियमाशक्तः कुर्यादेतद्दिनत्रये।।६।।
तेन पूर्णफलं प्राप्यमोदते विष्णुमन्दिरे। यो वै देवान्पितृन्विष्णुंगुरुमुद्दिश्यमानवः।।७।।
न स्नानादि करोत्यद्धा स याति नरकं ध्रुवम्। कुटुम्बभोजनंयस्तुगृहस्थस्तुदिनत्रये।।८।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्रेन्द्र! कार्त्तिक शुक्ला त्रयोदशी से पूर्णिमा तक तीन तिथियों के विषय में मैंने कहा। ये सभी तिथियां शुभप्रदा हैं। इसी तरह से अन्तिक पुष्करिणी नामक पुष्प पुष्करिणी भी समस्त कलुषों की नाशक है। मानव सम्पूर्ण कार्त्तिक मास में स्नान करके जो फललाभ करता है, पूर्वोक्त तिथित्रय में भी उसमें स्नान करके उतना ही पुण्य प्राप्त कर लेता है। त्रयोदशी के दिन इस पुष्करिणी में सर्ववेद, चतुर्दशी के दिन समस्त यज्ञ तथा देवता, पूर्णिमा के दिन समस्त तीर्थ तथा श्री हरि इस अन्तिकपुष्करिणी में स्थित रहकर ब्रह्मघ्न तथा सुरापायी को भी पवित्र कर देते हैं। जो मानव कार्त्तिक की इस तिथियों (इन तीन तिथि के दिन) गर्म जल से स्नान करते हैं, वे तब तक नरक में रहते हैं, जब तक चतुर्दश इन्द्रों का काल समाप्त नहीं हो जाता। वैसे तो समस्त कार्त्तिक मास में उष्णजल से स्नान वर्जित है, तथापि अशक्त व्यक्ति इन तीन तिथियों पर उष्ण जल स्नान न करे। जो अशक्त व्यक्ति इन तीन दिन उष्ण जल स्नान का वर्जन करता है, वह समस्त फललाभ करके विष्णुमन्दिर (विष्णुलोक) लाभ करके मुदित होता है। जो मानव देव-पितृ-विष्णु के उद्देश्य से स्नानादि नहीं करता, वह निश्चित रूप से नरक जाता है। इन तीन तिथियों पर आत्मीयजन को भोजन कराना चाहिये।।१-८।।

सर्वान्पितृन्समुद्धृत्य स याति परमम्पदम्। गीतापाठं तु यः कुर्यादन्तिमेचदिनत्रये।।९।।
दिनेदिनेऽश्वमेधानां फलमेति न संशयः। सहस्रनामपठनं यः कुर्यात्तु दिनत्रये।।१०।।
न पापैर्लिप्यते क्वाऽपिपद्मपत्रमिवाऽम्भसा। देवत्वंमनुजैःकैश्चित्कैश्चित्सिद्धत्वमेवच।।११।।
तस्यपुण्यफलं वक्तुं कः शक्तोदिविवाभुवि। योवैभागवतंशास्त्रंश्रृणोतिचदिनत्रयम्।।१२।।
कश्चित्प्राप्तो ब्रह्मभावो दिनत्रयनिषेवणात्। ब्रह्मज्ञानेन वा मुक्तिः प्रयागमरणेन वा।।१३।।
अथ वा कार्त्तिके मासि दिनत्रयनिषेवणात्। कार्त्तिके हरिपूजांतु यःकरोतिदिनत्रये।।१४।।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि। कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र! सर्वमन्त्यादिनत्रये।।१५।।

वह व्यक्ति पितृगण का उद्धार करके परमपद प्राप्त करता है। जो मानव पूर्वोक्त तीन दिन गीता पाठ करता है, उसे नित्यप्रति अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। इसमें सन्देह नहीं है। जो मानव इन तीन दिन सहस्रनाम का पाठ करता है, वह उस प्रकार कभी पापलिप्त नहीं होता, जैसे कमलपत्र पर जल का कोई प्रभाव नहीं होता। अधिक क्या कहूं? न जाने कितने लोगों ने यह व्रत करके देवत्व पाया तथा न जाने कितने लोगों ने इस व्रत के प्रभाव से सिद्धत्व लाभ किया! इन तीन दिन जो मानव भागवत ग्रंथ को सुनता है, उसके फल को इस पृथिवी तथा स्वर्ग में कौन कह सकेगा? अनेक लोगों ने इन दिनत्रय का सेवन करके ब्रह्मभाव लाभ किया। ब्रह्म ज्ञान से किंवा प्रयाग मरण से जो मुक्तिलाभ होता है, कार्त्तिक के इन दिनत्रय सेवन से उसी लाभ को व्यक्ति प्राप्त कर सकता है। जो कार्त्तिक के इस दिनत्रय में हरिपूजन करता है सैकड़ों कोटिकल्पों में भी उसका पुनर्जन्म नहीं होता। हे विप्रेन्द्र! कार्त्तिक मास में त्रयोदशी आदि अन्त के तीन दिन अतीव पवित्र हैं।।९-१५।।

पुण्यं तत्राऽपि वैशेष्यंराकायांवर्ततेऽनघ। प्रातःकालेसमुत्थायशौचंस्नानादिकंचरेत्॥१६॥
समाप्य सर्वकर्माणि विष्णुपूजां समाचरेत्।
उद्याने वा गृहे वाऽपि कार्त्तिक्यां विष्णुतत्परः॥१७॥
मण्डपं तत्र कुर्वीतकदलीस्तम्भमण्डितम्। चूतपल्लवसम्वीतमिक्षुदण्डैःसुमण्डितम्॥१८॥
चित्रवस्त्रैःस्वलङ्कृत्य तत्र देवं प्रपूजयेत्। चूतपल्लवपुष्पाढ्यैः फलाद्यैः पूजयेद्धरिम्॥१९॥

इनमें भी पूर्णिमा अत्यन्त पवित्र है। इस दिन प्रभात के समय उठकर शौच तथा स्नानादि करना चाहिये। तत्पश्चात् समस्त नित्यक्रिया करके सम्यक्तः विष्णुपूजन करें। उद्यान अथवा गृह में विष्णु तत्पर मनुष्य कार्त्तिक मास में एक मण्डप निर्माण करे तथा कदली स्तम्भ से उस मण्डल को विमण्डित करना चाहिये। तदनन्तर इसे आम्रपल्लव तथा ईख से सजाये और विचित्र वस्त्रों से अलंकृत करके उस मण्डप में मुकुलयुक्त आम्रपल्लव तथा फल आदि से श्री हरि की पूजा करें।।१६-१९।।

श्रृणुयादूर्जमाहात्म्यं नियमेनशुचिःपुमान्। सम्पूर्णमथवाऽध्यायमेकश्लोकमथाऽपिवा॥२०॥
मुहूर्तं वाऽपि श्रृणुयात्कथांपुण्यांदिनेदिने। यदिप्रतिदिनंश्रोतुमशक्तःस्यात्तुमानवः॥२१॥
पुण्यमासेऽथवा पुण्यतिथौ संश्रृणुयादपि। तेनपुण्यप्रभावेन पापान्मुक्तो भवेन्नरः॥२२॥
पुराणज्ञः शुचिर्दक्षः शान्तो विगतमत्सरः।
साधुः कारुणिको वाग्मी वदेत्पुण्यां कथां सुधीः॥२३॥
व्यासासनं समारूढो यदा पौराणिको भवेत्।
आसमाप्तेः प्रसङ्गस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित्॥२४॥
न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते। देशे न द्यूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः॥२५॥

तत्पश्चात् मनुष्य पवित्र होकर नियमपूर्वक कार्त्तिक माहात्म्य श्रवण करे। सम्पूर्ण हो, किंवा एक अध्याय अथवा एक श्लोक ही हो, अथवा मुहूर्त्तमात्र हो, मनुष्य नित्य प्रति कार्त्तिक माहात्म्य की पुण्यकथा अवश्य श्रवण करे। यदि कोई मानव नित्य प्रति कार्त्तिक मास माहात्म्य अशक्तता के कारण न सुन सके, तब वह इस पुण्य मास में अथवा पुण्यतिथियों पर इसका श्रवण करने मात्र से वह पापरहित हो जाता है। इस पुण्य कार्त्तिक माहात्म्य-कथा को कहने वाला व्यक्ति पुराणवेत्ता, शुद्ध, दक्ष, शान्त, मत्सररहित, कारुणीक, वाग्मी, साधु, सुधी व्यक्ति हो। पुराणज्ञ व्यासासन पर बैठकर जब तक एक प्रसंग प्रारंभ से अन्त तक न कह दिया जाये, तब तक बीच में उसे न छोड़े। तब वह पुराणज्ञ किसी को भी नमस्कार न करें। वह पुराणवेत्ता दुर्जनयुक्त, शूद्र किंवा श्वापदावृत्त देश में अथवा द्यूत गृह में (जहां जूआ हो) पुण्यपुराण कथा कभी न कहे।।२०-२५।।

श्रद्धाभक्तिसमायुक्तानाऽन्यकार्येषुलालसाः। वाग्यताःशुचयोदक्षाःश्रोतारःपुण्यभागिनः॥२६॥
अभक्ता ये कथां पुण्यां श्रृण्वन्ति मनुजाऽधमाः।
तेषां पुण्यफलं नाऽस्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि॥२७॥
पौराणिकञ्च मासान्ते पूजयेद्भक्तितत्परः। गन्धमाल्यैस्तथा वस्त्रैरलङ्कारैर्धनेन च॥२८॥

जहां वाक्यत् (मौनी), श्रद्धा-भक्ति समन्वित, अन्य कार्य के प्रति इच्छा न रखने वाले, पवित्र, दक्ष, पुण्यशील श्रोता हों, वहां पौराणिक पुराणवाणी कहनी चाहिये। जो भक्तिरहित मानवाधम पुण्यप्रद पुराणकथा सुनते हैं, उनको पुण्यफल होता ही नहीं, परन्तु उनका जन्म क्लेश में ही व्यतीत होता है। पुराणपाठ के मासान्त दिन (जब वह समाप्त हो रहा हो) पर भक्ति-भाव के साथ गन्ध-माला-वस्त्र-अलंकार-धन से पौराणिक की पूजा करें।।२६-२८।।

श्रृण्वन्ति च कथां भक्त्या न दरिद्रा न पापिनः॥२९॥

कथायांकीर्त्यमानायांयेगच्छन्त्यन्यतोनराः। भोगान्तरेप्रणश्यन्तितेषांदाराश्चसम्पदः॥३०॥

उच्चासनसमारूढो न नरः प्रणतो भवेत्। विषवृक्षस्तथा स्वापे वनेचाऽजगरोभवेत्॥३१॥

कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये नराः।
कोट्यब्दनरकान्भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः॥३२॥

ये श्रावयन्ति मनुजाःकथांपौराणिकींशुभाम्। कल्पकोटिशतंसाग्रंतिष्ठन्तिब्रह्मणःपदे॥३३॥

आसनार्थे प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः। कम्बलाजिनवासांसि मञ्चं फालकमेव वा॥३४॥

परिधानीयवस्त्राणि प्रयच्छन्ति च ये नराः। भूषणादि प्रयच्छन्ति वसेयुर्ब्रह्मसद्मनि॥३५॥

इस प्रकार से पौराणिक कथा को भक्तिपूर्वक सुनने वाले कभी दरिद्र अथवा पातकी नहीं होते। पुराण कथाकाल में जो लोग लोकभोग की कामना से अन्यत्र जाते हैं, उनकी पत्नी तथा सम्पदा का नाश हो जाता है। कथाकाल में उच्चासन समारूढ़ व्यास यदि किसी को प्रणाम करते हैं, किंवा व्यास गद्दी पर शयन करते हैं, तब वे विषवृक्ष किंवा अजगर की योनि में जन्म लेते हैं। पुराणवर्णन के समय जो कोई भी विघ्न करता है, वह करोड़ों वर्ष नरकभोग करके अन्त में ग्राम्य शूकर होकर जन्म लेता है। जो मानव पुण्यमयी पुराण कथा सुनता है, वह शतकोटि कल्पपर्यन्त ब्रह्मपद में स्थित हो जाता है। जो पुराणज्ञ (व्यास) हेतु आसन के लिये कम्बल, कृष्णमृगचर्म, वस्त्र, मञ्च अथवा फलक प्रदान करते हैं तथा जो पुराणज्ञ को परिधानार्थ वस्त्र एवं भूषण दान करते हैं, वे ब्रह्मसदन में निवास करते हैं।।२९-३५।।

वाचकेपरितुष्टे तु तुष्टाः स्युःसर्वदेवताः। अतःसन्तोषयेद्भक्त्याभक्तिश्रद्धान्वितःपुमान्।
तस्य पुण्यफलं पूर्णं भवत्येव न संशयः॥३६॥

यत्फलं सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम्। सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं विन्दते नरः॥३७॥

पुराणवाचक की सन्तुष्टि से सभी देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं। इसलिये पुरुष भक्ति तथा श्रद्धा से समन्वित होकर पुराणवाचक का सन्तोष साधन करें। ऐसा करने से उसे सम्पूर्ण फललाभ होता है। इसमें संशय नहीं है। समस्त यज्ञ तथा दान का जो पुण्यफल कहा गया है, मानव मात्र एक बार पुराण सुनकर वह समस्त फललाभ कर लेता है। विशेषतः कलिकाल में पुराणश्रवण के अतिरिक्त मानव हेतु श्रेष्ठ धर्म अथवा उत्तम मुक्तिपथ अन्य है ही नहीं।।३६-३७।।

कलौ युगे विशेषेण पुराणश्रवणादृते। नास्ति धर्मःपरः पुंसांनास्ति मुक्तिपथःपरः।
पुराणश्रवणाद्विष्णोर्नास्ति सङ्कीर्तनात्परम्॥३८॥

य एतदूर्जमाहात्म्यं श्रृणुयाच्छ्रावयेदपि। स तीर्थराजबदरीगमनस्य फलं लभेत्।
सर्वरोगापहं सर्वपापनाशकरं शुभम्॥३९॥

श्रुत्वा चैकपदे यो वै अगम्यागमने रतः। कन्यास्वस्त्रोर्विक्रयिणमुभयंतुविमोचयेत्।।४०।।

माहात्म्यमेतदाकर्ण्य पूजयेद्यस्तु पाठकम्।

गोभूहिरण्यवस्त्रैश्च विष्णुतुल्यो यतो हि सः।।४१।।

धर्मशास्त्रं पुराणञ्च वेदविद्यादिकञ्च यत्। पुस्तकं वाचकायैव दातव्यंधर्ममिच्छता।।४२।।

पुराणविद्यादातारो ह्यनन्तफलभोगिनः।।४३।।

इदंयःपठतेभक्त्याश्रुत्वाचैवाऽवधारयेत्। मुच्यतेसर्वपापेभ्योविष्णुलोकं स गच्छति।।४४।।

न कस्याऽपीदमाख्येयं श्रद्धाहीनाय दुर्मतेः।।४५।।

विशेष रूप से कलिकाल में पुराण श्रवण से श्रेष्ठ धर्म अथवा उत्तम मुक्तिमार्ग अन्य है ही नहीं। पुराण श्रवण तथा विष्णु नाम कीर्त्तन से उत्तम धर्म कुछ नहीं होता। अतएव जो कार्त्तिक माहात्म्य को सुनते हैं अथवा सुनाते हैं, वे तीर्थराज बदरीगमन का फललाभ करते हैं। शुभपुण्यप्रद कार्त्तिक माहात्म्य सभी रोगों का हरण करने वाला तथा सभी पापों का नाशक है। अगम्यागमनरत किंवा कन्या-भगिनी को बेचने वाला मनुष्य भी एकमात्र यह माहात्म्य कथा को सुनकर पापरहित हो जाता है। जो मानव इस पुण्य माहात्म्य को सुनता है तथा गौ, भूमि, स्वर्ण द्वारा पुराणवाचक की पूजा करता है, वह विष्णु तुल्य है। इसमें सन्देह नहीं है। धर्मेच्छु मानव धर्मशास्त्र-पुराण-वेदविद्यादि की पुस्तक पुराणवाचक को प्रदान करे। पुराणविद्या ज्ञाता अनन्त फल का भागी होता है। जो भक्ति के साथ इसका श्रवण करता है, सुनकर इसकी अवधारणा करता है, वह सर्वपापरहित होकर विष्णुलोक प्राप्त करता है। किसी श्रद्धाहीन, दुर्मति मानव से यह माहात्म्य कभी न कहें।।३८-४५।।

अपूजयित्वा गुरुमग्रबुद्ध्या धर्मप्रवक्तारमनन्यबुद्धिः।

भुक्त्वा तु भोगान्नरकेषु चैव ततो हि जन्मान्तरदुःखभोगी।।४६।।

तस्मात्सम्पूजयेद्भक्त्या गुरुं तत्त्वावबोधकम्।

माहात्म्यस्य च लेशोऽयं तव चोक्तो मयाऽनघ!।।४७।।

न शक्यते हि सम्पूर्णं वक्तुं वर्षशतैरपि। पुरा कैलासशिखरे पार्वत्यैप्रोक्तवाञ्छिवः।।४८।।

कार्त्तिकस्य तु माहात्म्यं यावद्वर्षशतं वदन्। तथापि नान्तमगमदशक्तो विरराम ह।।४९।।

पुत्रार्थीचधनार्थीचराज्यार्थीस्वफलंलभेत्। किमत्रबहुनोक्तेनमोक्षार्थीमोक्षमाप्नुयात्।।५०।।

अपने को श्रेष्ठ मानकर जो मनुष्य गुरु की पूजा नहीं करता तथा साधारण मानव मानकर जो धर्मवक्ता की पूजा नहीं करता, वह नरकगामी होता है तथा अनेक दुःखभोग करके जन्मान्तर में दुःख प्राप्त करता है। अतएव तत्वज्ञान बोधक गुरु की पूजा भक्तिपूर्वक करनी चाहिये। हे अनघ! मैंने तुमसे कार्त्तिक माहात्म्य का लेशमात्र ही वर्णन किया है। सम्पूर्ण माहात्म्य का वर्णन मैं सैकड़ों वर्ष में भी नहीं कर सकता! पूर्वकाल में पार्वती से शिव ने यह कहा था। शिव इस कार्त्तिक माहात्म्य का वर्णन १०० वर्ष पर्यन्त कहकर भी समाप्त नहीं कर सके। तब वे अशक्त होकर इसे कहने से विरत हो गये। इस माहात्म्य को सुनने वाला पुत्रार्थी पुत्र, धनार्थी एवं राज्यार्थी अपना-अपना अभीष्ट प्राप्त करते हैं। अधिक क्या कहूं, जो मोक्षार्थी होकर इसे सुनते हैं, उनको मोक्षलाभ हो जाता है।।४६-५०।।

सूत उवाच

इत्युक्तो ब्रह्मणाचैव नारदः प्रेमनिर्भरः। भूयोभूयो नमस्कृत्य ययौ यादृच्छिकोमुनिः॥५१॥
कथितं शङ्करेणाऽपि पुत्राय हितकाम्यया। पितुस्तद्वाक्यमाकर्ण्यषण्मुखोहर्षनिर्भरः॥५२॥
कृष्णेन सत्यभामायैकार्त्तिकस्यचवैभवः। कथितस्तेनसन्तुष्टासत्यावतमथाऽकरोत्॥५३॥
ऋषयो बालखिल्येभ्यः श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम्।
ऊर्जव्रतपरा जातास्तस्मादूर्जोऽतिवल्लभः॥५४॥
अधीत्यसर्वशास्त्रणिपयःसारमिवोद्धृतम्। नाऽनेनसदृशंशास्त्रं विष्णुप्रीतिकरंशुभम्॥५५॥

सूत जी कहते हैं—देवर्षि नारद ने ब्रह्मा से यह सब सुना। सुनकर वे प्रेमपूरित हो गये तथा बारम्बार उनको प्रणाम करके अपने गन्तव्य की ओर चले गये। निखिल लोक की हित कामना से शंकर ने अपने पुत्र कार्त्तिकेय से यह माहात्म्य कहा था। सुनकर कार्त्तिकेय हर्ष में भर गये। कृष्ण ने सत्यभामा से कार्तिक माहात्म्य कहा था। सत्यभामा तब कृष्ण के वर्णन से सन्तुष्ट होकर कार्त्तिक व्रताचरण करने लगीं। ऋषगण भी बालखिल्यों से इस उत्तम माहात्म्य को सुनकर कार्त्तिक व्रताचरण में तत्पर हो गये। तभी से कार्त्तिक व्रत को श्रेष्ठता की प्राप्ति हो गयी। व्यास ने भी सभी शास्त्रों को सुनकर तथा अध्ययन करके उसके साररूपेण विष्णु के इस माहात्म्य का उसी प्रकार से उद्धार किया जैसे दुग्ध के साररूप नवनीत को निकालते हैं। अतएव विष्णु को प्रसन्न करने वाला ऐसा शुभ शास्त्र है ही नहीं॥५१-५५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वातानृषीनर्वान्सूतोवैधर्मवित्तमः। विररामततस्तेतुपूजाञ्चचक्रुस्तदाऽस्यच॥५६॥
ते पुनः स्वाश्रमङ्गत्वा हृष्टास्ते परमर्षयः। यथा सूतेनोपदिष्टं तथा चक्रुर्व्रतं शुभम्॥५७॥
अनेनविधिनायेवैकुर्वन्तिकार्त्तिकव्रतम्। ते सर्वपापनिर्मुक्तागच्छन्तिविष्णुमन्दिरम्॥५८॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे पुष्करिणीसञ्ज्ञिकान्तिमतिथित्रयमाहात्म्यकथनपूर्वकंपुराणश्रवणमहिवर्णनंनाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

॥समाप्तमिदंश्रीकार्त्तिकमासमाहात्म्यम्॥

व्यासदेव कहते हैं—तदनन्तर धर्मज्ञ सूत यह कहकर विरत हो गये। तब उन महान् ऋषियों ने उनके पास आकर उनकी पूजा किया तथा वे सभी प्रसन्न मन से अपने आश्रम लौट गये। वे सूत के कथनानुरूप कार्त्तिक व्रताचरण करने लगे। जो मानव पूर्वोक्त विधान से कार्त्तिकव्रत का आचरण करता है, वह समस्त कलुष से रहित होकर विष्णुलोक जाता है॥५६-५८॥

॥षट्त्रिंश अध्याय समाप्त॥

॥कार्त्तिक माहात्म्य समाप्त॥